

हरिकेशि मुनिनी कथ

शिवल पाड़चुं. अनुकमे मोटो थतां एकवार वसंतोत्सवमां समान चयबाला बाल-
कोनी साथे क्रीडा करतां ते अति चपल होवाथी वीजा बालकोनी तर्जना करेछे. कार-
णके बालकोनो ए स्वभाव ज छे. कहुं छे के—

न सहंति इकमिकं, न विणा चिङ्गति इकमिकेण ।

रासह वसह तुरंगा, जूआरी पंडिया दिंभा ॥ १ ॥

“रासभ, वृषभ, घोडा, जुगारी, पंडितो ने बालको एक वीजाने सहन करी
शकता नथी अने पाला एक वीजा शिवाय एकला रही शकता नथी.”

पछी घणा बालकोए मल्हीने हरिकेशिवलने पोताना भंडलमांथी हाँकी काढ्यो.
हवे ए अवसरे एक झेरी सर्प नीकल्यो. तेने घणा माणसोए मल्हीने मारी नाख्यो,
तेवामां एक वीजो सर्प नीकल्यो; पण ते निर्विष हतो तेथी लोकोए विचार्यु के ‘आ
सर्प विष वगरनो छे तेथी तेने मारवो न जोइए, एम विचारी तेने जीवतो छोडी दीधो.
ए स्वरूप जोइने लघुकमीं हरिवल बालके विचार्यु के—‘अरे ! आ अगाध भवकूपमां
आ जीव पोताना कर्मथीज दुःखी थायछे, अन्य तो निमित्त मात्र छे, कहुं छे के—

रे जीव सुहदुहेमु, निमित्तमित्तं परं वियाणाहि ।

सकयफलं भुञ्जतो, कीस मुहा कुप्पासि परस्स ॥

“हे जीव ! सुख अने दुःखनी अंदर अन्य तो निमित्त मात्र छे एम तुं जाण. स्व-
कृत एटले पोतानां करेलां कर्मना फळने भोगवतां तुं शामाटे वीजा उपर गुस्से थाय छे ?”

बळी आ जीव पोताना गुणथीज सुखी थाय छे. सुख अने दुःखनुं मूळ कारण
पोतानो आत्माज छे; माटे निर्विषपूर्णज वधारे सारूं छे. विषय रूप विषवाला पुरुषो
भरण पामेछे; तेथी जेओ विषयरूप विषथी रहित छे तेओने धन्य छे. ए प्रमाणे जेनां
हृदयचक्षु विकस्वर थयां छे एवा हरिकेशीने अनादि भवप्रपञ्चने चिंतवतां भवतापने
हरनार जातिस्मरणज्ञान उत्पन्न थयुं. तेणे सम्यक् प्रकारे पूर्व भवनुं स्वरूप जोयुं.
‘अरे ! मैं पूर्वे सोमदेवना भवमां चारित्र पालचुं छे, परंतु जातिमद करवाने लीधे मैं
तेने सदोष करेलुं छे. अहो ! विशुद्ध एवो आ चारित्र धर्म निर्विषपणे आराध्यो सतो
अवश्य स्वर्गादि सुखने आपेछे’. सिद्धांतमां पण कहुं छे के—

तए संथारनिविष्ठो वि, सुणिवरो भङ्गागमयमो हो ।

जं पावइ सुन्तिसुहं, कत्तो तं चक्कवट्टीवि ॥

“जेना राग भद्र ने मोह नाश पामेला छे एवा मुनिवर ते अवसरे संयास पर रह्या सता पण मोक्षसुखने प्राप्त करेले तो तेंने चक्रवर्तीपिण्ठे पापवृं तेपां तो शुं आश्रव्य ! ”

ए प्रमाणे संबोगस्थपी रंगथी जेतुं मन रंगायेलुं छे एवा हरिकेशिवले गुरुनी पासे जिनवाणी सांभद्रीने चारीत्र ग्रहण कर्यु अने दुष्कर छट्ट अद्यम आदि तप करवा लाग्या, तेमज विषयनो त्याग करीने विचरवा लाग्या.

एकदा एक मासना उपत्रासनुं तप करीने ते वाराणसी नगरीना तिंदुक नामना वनमां तिंदुक यक्षना मंदिरमां कायोत्सर्ग करीने रह्या. तेना तपगुणथी रंजित थड तिंदुक यक्ष पण ते सावुनी सेवा करवामां तत्पर थयो. अहो ! तपनुं अत्यंत महात्म्य छे ! कहुं छे के-

यद्यरं यद्युराराध्यं, यत्सुरैरपि दुर्लभम् ।
तत्सर्वं तपसा साध्यं, तपो हि दुरतिक्रमम् ॥

“जे दूर छे, जे दुःखथी आराधी शकाय तेवुं ले, जे देवोने पण दुर्लभ छे ते सर्वं तपथी मेळवी शकाय छे. माटे तपनुं कोइ अतिक्रम करी शके—तेनाथी वथी शके तेम नथी.”

ए वस्ते वाणारसी नगरीना राजानी पुत्री सुभद्रा नामनी राजकन्या वणी दासीओथी परिवृत्त थड पूजानी सामग्री लडने यक्षराजने पूजवाने माटे आवी. यक्ष-मंदिरनी प्रदक्षिणा करतां ते राजकन्याए मलमणिन देहवाला मुनिने जोया. एट्ले ‘अरे ! निंद्य देहवालो मेत जेवो आ कोण छे ?’ ए प्रमाणे कही तेणे शुशुकार कर्यो. ते तपस्थी मुनिनी मोटी आशातना करी. एवुं राजकन्यानुं चेष्टित जोइने कुपित थयेला तिंदुक यक्षे विचार्यु के—‘अरे ! आ राजकन्या दुष्कर्म करनारी छे, कारणके सुर अने असुरे जेना चरणनी पूजा करी छे एवा आ मुनिनी ते अवज्ञा करेले, तेथी आ पूज्य मुनिनी करेली अवज्ञानुं फल आ राजकन्याने चतावुं.’ ए प्रमाणे विचार करीने तेणे तेना शरीरमां प्रवेश कर्यो. एट्ले तेना प्रवेशथी नाना प्रकारना वकवाद करती, हार विगेरेने तोडती अने वस्त्र विगेरेनी शुद्धि नहि जाणती एवी राजकन्याने त्यांथी सेवको तेनां मातापिता पासे लाव्या. पुत्रीस्नेहथी मोहित थयेला राजाए तेनी घणी विकितसा करावी. अनेक मांत्रिको अने वैद्योने वोलाव्या, परंतु

पोताना रूपथी गवित थयेली आ तारी पुत्रीए मारा पृज्य मुनिनो उपहास करेलो छे, तेथी जो तेज मुनिनी ते स्त्री थाय तोज हुं तेने मुक्त करुं; वीजो कोइ उपाय नथी. ’ ते सांभळी राजाए विचार कर्यो के—‘ आ प्रमाणे थवाथी मारा प्राणथी पण वधारे बहाली एवी आ कन्याने हुं जीवती तो जोइश; माटे आ कन्या मुनिराजने अर्पण करवी.’ ए प्रमाणे विचार करी परिजनो साथे सुभद्राने ते मुनि पासे मोकली. ’ ते कन्याए पण पोताना पितानी आज्ञाथी यक्षमंदिरमां जइ मुनिने वांदीने कहुं के—‘ हे महापि ! आपना हाथबडे मारो हाथ ग्रहण करो. हुं स्वर्यवरा थइने आपनी पासे आवेली हुं.’ मुनिए कहुं के—‘ हे भद्रे ! मुनिओ विष्यसंगथी रहित होय छे, माटे आ वातं साथे मारे काँइ पण प्रयोजन न नथी.’ मुनिए आ प्रमाणे कक्षा छतां कुतुहलमां प्रीतिवाला तिंकुक यक्ष मुनि शरीरमां दाखल थइ ते कन्यानुं पाणिग्रहण कर्यु अने तेने विट्ठवणा करीने छोडी दीधी. ते वधुं स्वप्न जेवुं जोइने निस्तेज थइ पिता पासे आवी, ‘अने स्वप्न जेवुं सधलुं रात्रिनुं स्वरूप कही वताव्युं. ते समये रुद्रदेव पुरोहिते कहुं के—“ हे स्वामिन् ! आ कन्या क्रृष्णपत्नी थयेली छे; अने अमारा शास्त्रमां कहुं छे के ‘ तजायेली क्रृष्णपत्नी ब्राह्मणने आपवी.’ आवो वेदनो अर्थ छे, माटे आ कन्या ब्राह्मणने अर्पण करवी जोइए.’’ ए प्रमाणे सांभळीने राजाए ते रुद्रदेव पुरोहितने ज ते कन्या अर्पण करी.

एकवार रुद्रदेव पुरोहिते यज्ञ करतां सुभद्राने यज्ञपत्नी करी. यज्ञमंडपमां घणा ब्राह्मणो आवेला हता. यज्ञकर्ममां कुशल याज्ञिको यज्ञ करवा काग्या हता. अने तेओने योग्य पुष्कल भोजन विगेरे तैयार कर्यु हतुं. ते समये मासखमणना पारणे हरिकेशिवल मुनि यज्ञमंडपमां दाखल थया. तेमने सन्मुख आवतां जोइने ब्राह्मणोए कहुं के—‘ अरे ! आ प्रेत जेवो, मलथी मालिन देहवालो अने निंद्य वेष धारण करवा वालो कोण यज्ञ-मंडपने मालिन करवाने आवेलोछे ? ’ ते वसते मुनिए आवीने भिक्षाने माटे ब्राह्मणो पासे याचना करी. ते सांभळीने अनार्य ब्राह्मणोए कहुं के—“ अरे ! दैत्यरूप ! यज्ञ-मंडपमां तैयार करेलुं अन्न ब्राह्मणोने देवा योग्य छे, शुद्र करतां पण अथम एवा. तने ए अन्न केम अपाय ? वळी जे, अन्न ब्राह्मणोने अपाय छे तेनुं पुण्य तो संहस्राणुं थाय छे, अने तने आपेलुं अन्न तो राखमां धी होमवा जेवुं थाय छे, माटे अर्हाथी चाल्यो जा, तुं अहीं शामाटे उमो छे ? ” ए प्रमाणे ब्राह्मणोए मुनिनो उपहास कर्यो. ते सांभळी यक्ष मुनिना शरीरमां प्रवेश करीने कहुं के—“ अरे ! सांभळो, हुं श्रमण (जैन साधु). हुं, यावज्जीव ब्रह्मचर्य पालनारो हुं, अहिंसादि व्रतोने धारण करुं हुं; तेथी हुंज मुपात्र हुं, ब्राह्मणो मुपात्र नथी. केमके तमे तो प्रशुवध आदि पापना

करनारा छो, मुखथी न कहेवाय एवा स्त्रीना गुण स्यानना मर्दन करनारा छो अने उत्तम प्रकारना ज्ञानथी दूर करायेला छो, माटे हुंज सुपात्र द्वं. तमारा भाग्यथी ज हुं तमारा यज्ञमंडपमां आवेलो छुं; माटे मने शुद्ध अन्न आपो.” एवां ब्राह्मणोर्थी तिरस्कार करायेला ब्राह्मणो ते मुनिने पारवा तैयार थया. तेओए छोडी अने मुष्टिवेड मुनिने केटलाक प्रहारो कर्या. एटले रुष्मान थयेला यसे ते ब्राह्मणोने प्रदारादि वडे मुखमांथी रुधिर बमता करी दीथा, अने शरीरना सांधा शिथिल करी नाख्या, जेथी तेओ पृथ्वी उपर पड्या. मोटो कोलाहल थइ गयो, एटले सबला त्यां एकठा थया. कोलाहल सांभगीने सुभद्रा राजकन्या पण वहार नीकली. तेणे मुनिने जोया एट्झे तरत ओळख्या. पछी भयथी विहळ वनी जड्ने तेणे रुद्रदेव विगेरेने कहुं के—‘अरे दुर्बुद्धिवालाओ ! आ मुनिने पीडशो तो यमर्मदिरमां पहोची जशो. आ तो तिंदुक यसे पूजेला महा प्रभाववाला तपस्वी मुनि छे, मैं पूर्वे तेमने चलित करवा माटे घणो यत्न कयो हतो; परंतु ते जरा पण व्यानथी चलित थया नहोता. माटे आ मुनिने धन्य छे धन्य छे.’ एम वोलती सुभद्रा मुनिना चरणमां पडी अने कहुं के—‘हे कृपासिंहु ! हे जगत्जनवंधु ! मारा आग्रहथी आ मूर्ख लोकोए करेलो अपराध समा करो.’ मुनिए कहुं के—“मुनिने कोप करवानो अवकाश नथी. कारणके क्रोध महा अनर्धकारी छे. कहुं छे के—

जं अजियं चारितं, देसूणाए य पुव्वकोडी ए ।

तंपिअ कसायमित्तो, हारेइ नरो मुहुत्तेण ॥

“देशे उणा क्रोड पूर्व पर्यंत जे चारित्र पाल्युं होय तेने पण प्राणी एक मुहूर्त मात्र कषाय करवाथी हारी जाय छे.”

माटे साधुने कोप करवो योग्यज नथी. तेथी ते कोप करेज नहि, परंतु तमारा पर कोप करनार यक्षने तमे प्रसन्न करो.” मुनिना कहेवाथी ब्राह्मणोए ते यक्षने संतुष्ट कयों, एटले ते सर्व ब्राह्मणो साजा थया. पछी तेओ यज्ञकर्म छोडी दड्ने मुनिना चरणमां पड्या अने शुद्ध अन्नवेडे मुनिने पढिकाभ्या. ते वर्खते त्यां पंच दिव्य प्रगट थया. ते जोइ ‘आ हुं !’ एम वोलतां कुतुहल जोवा माटे घणा लोको एकठा थया. राजा पण ए हकीकत जाणीने त्यां आव्यो. सघळाओ सुपात्र दाननी प्रशंसा करवा लाग्या. कहुं छे के—

व्याजे स्याद्विगुणं वित्तं, व्यवसाये स्याच्चतुर्गुणम् ।
क्षेत्रे शतगुणं प्रोक्तं, पात्रेऽनन्तगुणं तथा ॥ १ ॥

“ व्याजमां धन बमणुं थाय छे, व्यापारमां धन चोगणुं थायछे, क्षेत्रमां वाव-
वाधी सोगणुं थायछे, अने सत्पात्रने आपवाधी अनन्तगणुं थायछे.”

—

मिथ्यादृष्टिसहस्रेषु, वरमेको ह्यणुव्रती ।

अणुव्रतिसहस्रेषु, वरमेको महाव्रती ॥ २ ॥

महाव्रतिसहस्रेषु, वरमेको हि तात्त्विकः ।

तात्त्विकस्य समं पात्रं, न भूतं न भविष्यति ॥ ३ ॥

“ हजार मिथ्यात्वीओ करतां एक श्रावक व्रतधारी वधारे श्रेष्ठ छे, हजार श्रावक
व्रतधारीओ करतां एक महाव्रती (साधु) वधारे श्रेष्ठ छे; हजार महाव्रतीओ करतां
एक तत्त्ववेत्ता मुनि (गणधर महाराजा) वधारे श्रेष्ठ छे, एवा तात्त्विक मुनिनी वरो-
वरी करनाहं पात्र वीजुं कोइ थयुं नथी अने थशे पण नहि. ”

माटे आ जैन साधुने दान देवुं ए धन्य छे. पछी त्यां मुनिए देशना आपी.
घणा माणसो मुनिनी देशनाथी प्रतिवेद पाम्या अने सघला ब्राह्मणो पण
श्रावक थया.

हरिकेशि मुनि शुद्ध व्रत आराधी केवलज्ञान पामीने मोक्षे गया. माटे कुळनुं
प्राधान्य नथी, पण गुणोनुंज प्राधान्य छे; गुण न होय तो कुल कंइ करी शक्तुं नथी.
वली आ आत्मा नट्नी माफक नवां नवां रूप धारण करी संसारमां परावर्तन कर्या
करेछे (अनेक देह धारण करेछे). माटे कुळाभिमाननो अवकाशज क्यां छे ? आ-
हकीकतने त्रण गाथा वडे स्पष्ट करेछे—

देवौ नेरझउत्तिय, कीड पैयंगुत्ति माणुसोवेसो ॥

रुवस्सैअ विरुवो, सुहँभागी दुख्ख्वभागीअ ॥ ४५ ॥

राउत्तिय दमयुत्तिय, एसै सपाँगुत्ति एसै वेर्यविज ॥

सामी दासो पुंजो, खलैत्ति अधैणो धणवैद्वत्ति ॥ ४६ ॥

नैवि इत्थं कौवि नियमो, सकम्म विणिविहृं सरिसकयचिद्गो॥
अनुन रुव्वेसो, नर्दुव्व परियंत्तए जीर्धो ॥ ४७ ॥

अर्थ—“आ जीव देवता थयो, नारकी थयो, कीडो अने पतंगीयो थयो, उपलक्षणीयी अनेक प्रकारनो तिर्यच थयो, मनुष्यरूप वेपवालो अर्थात् मनुष्य थयो, रूपवंत थयो, विस्तुप एटले कटुप पण थयो, मुखनो भाजन थयो, दुःखनो भाजन—दुःख भोगवनार पण थयो. ४५. राजा थयो, द्रमक एटले भिक्षुक पण थयो, एज जीव चंडाळ थयो, एज वेदनो जाणनारो प्रधान नाम्यण पण थयो, स्वामी थयो, सेवक थयो, पृथ्य एवो उपाध्यायादि थयो, खल दुर्जन पण थयो, निर्धन थयो, अने धनवान पण थयो. ४६. आ संसारमां कोइ प्रकारनो नियम नयी अर्थात् मनुष्य मरने मनुष्यज थाय, पशु मरने पशु थाय ने देवता चर्वीने देवता थाय एम केटलाको कहेछे पण एवो विड्कुल नियम नयी. पोतानां कर्मोनो जेवो उदय होय ते प्रमाणे चेष्टा करनारो आ जीव नवां नवां रूप ने वेप धारण करनारा नटनी जेम आ संसारमां (नवा नवा रूपे) परिभ्रमण पण करे छे.” ४७. आ प्रमाणेनुं संसारनुं स्वरूप जाणीने विवेकी मनुष्यो मोक्षना अभिलाषीज होयछे, धनादिना इच्छक होता नयी. ते उपर कहे छे—

कोडीसंएहिं धर्णसंचयस्स, गुणसुभरियाए कब्राए ॥
नैवि लुङ्छो वयरैरिसी, अलोभया एस साहूंण ॥ ४८ ॥

अर्थ—“द्रव्यसमूहना सेंकडो कोडीए सहित आवेली, रूप लावण्यादि गुणोए भरेली एवी कन्या (अपारिणीता) ने विषे पण वैरक्षण्य (वज्र स्वामी मुनि) लोभाणा नहीं, लुब्ध थया नहीं. आवी अलोभता सर्व साहुओए करवी.” ४८. अर्थात् एवा निर्लोभी थवूं.

पुष्कल द्रव्य सहित अत्यंत रूपवंत सकिमणि नामनी कन्या वज्रस्वामी ज्ञानुणोर्धी मोह पामीने तेमने वरवा आव्या छतां वज्रस्वामीए किंचित् पण द्रव्यमां के ज्ञामां न लोभातां तेने उपदेश आपी धर्म पमाडी चारित्र आप्युं. आवी निर्लोभता सर्व मुनि महाराजाए राखवा योग्य छे. अहीं वज्रमुनिनुं दृष्टांत कहे छे—

श्री वज्रमुनिनुं दृष्टांतः

तुंववन गाममां धनगिरि नामनो एक व्यापारी वसतो हतो. ते अति भद्रिक हतो. तेने सुनंदा नामनी स्त्री हती. तेनी साथे भोग भोगवतां तेणे घणा दिवसो सुखथी व्यतीत कर्या. एक दिवस वैराग्य उत्पन्न थवाथी धनगिरिए सगर्भा भार्याने छोडीने सिंहगिरि गुरु पासे चारित्र ग्रहण कर्यु. ते उग्र तप करवा लाग्या; अने गुरुसेवाना रसिक यह सारणा, वारणा, चौयणा, पडिचोयणा विगेरे^१ ग्रहण करवामां कुशल थया.

पाछल सुनंदाने 'पुत्र प्रसव थयो. ते खत्ते 'आना पिताए दीक्षा लीधेली छे अने ते धन्यवाद् आपवा लायक मुनि थयेल छे' एवुं ते पुत्र जन्मतांज स्वजनसुखथी सांभ-ठीने मनमां चिंतन करवा लाग्यो के—'अे ! आ लोको शुं बोले छे ? आ दीक्षार्थम् केवो होय छे ? मैं कोइ पण खत्ते तेनो अनुभव करेलो लागे छे.' ए प्रमाणे ध्यानमां तत्पर थएला ते वाळकने जातिस्मरणज्ञान उत्पन्न थयुं एटले तेणे पूर्वे अनुभवेलु चारित्र-र्थमनुं स्वरूप जाण्यु. तेथी संसारथी विरक्त थइने ते विचार करवा लाग्यो के—'आ जन्म जरा आदिनी दुःखपरंपराथी व्याप्त एवो संसारनो विलास क्यां ! अने शाश्वत सुखनो ज्यां प्रकाश एवो चारित्र धर्मने विषे निवास क्यां ! अे ! अनंतीवार भोगव्या छतां पण आ जीव विषयोमां तृप्ति पामतो नयी.' कहुं छे के—

धनेषु जीवितव्येषु, भोगेष्वाहारकर्मसु ।

अतृप्ताः प्राणिनः सर्वे, याता यास्यन्ति यान्ति च ॥

"द्रव्यमां, जीवितव्यमां, भोगमां अने आहारकर्ममां अतृप्त रह्या सताज सर्वे प्राणीओ गयेला छे, जसे अने जायछे."

बली कहुं छे के—

भोगा न भुक्ता वयमेवभुक्ता—स्तपो न तप्तं वयमेव तप्ताः ।

कालो न यातो वयमेव याता—स्तृष्णा न जीर्णा वयमेव जीर्णा ॥

"भोगो भोगवाया नयी पण अमे ज भोगवाया छीए, तप तप्युं नयी, पण अमे ज तप्या छीए, काळ गयो नयी पण अमे ज गया छीए, अने अमारी तृष्णा जीर्ण अन्यी पण अमे पोते ज जीर्ण थया छीए." माटे सांसारिक सुखो सुलभ छे, परंतु तीर्थोधिरत्न परम दुर्लभ छे. कहुं छे के—

^१ १ सारणा—संभारी आपदु, वारणा—अशुद्ध भणतां वारं, चौयणा—प्रेरणा करवी, पडिचोयणा—वार-पार्व ऐगणा करवी इत्यादि.

सुलहो विमाणवासो, एगच्छत्तावि मेइणी सुलहा ।
दुलहो पुण जीवाण, जिणंदवरसासणे वोहि ॥

“विमानवासी एट्ले देवता थवुं ते मुलभ छे अने एकचत्र पृथ्वी पण मुलभ छे. अर्थात् चक्रवर्ती थवुं ते मुलभ छे, परंतु जिनेन्द्रना श्रेष्ठ शासनमां वोधित्रीज पापवुं ते जीवोने परम दुर्लभ छे.”

आ प्रमाणे विचार करीने ते वाळक पोतानी माताने उद्भेग पपाडवा माटे गाढ स्वरथी रुदन करवा लाग्यो. माताए घणा उपायो कर्या, परंतु ते जरा पण रोतो वंध थतो नथी. जो के मातानुं मन तेना पर स्नेहयुक्त हळुं तोपण आयी विरक्त थइ गयुं. वाळक पण जेम जेम मातानुं मन विरक्त थनुं जाणवा लाग्यो तेम तेम ते वरमणु रुदन करवा लाग्यो. ए प्रमाणे छ मास व्यतीत थया. ए सपये श्री मिहगिरि सूरि त्यां पधार्या. नगरना लोको तेमने वंदन करवाने गया. गुरुए देशना दीर्घी. देशनाने अंते सभा वीखराइ जतां धनगिरिए गुरु पासे आर्वनि भिक्षा माटे जवानी आज्ञा आपी. त्यारे गुरुए कहुं के—‘आज गोचरीमां सचित्त के आचित्त जे मळे ते सधकुं ग्रहण करवुं.’ ए प्रमाणेनुं गुरुनुं वाक्य स्त्रीकारीने धनगिरि भिक्षा माटे नगरमां गया. गोचरी माटे फरतां फरतां ते पोतानी त्वी सुनंदाने धेर आव्या अने धर्मलाभ आप्यो. त्यारे सुनंदाए कहुं के—‘हे स्वामी ! आ पुत्रने ग्रहण करो, आ पुत्रे मने घणो संताप उपजाव्यो छे.’ एवुं सांभळीने गुरुनुं बचन जेमणे स्पृतिमां राखेलुं छे एवा धनगिरिए सुनंदाए आपेला पुत्रनी भिक्षा स्त्रीकारी. झोलीमां पुत्रने लळने ते गुरु समीपे पाढा आव्या. गुरुए बज्र जेवो ते वाळकमां भार जाणीने तेसुं नाम बज्र पाडयुं. ते वाळकने साध्वीओना उपाश्रये सॉप्यो. त्यां घणी श्राविकाओ तेनी सेवा करवा लागी. श्रीसंघने पण ते अति पिय थयो. त्यां पारणामां सुतां सुतां ते वाळके अनेक भकारनां सिद्धांतोनो अभ्यास करती साध्वीओना मुखयी सांभळीने अग्यार अंगोसुं अध्ययन कर्यु. अनुक्रमे ते ब्रण वर्षनो थयो. तेनी माता त्यां दरसोज आवती हती. ते पुत्रने दिव्य रूपवाळो जोइने मोहथी मन विद्वले करी तेने लेवाने आवी. तेणे कहुं के—‘हे मारो पुत्र लळ जइश.’ धनगिरिए कहुं के—‘हे तेने आपीश नहि, कारणके तमे मने आ वाळक तमारा हाथथीज अर्पण कर्यो छे.’ ए प्रमाणे परस्पर वाद थयो. विवाद करती सुनंदा गंग संहित राजानी कचेरी।

खावानी चीजो, सुखडी, विचित्र प्रकारनां आभरणो अने बालकना चित्तने रंजित करे एवी वस्तुओ (रमकडांओ) मोहा आगल मूर्कीने पुत्रने बोलाववा लागी के—‘हे पुत्र ! आ ले, आ ले.’ परंतु तेणे ए प्रमाणे बोलती मातानी सन्मुख पण जोयुं नहि तेथी ते खिल यइ. पछी धनगिरिए कहुं के—‘हे बालक ! अमारी पासे तो आ धर्मध्वज (रजोहरण) छे, जो तने पसंद पडे तो ते ग्रहण कर.’ एवं सांभळी ते बालक दोडतो गुरु पासे जइ धर्मध्वजने माथे चडावी प्रफुल्लित नेत्र करीने नृत्य करवा लाग्यो. राजाए कहुं के—‘आ पुत्र गुरुनो ज छे.’ सर्व लोको ते जोइने आर्थ्य पाम्या के ‘ओर ! आ त्रण वर्षिना बालकतुं ज्ञान तो जुओ !’ पछी सधळा संघना माणसो गुरु सहित उपाश्रये आवीने पोतपोताना स्थाने गया.

अनुक्रमे ते बालक आठ वर्षिनो थयो एट्ले गुरुए तेने दीक्षा दीधी. पुत्रना मोहिथी मुग्ध थयेली सुनर्दाए पण चारित्र ग्रहण कर्यु. पछी गुरुए ‘आ बालक योग्य छे’ एम जार्ये पोताना स्थाने (आचार्यपदे) स्थापित कर्यो. दश पूर्व जाणनार अने उग्र तप करनार एवा वज्रसुनिने पूर्वभवना मित्र कोइ देवे आवीने वैक्रिय लघिध अने आकाशगमिनी विद्या आपी.

एकदा विद्या आदि अतिशयोथी युक्त श्री वज्रस्वामी पाटलीपुत्र नगर (पटणा)-मां समवसर्या. बांदवाने माटे नगरना लोको आव्या. वज्रस्वामीए पण विद्याना बळथी पोतालुं रूप विशेष करीने धर्मदेशना आपो. ते देशनावडे लोकोनां चित बहु आकर्षणीयां अने परस्पर बोलवा लाग्या के—‘अहो ! आ गुरुमहाराजनो रूपने अनुसरतोज वाणीविलास छे !’ पछी देशनानी समाप्ति थये सर्व लोको स्वस्थाने गया. अने ते दिवस व्यतीत थयो.

हवे ते नगरमां धनावह नामनो एक शेठ वसेछे. तेने स्क्रिमणी नामेघणी रूप वती पुत्री छे. तेणे एक दिवस कोइ आर्याना मुखर्यी वज्रस्वामीना गुणो सांभळवा हता, अने आर्या पण रुक्मिणीनी पासे वारंवार वज्रस्वामीना गुणोत्तुं कथन करती हती. तेथी तेना रूप, लावण्य, विद्या विग्रेरे अतिशयोथी मोहित थइने रुक्मिणीए प्रतिज्ञा करी के—‘वज्रस्वामी शिवाय अन्यने हुं परणीश नहि.’ तेणे पोताना पिताने पण कहुं के—‘हुं वज्रस्वामी शिवाय अन्यने वरवानी नथी.’ आ प्रमाणे केटलोक काल व्यतीत थया. पछी वज्रस्वामीतुं आगमन सांभळीने धनावह शेठ पुत्री उपरना स्नेहने लीये वीजे दिवसे अनेक कोटि रत्नो सहित देवांगनाओना करतां पण वथारे सुंदर एवी. अने अलंकृत करेकी पोतानी पुत्रीने लइने भगवान् वज्रस्वामी पासे आव्या. शेठ

हाथ जोड़ी खोल्या के—“हे भगवन् ! प्राणथी पण अधिक बद्धाली एवी आ मारी कन्यातुं
रत्नराशि सहित पाणिग्रहण करवा कृपा करो।” भगवान् वज्रस्वार्पीए कल्युं के “हे भद्र !
आ कन्या मुग्ध छे. ते कंइ पण समजती नयी. अपै तो मुक्तिस्थी कन्याना आलिंग-
नमां उद्युक्त होवार्थी अशुचियी भरेली एवी स्त्रीओमां रति पामता नयी. स्त्रीनुं शरीर
मलमूत्रनी खाण छे. तेने स्पर्श करवो ए पण अनर्थकारी छे.” कल्युं छे के—

वरं ज्वलदयस्तंभः परिरंभो विधीयते ।
न पुनर्नरकद्वाररामाजघनसेवनम् ॥

“ प्रज्वलित लोढाना थांभलाने आलिंगन करवुं ए वथारे सारुं छे, पण नरकना
द्वाररूप स्त्रीना जघननुं सेवन करवुं सारुं नयी. ” माटे आ मोहना निवासरूप स्त्रीनो
देह प्राणीओने पाशरूपज छे. कल्युं छे के—

आवर्त्तः संशयानामविनयभवनं पत्तनं साहसानां
दोपाणां सन्निधानं कपटशतमयं क्षेत्रमप्रत्ययानाम् ।
स्वर्गद्वारस्य विघ्नं नरकपुरमुखं सर्वमायाकरंडं
स्त्रीयंत्रं केन मृष्टं विषममृतमयं प्राणिनामेकपाशः ॥

“ संशयोनुं वमळ, अविनयनुं घर, साहसरुं नगर, दोपोनो भंडार, हजारे
कपटथी भरेलुं, अविश्वासनुं क्षेत्र, स्वर्गद्वारनुं विघ्न, नरकपुरनो दरवाजो, सर्व प्रकारनी
मायानो कंडीयो—एवुं आ स्त्रीरूप यंत्र कोणे सज्जुर्ह हशे ? के जे प्राणीओने विषमय
छतां अमृतमय देखावुं पाशरूप छे.” माटे ब्रह्मचारीओने स्त्रीनो संगज करवो योग्य नयी
अने तेनां अंगोपांग पण जोवां योग्य नयी. बळी—

स्नेहं मनोभवकृतं जनयंति भाव
नाभीभुजस्तनविभूषणदर्शितानि ।
वस्त्राणि संयमनकेसविमोक्षणानि
भूक्षेपकंपितकटाक्षनिरीक्षणानि ॥

“ स्त्री कामदेवथी उत्पन्न थेला स्नेहने पेदा करेछे, हावभावथी भुजा, स्तन,
विभूषण, वस्त्र अने छुटा करेला केश देखाडेछे, तेमज भ्रगुटीना आक्षेपथी कंपित कटाक्ष

पूर्वक जुखेछे.' विषयी पण अधिक विषम एवा आ विषयोतुं वर्णन करवाई पण सर्यु, वली मानस सरोकर उपर प्राप्त थयेलो, वेने पक्षथी शुद्ध, सुमति हंसीथी युक्त निर्मल ध्यानरूप मुक्ताफलमां आसक्त, जड अने चैतन्यना तफावतने जाणनार अने भाव अने विभावतुं प्रथक्करण करनार एवा राजहंस तुल्य आत्माने रुधिर, मज्जा ने चरबी वडे पूर्ण एवा अपवित्र स्त्रीना देहरूपी कूपमां वसवृं उचित नथी, तेथी आ विवेक राहित जनेने योग्य एवी कथाई पण सर्यु. हे श्रेष्ठ! जो मारा उपर तारी आ कन्यानो खरो प्रेम होय तो ते पोतानो अर्थ साधवा वडे मारा चित्तने भले आनंदित करे. ए प्रमाणेनां श्रीवज्रस्वामीनां वचन सांभळीने ज्ञानरूपी दीपक जेने प्रदीप्त थयोछे, स्वभाव अने विभावतुं स्वरूप जेणे जाणेलुं अने अति हर्षथी अशुजल जेनां नेत्रमांथी स्वेच्छे एवी रूपिमणीए हाथ जोडीने कहुं के 'हे स्वामी! आपनां कहेलां वचन प्रमाणे वर्तवाई पण हुं कृतार्थ छुं.' पछी धन सार्थवाहे तेने आज्ञा आपी एटले तेणे वज्र-स्वामीनी पासे दीक्षा ग्रहण करी अने सम्यक् प्रकारे चारित्र पालीने स्वर्गे गइ.

दश पूर्वने धारण करनार वज्रस्वामी अनेक भव्य जीवोनो उपदेश देवावडे उद्धार करी आठ वर्ष गृहस्थपणामां रही, चुंमाळीश वर्ष गुरुसेवामां काढी, छत्रीश वर्ष युग-प्रधानपणे विचरी अद्वाशी वर्षनुं आयुष्य पूर्ण करी श्री महावीर स्वामीना निर्वाणथी पांचसो चोराशी वर्ष व्यतीत थयां पछी देवपणाने प्राप्त थया.

आनुंज नाम धर्म कहेवाय के जेमां आटला वधा प्रभाववालामां पण आवा प्रकारनी निलोंभता होयछे. अन्य जनोए पण वज्रस्वामीनी पेडे निलोंभी थवृं एवो आ कथानो उपनय छे.

इति वज्रस्वामी कथा १६.

अंतेऽर पुरुंबल वाहणेहिं, वरसिरिधिरेहिं मुनिवृंसहा ।

कामेहिं बहुविहिय, छंदिजंता वि नेच्छंति ॥ ४९ ॥

"रमणिक स्त्रीओ, नगरो, चतुरंगिणी सेना अने हस्त अश्वादि वाहनोए करीने, वरश्रीगृह एटले प्रधान द्रव्य भंडारे करीने अने वहु प्रकारना काम जे पांच इंद्रियोना विषयो तेणे करीने निर्मांत्रित कर्या छतां पण मुनिवृषभो (मुनिश्रेष्ठो) तेने इच्छता नथी." ४९. एओ पोताना चारित्रधर्मनेज इच्छेछे.

छेओ भेओ वसैं आयास किलेस भर्य विर्वागो अ ॥

“ छेदन, भेदन, व्यसन ते कष, आयास ते प्रयाग, क्षेत्र, भय अने विवाद ते कलह, मरण, धर्मधंश अने अरति आ सर्व (अर्थात्) द्रव्ययी प्राप्त थायदे. ए कारण माटे अर्थ अनथेंनुं मूळ क्षे.” ५०

कान विगेरे कपावां ते छेदन, नगवार विगेरेयी भेदावुं ते अथवा स्वजनादिक सार्थ चित्तमां भेद पडवो ते भेदन, व्यसन ते अनेक प्रकारनी आपत्ति, आयास ते द्रव्योपार्जन माटे पोतायी करातो शरीरनो केश, भय ते व्रास ते परिग्रहयीज उत्पन्न थाय दे, द्रव्यने ज भय होयदे, विवाद ते परस्पर कलह द्रव्यना कारणयी उत्पन्न थायदे, मरण ते प्राणत्याग, धर्मधंश ते ज्ञान चारित्रस्तप धर्मयी पनित थवुं अथवा सदाचारनो लोप थवो ते अने अरति ते चित्तोद्रेग, आ सर्व द्रव्यना कारणयीज उत्पन्न थायदे. माटे द्रव्य सर्वथा त्याज्य दे,

दोससयमूळ जौलं, पुब्वरिसंविवाजियं जई वंतं” ॥

अर्थं वर्हसि अर्णश्यं, कीर्स अर्णश्यं तंवं चर्सि ॥ ५१ ॥

“ हे मुनि ! जो सेंकडो दोपोनुं मूळ कारण, मत्स्यवंयनभूत जाळनी जेवुं कर्पवंधनुं हेतुभूत होवायी जाळ, पूर्व मुनिओए विशेष प्रकारे वर्जेलुं, दीक्षा ग्रहण करती वखते वर्मेलुं-तजेलुं अने नरकपातादि अनर्थनुं कारण होवायी अनर्थस्तप एवुं अर्थ जे द्रव्य तेने वहन करेडे, राखेडे तो पछी शामाटे फोगट तप विगेरे कष करेडे?” ५१ अर्थात् जो द्रव्य पासे राखेडे तो पछी तपानुष्ठानादि निष्पक्ष दे; माटे साधुने तो पस्त्रिहनो सर्वथा त्याग एज श्रेष्ठ दे. अहीं पूर्व मुनि महाराजाओए एटले वज्रस्त्राम्यादिके वर्जेलुं तजेलुं करुं एटला उपरथी आयुनिक समयना कर्मकाळादि दोपयी अर्थनुं वहन करवामां तत्पर थयेलाओनुं विवेकीओए आलंवन न लेवुं; आलंवन तो पूर्वपुरुषोनुं ज लेवुं.

वह वंध मारेण सेहणाओ, कोओ परिग्गहे नैत्यि ।

तं जई परिग्गहुचिय, जइधर्ममो तो नणुं पैवंचो ॥ ५२ ॥

“वध, वंधन, मारण अने कर्द्धनाओ विगेरे परिग्रह मेलववामां शुं नथी जो वधुं छे तो एम जाप्या छतां पण पस्त्रिह राखवामां आवे तो पछी निश्चये यतिर्धम ते प्रपञ्च-विदंवना मात्रज छे अर्थात् द्रव्य राखवुं ने यतिपणुं वताववुं ते निःकेवल ठगाइ छे.” ५२

विजाहरीहिं सहैरिसं, नरिदंदुहिंयाहिं अहमैहंतीहिं ॥

जं पथिर्जई तहयाँ, वस्तुदेवो तं तवंसंस फैलं ॥ ५३ ॥

“ हर्ष सहित विद्याधरीओए अने एक चीजानी स्पर्धावडे राजपुत्रीओए ते अवसरे बसुदेव कुमारनी (पाणिग्रहण निमित्त) जे प्रार्थना करी ते तेणे पूर्व भवे करेला (वैयावच्चस्प अभ्यंतर) तपतुं फल जाणवुं ते कारण माटे परिग्रहने तजी ढङ्गे वाह अभ्यंतर तप करवो तेज श्रेष्ठ छे ” ५३

किं आँसि नंदिसेणस, कुलं जं हरिकुलस्स विउलस्स ।

आँसी पियांमहो सुचरिएण बसुदेवनामुत्ति ॥ ५४ ॥

“ शु नंदिपेणतुं कुल हतुं ? नहेतुं, ते तोदरिक्षी तुच्छ कुलबाला व्रात्पण हता, परंतु ते सदनुष्टानथी विशाळ एवा हरिवंश कुलना यादवोना बसुदेव नामे पितामह थया ते कारण माटे कुलथी शु ? सदनुष्टान ज आचरवा योग्य छे ” ५४

अहीं नंदिपेणतुं दृष्टांत जाणवुं, १७

नंदिपेणनी कथा,

मगध देशमां नंदि नामना गाममां चक्रधर नामे चक्रने धारण करनार एक दरिक्षी विप्र रहेतो हतो. तेने सोमिला नामे स्त्री हती. तेने नंदिपेण नामे पुत्र थयो. ते पुत्रनो जन्म थतांज तेना मातापिता मरण पास्या. तेथी तेना मामाए तेने पोताने घेर लावी मोटो कर्यो. परंतु युवावस्थामां पण ते कद्मूपो, मोटा माथावालो, मोटा पेटवालो; वांका नाकवालो, ठिंगणो, विकृत नेत्रवालो, तुटेला कानवालो, पीका केशवालो, पगे लंगडो, पीठ उपर ब्रणवालो, दौर्भाग्यतुं निधान अने स्त्रीओने अप्रीतिपात्र थयो. ते वाल्क मामाने घेर चाकरनुं काम करतो हतो ते जोइ लोकोए तेने कहुं के—‘अरे ! निर्भाग्य गिरोमणि ! तुं पर घेरे दासत्व शामाटे करेछे ? विदेश जइ, पैसो मेल्वीने स्त्री परण, लोकोक्ति पण एवी छे के ‘स्थानांतरितानि भाग्यानि’ पुरुषतुं प्रारब्ध स्थानांतरित होयछे एटके ते स्थाननो फेरफार करवाथी प्रगट थाय छे.’ आ प्रमाणेनां लोकोनां वचन सांभळीने अन्य स्थाने जवाने उत्सुक थयेला भाणेजने तेना मामाए कहुं के—‘तुं परदेश शामाटे जाय छे ? मारा घरनी अंदर सात पुत्रीओ छे. तेमांनी एकनी साथे तारो खिंवाह करीश, माटे अहींज मारा घरमां रहे.’ ते सांभळी नंदिपेण तेना मामाने घेरज रहो अने पूर्ववत् काम करवा लाग्यो. एक दिवस नंदिपेणने तेना मामाए पोतानी साते कन्याने बताव्यो अने तेने पसंद करवानुं कहुं. साते कन्याओए कहुं के—‘हे तात ! अमे आत्महत्या करशुं पण नंदिपेणने वरशुं नहि.’ आ प्रमाणेनां वचनो सांभळीने नंदिपेण मनमां विचार करवा लाग्यो के ‘अरे ! आमां मारां कर्मनोज दोष छे, एनो काँइ दोष नथी. करेलां कर्म खोगच्या विना क्षय पामतां नथी.’ कहुं छे के—

कर्मणो हि प्रधानत्वं, किं कुर्वन्ति शुभा ग्रहाः ।
वसिष्ठदत्तलग्नोऽपि, रामः प्रत्रजितो वने ॥

“कर्मनुंज प्रधानत्वं छे, तेमां शुभ ग्रहो पण शुं करे ? रामने गाढ़ीए वंसवाने माटे वशिष्ठ मुनिए मुहूर्त आपेलुं हतुं छतां पण ते मुहूर्ते तेने वनमां जयुं पड़युं.”

आ प्रमाणे विचारी दुःखगमित वैराग्यवडे ते मामना घरमांथी नीकली फरतो फरतो रत्नपुर नगरे गयो. त्यां उपवनना कोइ एक भागमां वस्त्ररहित थइ क्रीडा करतुं कामरसधी उन्मत्त थयेलुं, परस्पर गाढ़ आलिंगनधी जोडायेलुं त्वीपुरुषतुं जोहुं जोइ नंदिषेण मनमां वहूज खिन्न थयो अने आत्महत्या करवा माटे वनमां गयो. त्यां तेने मुस्थित नामना मुनि मव्या. मुनिए कसुं के—‘हे मुम्ब ! आवा अज्ञान मृत्युथी तेने शो लाभ थवानो छे ? पूर्वे अनंतीवार विप्यादिकना सेवनथी कोइ पण प्रकारनी सिद्धि थइ नथी; माटे कांइक धर्मकार्य कर के जेथी कार्यसिद्धि थाय. आ सर्वनी फण जेवा भयंकर अने परिणामे अति कहु एवा विप्यमुखथी शो लाभ छे ? वबी रोगनो भंडार एवुं आ शरीर पण अनित्य छे.’ कसुं छे के—

पणकोडी अडसझी, लखवा नवनवड सहस्रस पंचसया ।

चुलसी अहिआ निरए, अपइद्वाणांमि वाहिओ ॥

“सातमी नरकना अप्रतिष्ठान नामना नरकावासमां पांच क्रोड अडसठ काल नवाणुं हजार पांचशौ ने चोराशी व्याधिओ छै.”

तेथी आ अनित्य देहवडे सारभूत एवा धर्मने अंगीकार कर. कारणके आ मतु-
ष्यभव अत्यंत दुर्लभ छे अने ते धर्म विना व्यर्थ छे. कसुं छे के—

संसारे मानुष्यं सारं, मानुष्ये च कौलिन्यम् ।

कौलिन्ये धर्मित्वं, धर्मित्वे चापि सदयत्वम् ॥

“संसारमां मनुष्यजन्म साररूप छे, मनुष्यजन्ममां कुलिनपणुं साररूप छे,
कुलिनपणामां धर्म पालवो ए साररूप छे अने धर्म पालवामां पण दयायुक्त थवुं ए
सारभूत छे.”

१ आं प्रमाणेना व्याधि सत्तागत सर्व शरीरमां रहेला होय छे. फक्त सातमी नरकना नारकोने विषांकोदये वर्तेछे अने अन्य जीवोने विषाकमां वर्तता नथी, परंतु मनुष्यशरीरना साडात्रण कोड रोम-गाय क्वेवायाछे तेनी साथे संवंध करतां एकेरे रोमराये पोणाववे व्याधिओ गणी शकाय छे.

आ प्रमाणेनी गुरुमहाराजनी अमृत तुल्य देशना सांभळीने विषयतापथी निवृत्त थइ तेणे गुरु पासे दीक्षा लीधी, अने उग्रविहारीपणे गुरुनी सेवा करतां विचरवा लाग्या. तेओ छष्ट छठने अंते पारणुं करवा लाग्या अने अत्यंत वैराग्यथी मनने पूर्ण करी ‘दररोज मारे पांचशे साधुओनी वैयावच्च करवी’ एवो नियम ग्रहण कयों. साधुनी वैयावच्चनुं मोट्ठ पुण्य छे. कशुं छे के-

वैयावच्चं निययं, करेह उत्तमगुणे धरंताणं ।

सब्बं किर पडिवाई, वैयावच्चं अप्पडिवाई ॥

“उत्तम गुण धारण करनाराओनी वैयावच्च निरंतर कर. कारणके सर्वे गुण प्रतिपाति छे अने वैयावच्च गुण अप्रतिपाति छे.”

आ प्रमाणे विचारीने नंदिपेण मुनि गाममां आहार पाणी वहोरी लावी पछी पोते साधुओने अर्पण करीने पारणुं करे छे. आ कारणथी संघनी अंदर तेनी घणी प्रशंसा थइ. एक दिवस सौधर्म इंद्रे नंदिपेणना नियमनी प्रशंसा करी, तेने नहि सर्दहता वे देवो नंदिपेणना नियमनी परीक्षा करवाने माटे रत्नपुरे आव्या. एक देव नगर बहार उद्यानमां ग्लान मुनिनुं रूप धारण करीने रहो, अने वीजो देव मुनिने रूपे नगरनी अंदर ज्यां नंदिपेण मुनि छष्टनुं पारणुं करवा वेसेछे त्यां आव्यो. जेवामां पहेळो ग्रास (कोळीओ) मुखमां मुकेछे तेवामां पेलो साधुवेषवालों देव त्यां आवीने वोल्यो के—‘अरे! नंदिपेण ! मारा गुरु नगरनी वहार उद्यानमां अतिसारना रोगथी पीडा यामेछे अने तुं वैयावच्च करनार कहेवाय छे छतां निश्चितपणे भोजन करवा केम वेटोछे ?’ तेवां वचन सांभळतांज हाथमां कीधेलो ग्रास छोडी दइ आहार उपर वस्त्र ढांकीने ते साधु साथे नंदिपेण मुनि वहार चाल्या. साधुदेवे कहुं के ‘अरे ! प्रथम देहशुद्धि करवाने माटे तुं जळ लइले.’ एटले नंदिपेण जळ वहोरवा चाल्या. परंतु ते ज्यां ज्यां जायछे त्यां त्यां अशुद्ध जळ मळेछे तोपण ते खिन्न थता नथी. ए प्रमाणे आखा नगरमां वेवार फरतां छतां देवना उपरोधथी तेने शुद्ध जळ मळ्युं नहि. त्रीजी वार जळ केवा फरतां क्लाभांतराय कर्मना क्षयोपशमनी प्रवलता थवाथी अने तपलविधथी देवे करेलो उपरोध निवृत्त थतां शुद्ध जळ मळ्युं, ते जळ लइने देवमुनिनी साथे वननी अंदर ग्लान मुनि पासे आव्या. ग्लान मुनिए नंदिपेणने घणां कर्कश वचनो कहां, परंतु नंदिपेण पोतानोज दोष जुएछे. मननी अंदर जराए क्रोधथी कलुषित थता नथी. तेणे कहुं के ‘हे ग्लान मुनि ! मारो अपराध क्षमा करो.’ एटलुं वोली तेनुं शरीर जळ-डे साफ करी कहुं के ‘हे स्वामी ! आप उपाश्रये पधारो, जेथी औषध करवा

बड़े समाधि पमाढी शकाय,' देवस्तप साधुण करुं के-' हे नंदिपेण ! पारा शरीरमां चालवानी शक्ति नयी तेथी हुं केवी रीते आयुं ?' त्यारे नंदिपेण ग्लान मुनिने पोतानी खांध उपर बेसाडीने चालया. पार्गमां तेणे तेना उपर अति दुर्गंधवाळी अशुभि करी; अने ' अरे नंदिपेण ! तने धिकार छे। कारणके तुं उतावलो उतावलो चाले दे, तेथी मने वहु कष्ट थायछे.' इत्यादि कटु वाक्यथी तेनी वहु तर्जना करे छे, पांतु नंदिपेण तो तीव्रतर शुभ परिणामवाळा थया सता चिंतवेळे के 'आ महात्मा केवी रीत स्वस्थ (निरोगी) थये ?' आम विचारने ते वोल्या के-' अरे ग्लान मुनि ! परं दुष्कृत्य मिथ्या थाओ. हवे हुं तमने सारी रीते लइ जडश' एम वोलता आगळ चालवा लाग्या. पछी देवे विचार कर्या के 'अहो ! आ मुनिने धन्यछे !' के में तेने अत्यंत देव पमाडच्या छतां ते जरा पण चालित थया नहि. माटे इंद्रनुं वचन सत्प छे.' आ प्रमाणे विचार करी देवमायाने संहरी लइ दिव्य रूप धारण करीने वोल्यो के- 'हे स्वामी ! इंद्रे जेवी रीते तमारुं वर्णन कर्युं हतुं तेवैंज में जोयुं. पवित्र आत्मावाळा तमने धन्य छे ! तमेज क्रोधने जीत्योछे. मारो अपराध क्षमा करो.' आ प्रमाणे वारंवार कही नंदिपेण मुनिना पगमां पडी ते देव पोताने स्थाने गयो.

गोशीर्पचंदनथी जेना शरीर उपर लेप करायेलो छे एवा नंदिपेण मुनि पोताने स्थाने आव्या. पछी वणा काळ सुधी वेयावच्च करी नाना प्रकारना अभिग्रहोने पालतां दुष्कर तप कर्युं. वार हजार वर्ष पर्यंत चारीत्रिधर्म पाली प्रांत समये संलेखना करीने दर्भना संथारा उपर बेसी चतुर्विध आहारनो त्याग कर्या. हवे ते समये तेवा कोइ प्रकारना कर्मनो उदय थवाथी पोतानुं संसारीपणानुं दुर्भाग्य याद करी नंदिपेण मुनिए एवं नियाणुं कर्युं के 'आ तपचारित्रादिना प्रभावथी हुं आवता मनुष्यभवमां स्त्रीप्रिय थडं.' ए प्रमाणे निदान करी, मरण पावीने आठमा सहस्रार देवलोकमां देवपणे उत्पन्न थया.

देवलोकथी च्यवीने नंदिपेणनो जीव सोरीपुर नगरमां अंधकविष्णु राजानी सुभद्रा राणीनी कुक्षिमां समुद्रविजय आदि नव मोटा भाइओ पछी वसुदेव नामे नाना भाइ तरीके जन्म्यो. तेणे पाल्ला भवमां निदान करेलुं होवाथी ते अति सौंदर्यवान् सुभग अने लोकप्रिय थयो. ते निश्चितपणे नगरमां स्वेच्छाए फरेछे. तेरुं रूप जोइ मोह पामेली नगरवासी स्त्रीओ घरकाम छोडी तेनी पाल्ल भस्या करे छे. लाजवाळी कुलवान् स्त्रीओ पण पोतानो धर्म तजी देचे. आ प्रमाणे स्त्रीओनुं व्याकुलपणुं जाणी आकुल थयेला नगरवासी लोकोए समुद्रविजय पासे आवी अरज करी के " स्वामित ! आ

वसुदेवने घरनी अंदरज राखवा जोइए, कारणके तेना रूपर्थी मोहित थेछी पौरखी-ओए कुलाचार आदिनो पण त्याग करेल छे, तेने लीधे कुलांगनाना आचारनी हानि थाय छे, अने आ अनाचारने नहि अटकाववाथी तमारो पण दोष गणाय छे.” ए प्रमाणे सांभल्निने समुद्रविजये वसुदेवने योग्य रीते शिखामण आपीने महेलनी अंदर राख्या. ते त्यां कलाभ्यास करवा लाग्या.

एक दिवसे उनाङ्नानी ऋतुमां शीवादेवीए गोशीर्षचंदन घसी सोनानुं कचोलुं भरी दासीना हाथे पोताना पति समुद्रविजयने मोकल्युं. मार्गमां वसुदेवे बलात्कारथी लङ्ग तेनुं पोताना शरीर उपर विलेपन कर्यु. तेथी दासीए कहुं के— अटकचाळा छो तेथीज आवा गुमिस्थानमां राखवामां आव्या छे, पछी ते संवंधी वधो व्यतिकर सांभल्निने पाछली रात्रे एकाकी नगरनी वहार नीकली कोइ स्थानेथी एक मृतक लङ्ग आवी दरवाजा पासे तेने बाळ्निने पछी लख्युं के—‘वसुदेव अत्र बळी मुओछे, तेथी हवे नगरना सर्व लोकोए सुखेथी रहेवुं.’ आ प्रमाणे लखीने ते नगरमाठी नीकली गया, प्रातः-काके समुद्रविजये ते बात सांभल्निने अति शोक कर्यो अने विचारवा लाग्या के—‘अरे ! आ मानीए दुङ्कुलने उचित शुं कर्यु ? पण हवे शुं करीए ? भावि कोइ प्रकारे अन्यथा थतुं नर्थी.’ वसुदेव पण पृथ्वीमां भ्रमण करता सता नवां नवां रूप, नवा नवा वेप ने नवां नवां आचरणोथी भाग्यवशात् हजारो विद्याधरनी कन्याओ अने हजारो राजकन्याओ परण्या, ए प्रमाणे एकसो वीश वर्ष पर्यंत देशाटन करतां तेणे ७२००० खी-ओनुं पाणिग्रहण कर्यु. पछी रोहिणीना स्वयंवरमां आवीने कुबजरूपर्थी तेने परणी, यादवो साथे युद्ध करी, चमत्कार देखाडी, पोतानुं स्वरूप प्रगट करी समुद्रविजय आदिने आनंद उत्पन्न कर्यो. लोको आश्र्य पाम्या अने कहेवा लाग्या के “अहो ! आना पूर्व पुण्यनो प्राग्भार तो वहु विशेष जणाय छे.” पछी स्वजनोनी साथे वसुदेव सोरीपुर नगरे आव्या, अने छेवटे देवक राजानी पुत्री देवकीनुं पाणिग्रहण कर्यु, ते देवकीनी कुक्षिथी श्रीकृष्ण वासुदेव उत्पन्न थया अने तेना पुत्रो शांव, प्रद्युम्न विगेरे थया. आ प्रमाणे वसुदेव हरिवंशना पितामह थया.

आ सघलुं पूर्व भागमां आचरेला वैयावच रूप अभ्यंतर ने छट अटमादि बाहा तपनुं फल जाणवुं. ए प्रमाणे वीजाओए पण वंने प्रकारनां तपने विषे प्रयत्न करवो.

सपरक्म रातलवाँइएण, सिंसे पलाविए निअए।

गयसुकैमालेण र्खमा, तहाँ कर्या जाँह शिँवं पैत्तो ॥ ५५ ॥

१ वंदीखानामी.

“पराक्रमवाला अने राजाना वंशु वहु लालनपालन करेता एवा गजसुकमालि
मुनिए पोतानुं मस्तक बलते सते पण एवी क्षमा करी के जेथी तेओं मोक्ष प्रत्येपाम्या।”
अहीं गजसुकमालनुं दृष्टांत जाणवूँ, २८.

गजसुकमालनी कथा।

द्वारिका नगरीमां श्री कृष्ण नामे वायुदेव राजा हता, तेनी माता देवकी नामे
हती, त्यां श्री नेमिनाथ जिनेवर समवसर्या, देवोण आवीने समवसरण कर्युँ, नेमिनाथ
भगवाने देशना आपी, सभाजनो पोतपोताना स्थाने जतां भद्रिलपुरमां रहेनारा छ
भाइ साधुओ भगवाननी आज्ञा लइ छट्टने पारणे वर्वना संयोगे त्रण भागे नगरीमां
भिक्षा अर्थं नीकलया, तेमांना पहेला वे मुनि फरतां फरतां देवकीना मंदिर आव्या,
तेमने जोड्ने मनमां अति हरखाती देवकीए लाडुवडे प्रतिलाम्या, तेथोना गया पद्धी
वीजा वे मुनि पण त्यांज आव्या, तेमनुं पण देवकीए भाव पूर्वक मोदक वहोरावी
सन्मान कर्युँ, तेओना गया पद्धी दैवयोगे वीजा वे मुनि पण आव्या, सरखी आकृ
तिवाला अने अति उल्ल्यास उत्पन्न करनारा तेमने जोड्ने देवकी विचार करवा लाग्या
के “आ प्रमाणे एक ने एक ठेकाणे वीजीवार आहारमाटे आववूँ शृङ्ख साधुओने घट्टनुं
नथी; तेथी आनुं शुँ कारण हशे ?” ए प्रमाणे विचार करी तेमने पूछ्युँ के—“हे महा-
नुभाव ! आ द्वारका नगरी वहु विशाळ छे, तेमां श्रावको पण घणा छे; ते छतां
वारेवारे अहीं आववानुं प्रयोजन शुँ छे ? शुँ आ नगरीमां आहार मळतो नथी ?
अथवा शुँ साधुओ वधारे छे ? के भूलथी आववूँ थयुँ छे ?” ए प्रमाणे देवकीए
पूछवाई ते साधु वोल्या के—“हे सुश्राविका ! अमे छ भाइओ छीए, छट्टने पारणे
प्रथक् प्रथक् वहोरवा नीकलतां जुदा जुदा तमारे घेर आवेला छीए, अमे एक सरखी
आकृतिवाला होवाथी तमने संशय उत्पन्न थयेलो छे,” ते सांभळी देवकीए विचार
कर्यो के “आ छए मुनि सरखी आकृतिवाला छे अने कृष्ण जेवा देखाय छे, मने
पणे एओने जोवाथी पुत्रदर्शन तुल्य आनंद थायछे, पूर्वे पण अतिसुक्त मुनिए मने
कहुँ हतुं के ‘तने आठ पुत्र थशे,’ तेथी आ मारा पुत्रो तो नहि होय ?” एवो
संदेह तेने थयो, वीजे दिवसे ते नेमीश्वर भगवान पासे गइ अने वांदीने पूछ्वा लागी
के—“हे स्वामिन् ! गइ काले छ साधुओना दर्शनथी मने घणो आनंद थयो, तेथी
ते उपरना अति स्नेहतुं शुँ कारण छे ?” भगवाने कहुँ के—“ए छए साधुओ तारा
पुत्रो छे, कंसना भयथी हरिणगमेषी देवे तेने जन्मतांज उपाडी तेने वदले मुलसाना
मृतक पुत्रो, मूर्कीने भद्रिलपुरमां नागपत्नी सुलसाना घेरे तेमने सोंप्या हत

तेओ मोटा थया. युवान वर्य पामतां तेओने वत्रीश वत्रीश कन्याओ परणावी. तेओए मारी देशना सांभलीने वैराग्य प्राप्त थवाथी संसारनो त्याग करी चारित्र ग्रहण कर्युः तेओ कायम छट्ठनो तप करवा लाग्या. आजे छट्ठने पारणे मारा आदेशथी नगरीमां आहार अर्थे नीकळच्या; अने तमारे घेर प्रथक् प्रथक् जोडले आव्या. तेमने जोवाथी पुत्रसंवंधने लीघे तमने हर्ष उत्पन्न थयो.”

आ प्रमाणे भगवाननां वचन सांभलीने देवकी घेरे आवी पश्चात्ताप करती सती पनमां विचारवा लागी के ‘विकासित मुखवाळा अने कोमळ हाथ प्रगवाळा पोताना पुत्रने जे रमाडे छे अने खोळामां वेसाडेछे ते खीने धन्य छे! हुं तो अधन्य अने दुर्भागी छुं; कारणके में मारा एक पुत्रने पण रमाड्यो नथी.’ आ प्रमाणे चिंतायुक्त थइने भूमि तरफ दृष्टि राखी रहेला पोतानी माता देवकीने कृष्णे दीठा, एटले तेमणे चिंतानुं कारण पूछ्यु. देवकीए चिंतानुं कारण कही बताव्यु. पछी मातानो मनोरथ पूर्ण करवा माटे अहम तप करीने तेणे देवतुं आशधन कर्यु. देवे आवीने वरदान आप्यु के ‘देवकीने पुत्र थशे, पण ते घणा काळ सुधी घरमां रहेशे नहि.’ एवुं कही देव स्वस्थाने गयो.

अनुक्रमे सिंहना स्वप्नथी सूचित पुत्र थयो. तेनुं नाम गजसुकमाल राखवामां आव्यु. क्रमे करीने ते आठ वर्षनो थयो. माताना आग्रहथी तेने सोमिल ब्राह्मणनी आठ पुत्री परणावी. पछी नेमीश्वर भगवाननी देशना सांभली संसारनी असारता जाणी गजसुकमाले चारित्र ग्रहण कर्यु; अने प्रभुनी आज्ञा लइ स्मरानभूमिमां कायो-त्सर्ग मुद्राए रहा.

ते अवसरे फरतां फरतां त्यां आवेला सोमिले तेने जोइने कहुं के—‘आ दुष्टे मारी निरपराधी बालाओने फोगट परणीने वगोवी.’ आ प्रमाणे उत्पन्न थयेल छे द्वेष जेने एवा सोमिले तेना मस्तक उपर माटीनी पाळ वांधीने तेमां धगधगता अंगारा भर्या. अग्निवडे मस्तक बळतां छतां पण गजसुकमाले अपूर्व क्षमा धारण करी अने शुक्ल ध्यानवडे अंतकृत केवली थइने मोक्षे गया.

वीजे दिवसे श्रीकृष्ण प्रभुने वांदवा आव्या. तेणे प्रभुने पूछ्यु के—‘गजसुकमाल क्यां छे?’ भगवाने कर्यु के—‘तेणे पोतानुं काम साधी लीधुं.’ एम कहीने पछी तेनुं नघळुं उचांत कहुं. कृष्णे कहुं के—‘हे स्वामिन्! आ कुकर्य कोणे कर्यु?’ भगवाने कहुं के—‘तने जोइने जेनुं हृदय फाटी जाय ने मृत्यु पामे तेनाथी ए कार्य थयुं छे एम समजजे.’ शोकमग्न थयेल कृष्ण नगर तरफ पाढा आवता हता तेवां तेने सोमिल

सामो मव्यो, भयथी नासतां तेनुं हृदय फाटी जवाथी ते मरण पामीने कृषित्याना पापथी सातमी नरके गयो,

धैर्यवान गजसुकमाले जे प्रमाणे क्षमा धारण करी ते प्रमाणे अन्य प्राणीओए पण समग्र सिद्धिने देनारी क्षमा धारण करवी एवो आ कथावडे उपदेश देते.

रायकुलेसुवि जायाँ, भीयाँ जरमरणगैभवसहीणं ।

सौहु संहंति संव्वं, नीयार्णवि पेसंपेसाणं ॥ ५६ ॥

अर्थ—“राजकुलमां उत्पन्न थएला छतां पण जरा मरण ने गर्भावासनां दुःखयी भय पामेला एवा मुनि पोताना दासना करेला सर्वे उपसर्गों पण सहन करे छे.” ॥ ५६ ॥

पण्मंति यैं पुब्बैयरं, कुलंया नैं न्मंति अकुलंया पुरिसा ।

पण्ओ औं पुव्विं इहं जइ—जैणस्स जंह चक्रवट्टिंसुणी ॥ ५७ ॥

अर्थ—“कुलवान पुरुषो प्रथम नमे छे, अकुलीन नमता नयी. अहीं जेम चक्रवर्ती मुनि (पूर्वना) यतिजनने प्रथम नम्या (तेनुं वृषांत जाणवूं). ५७. अर्थात् पोते छ खंडनी ऋषिथ छोडीने मुनि थयेला छतां पूर्वना-दीक्षा पर्याये ज्येष्ठ मुनिने चक्रवर्ती मुनि प्रथम नम्या”. ५७.

जंह चक्रवट्टीसाहू, सामाइअ साहूण निरुव्यारं ।

भणिंओ नचैवं कुविंओ, पंण्ओ वहूअंत्तण गुणेणं ॥ ५८ ॥

अर्थ—“जेम चक्रवर्ती साहुने(प्रथम वीजा मुनिओने नमस्कार न करवाथी) सामान्य साधुए निष्ठुरपणे तुंकारो करीने कहुं के (तुं आ ताराथी दीक्षापर्याये मोटा मुनिओने वंदना कर) तथापि ते विलकुल कोपायमान थया नहि अने ज्ञान दर्शन चारित्र गुणवडे श्रेष्ठ-बहुपणावाला मुनिओने नम्या.” ५८.

अहीं सामान्य साधु ते दीक्षापर्याये लघु समजवा.

तेै धन्नाँ तेै साहू, तेसिं न्मो जेै अकज्ज परिविस्या ।

धीराै वर्यै मासिहारं—चंरंति जंह थूलिंभैहसुणी ॥ ५९ ॥

गाथा ५६—भीताः त्रस्ताः साहु.

गाथा ५८—चक्रवटि. साहु. साहूण, साहूण. निरुव्यारं.

गाथा ५९—परिविस्या. थूलसहसुणी.

अर्थ—“ते पुरुष धन्य—कृतपुण्य, ते साधु—सत्पुरुष, ते पुरुषने नमस्कार थाओ के जे अकार्यथी निवृत्त थया छे. एवा धीर पुरुषो जेम शूलिभद्र मुनिए आचर्ये तेम व्रत जे चतुर्थ व्रत ते असिधार सदृश—खड्गनी धार उपर चालवानी जेवुं आचरे छे—पाले छे.” ८९. अहं श्रीस्थूलिभद्रनुं दृष्टांत जाणवुं. १९.

श्री स्थूलिभद्रनुं दृष्टांतः.

पाटकीपुरमां नंद नामे राजा हतो. तेने शकडाल नामे नागरब्राह्मण ज्ञातिनो मंत्री हतो. तेने लाङ्डलदे नामनी स्त्री हती. तेने स्थूलिभद्र नामे मोटो पुत्र हतो अने वीजो श्रीयक नामे हतो, तथा घट्षा आदि सात पुत्रीओ हती. स्थूलिभद्र युवावस्थामां विनोद करतो सतो एक दिवस मित्रोथी परिवृत्त थइ बन जोवाने गयो. पाढ्हो आवतां तेने कोशा नामनी वेश्याए जोयो. तेना रूपथी मोहित थयेली ते वेश्याए तेने वात करवाना मिषथी खोटी करी चातुर्युगुणथी तेनुं चित्त वश करी लीधुं. स्थूलिभद्र पण तेना गुण ने रूपथी रंजित थइ ते वेश्याने घेर रह्यो; अने तेनी साथे विषयमुख भोगवतो सतो ते नवा नवा विनोद करवा लाग्यो. तेना पिता पण पुष्कल द्रव्य मोकलवा बडे तेनुं इच्छित पूर्ण करवा लाग्या. ए प्रमाणे त्यां वार वर्ष सुधी रहेला स्थूलिभद्रे साढीवार क्रोड सोनामहोरनो व्यय कर्यो. ते अवसरे वरस्त्रचि ब्राह्मणे करेला प्रयोगथी शकडाल मंत्रीनुं मरण थयुं. ते वस्ते नंद राजाए श्रीयकने प्रधानपद आपवाने माटे वोकाव्यो. त्यारे श्रीयके कहुं के—‘हे स्वामी! मारो मोटो भाइ कोशा वेश्याने घेरे छे, ते प्रधानपदने योग्य छे.’ नंदे तेने वो-लाववाने सेवको मोकल्या. ते आव्यो. तेने मंत्रीपद आपतां तेणे एकाएक न स्वीकार्यु. राजाए कारण पुछतां स्थूलिभद्रे कहुं के—‘स्वामिन! विचार करने ग्रहण करीश.’ राजाए विचार करवानी रजा आपी, एठ्ले अशोकवाटिकामां एकांत स्थले जड्ने विचार करवा काग्यो के—‘आ संसारमां कोइ कोइनुं नथी. सर्व स्वार्थी छे.’ कहुं छे के—

वृक्षं क्षीणफलं त्यजन्ति विहगाः शुष्कं सरं सारसाः ।

पुष्पं पर्युषितं त्यजन्ति मधुपा दग्धं वनांतं मृगाः ॥

निर्द्रव्यं पुरुषं त्यजन्ति गणिका भृष्टं नृपं सेवकाः ।

सर्वः स्वार्थवशाज्जनोभिरमते नो कस्य को वल्लभः ॥

“पक्षीओ फल विनाना वृक्षनो, सारस पक्षीओ जल विनाना सरोवरनो, भ्रमरो पायेला पुष्पोनो, मृगो वलेला वननो, गणिका निर्धन पुरुषनो अने सेवकांको

राज्यभ्रष्ट थयेला राजानो त्याग करे छे. माटे सर्व स्वार्थने वश थइने रम्या करे छे, वाकी वास्तविक रीते कोइ कोइने प्रिय नथी।” “ज्यारे मारा पिता राज्यनां अनेक कार्यों कर्या छतां प्राते कुपृथ्युथी मरण पाम्या तो मने आ राज्यमुद्राथी शुं सुख मळ्यो. माटे आ अनर्थना कारणभूत राज्यमुद्राने धारण करवी तेने धिकार छे! अने आ विषयसुखने पण धिकार छे! के जेथी तेने वश थयेला एवा मने पिताना मरणनी पण खवर पडी नहि。” ए प्रमाणे विचार करी, वैराग्यपरायण थइ, पंचमुष्टि लोच करी, शासन-देवीए आपेक्षा साधुवेपने धारण करी, राजानीं सभामां आवीने तेणे धर्मकाभ आप्यो. आ जोइ सकल सभा आश्रय पामी. नंद राजाए पूछ्युं के—‘आ शुं कर्यु? ’ स्थूलिभद्रे कह्युं के—‘मैं सारी रीते विचार्यु अने पछी करवा योग्य लाग्युं ते कर्यु.’ एम कही श्री संभूतिविजय आचार्य पासे जह विधिपूर्वक चारित्र ग्रहण कर्यु.

आ हकीकत सांभळी कोशा अति दुःखित थइ आंखमां अथु लावी विरहातुरपणे विविध प्रकारना विलाप करवा लागी के—‘हे चतुर चाणाक्य! तमे राज्यमुद्रा तजीने भिक्षुमुद्रा शामाटे अंगीकार करी? हे प्राणनाथ! मारे तमारा विना कोनो आधार छे? हवे हुं शुं करह? केवी रीते जीबुं? ’ एवी रीते अनेक प्रकारना विरहवाक्यो बोलवा लागी.

अहीं स्थूलिभद्रने घणा दिवसो व्यतीत थतां चातुर्मास उपर एक साधुए गुरु पासे आवीने कह्युं के—‘सिंहगुफा पासे चातुर्मास करवा इच्छुं छुं.’ ए प्रमाणे आज्ञा मागी एट्के वीजा मुनिए कह्युं के—‘हुं सर्पना वील पासे चातुर्मास करवा इच्छुं छुं.’ त्रीजा मुनिए कह्युं के—‘हुं कुवानी अंतराळे रहेक लाकडा उपर (भारवट उपर) चातुर्मास करवा इच्छुं छुं.’ त्यारे चोथा साधु स्थूलिभद्रे कह्युं के—‘हुं कोशा वेश्याना घरमां चातुर्मास करवा इच्छुं छुं.’ गुरुए योग्यता जाणीने चारे मुनिने आज्ञा आपी.

स्थूलिभद्र गुस्ने नमीने कोशा वेश्याने घेर गया. तेने आवतां जोइ कोशा अति ह-पित थइ अने सामे आवीने पगमां पडी. तेनी आज्ञा लइ स्थूलिभद्र तेनी चित्रशालामां चातुर्मास रहा. ते हमेशां षट्क्रसनो आहार करे छे, समय पण वर्षा त्रितुनो छे, निवास चित्रशालामां छे, प्रीति कोशानी छे, अने परिचय वार वर्षनो छे. वळी नेत्र ने मुखनो विलास, हावभाव, गान, तान, मान, वीणा ने मूर्दगना मधुर शब्दो सहित नाट्यविनोद विगेरे नाना प्रकारना विषयोने स्थूलिभद्र आगळ प्रगट करती अने पोतानो हावभाव वतावती कोशा कहे छे. के—‘हे स्वामिन! स्वाधीन एवी कामिनीनां कुचसर्पश अने आळिंगन आदि छोडीने आवुं कठोर तप शामाटे करो छो? ’ कह्युं छे. के—

संदेषधरपल्लवे सचकितं हस्ताग्रमाधुन्वती ।

मामा मुंच शठोति कोपवचनैरानर्त्तिभूलता ॥

सीत्कारांचितलोचना सरभसं यैश्चुंवितो मानिनी ।

प्राप्तं तैरसृतं श्रमाय मथितो मूढैसुरैः सागरः ॥

“ अधर पछवनो दंश करतां चकित थइने हस्तना अग्र भागने धूणावती, अने ‘ नहि नहि, हे शठ ! छोडी दे ’ ए प्रमाणे कोपवचन वोलवा साथे भूलताने नचावती तथा सीत्कारथी सत्कार करायेलां जेनां नेत्र छे एवी मानिनीने जुस्साथी जेणे चुंबन करेलुं छे तेओए खरुं अमृत मेळव्युं छे एम हुं मारुं छुं, वाकी मूढ देवताओए तो फोगट श्रमने माटेज समुद्र मथेलो छे. ” तेथी हे स्थूलिभद्र ! आ त्याग साधवानो समय नथी, माटे मारी साथे यथेच्छ विषयसुख भोगवी तेनो स्वाद ल्यो, फरीथी आ मनु-
ज्यजन्म पामवो दुर्लभ छे अने आ यौवन पण दुर्लभ छे. माटे हे स्वामिन् ! इमणा तो मारा अंगसंगथी उत्पन्न थयेलुं सुख भोगवो, पाउळथी वृद्धावस्थामां आ तप करवो ते उचित छे. ” ते सांभळीने स्थूलिभद्र वोल्या—‘ हे भद्र ! अपावित्र अने मलमूरनुं पात्र एवा कामिनीना शरीरने आलिंगन करवाने कोण इच्छे ? कहुं छे के—

स्तनौ मांसग्रंथी कनककलशावित्युपमितौ ।

सुखं श्लेषमागारं तदपि च शशांकेन तुलितम् ॥

स्ववन्मूत्रकिलन्नं करिवरशिरःस्पर्छिजघनं ।

मुहुर्निंद्यं रूपं कविजनविशेषैर्गुरुकृतम् ॥

“ स्तनो मांसनी गांठ छे छतां कविजनोए तेने सोनाना कलशनी उपमा आ-
पीछे, मुख श्लेषम (कफ) नुं स्थान छे तोपण कविओए तेनी चंद्र साथे सरखामणी
करी छे अने स्वता मूत्रथी व्याप्त एवा जघनने हाथीना गंडस्थलनी साथे सरखाव्युं
छे. ए प्रमाणे वारंवार निंदवा लायक स्त्रीना स्वरूपने कविओएज विशेष महत्वता
आपी छे. ” वळी—

वरं ज्वलदयस्तंभः, परिरंभो विधीयते ।

न पुनर्नरकद्वारामाजघनसेवनम् ॥

“ तपावेला लोहाना थांभलाने आलिंगन करबुं ए साहं छे, परंतु नरकना द्वार रूप
रीना जघननुं सेवन करबुं ए साहं नथी. ” वळी एक वखतना स्त्रीसंभोगथी अनेक
ोवोनो घात थाय छे कहुं छे के-

मेहुणसन्नाखडो, नवलखख हणेइ सुहुमजीवाण ।

तिथ्ययरणं भणियं, सद्दहियवं पथत्तेण ॥

“मैथुनसंज्ञाने विषे आस्त्र धयेलो जीव नव लाख सूक्ष्म जीवोने हणेहे एम तीर्थकर भगवंते कहेलुं छे तेने प्रयत्न पूर्वक सर्दहवुं.”

बळी हे कोशा ! आ विषयो अनेकवार भोगव्या छता तेनाथी तृप्ति थती नयी. कहुं छे के-

अवश्यं यातारश्चिरतसुपित्वापि विषया ।

विषयोगे को भेदस्त्यजति न जनो यत्स्वयमसून् ॥

ब्रजंतः स्वातंत्र्यादत्तुलपरितापाय मनसः ।

स्वयं त्यक्त्वा हेते शिवसुखमनन्तं विदधति ॥

“आ विषयो लांवा बखत सुधी रहीने पण छेवटे जनारा छे ए तो नकी छे, तो पछी तेना विषयोगपां फेर शो छे के जेयी माणसो पोतानी मेले विषयोने छोडता नयी; केमके जो ए विषयो पोतानी मेले आपणायी छुटा पडे छे तो मनने अति परिताप उत्पन्न करे छे, पण जो आपणे पोतेज खुशीधी तेनो त्याग करीए छीए तो ते मोक्षसुख आपे छे.” एटलामाटे सर्पनी फण जेवा आ विषयोने छोडी दइ शील स्थपी अलंकारयी तारा सुंदर अंगने अलंकृत कर. आ मनुष्यभव फरीथी मलबो मुक्केल छे, अने ते भव धर्म विना हारी जडश. कारणके सर्व कार्योमां उत्तम कार्य धर्म छे, कहुं छे के-

न धर्मकज्जा परमत्थि कज्जं, न पाणिहिंसा परमं अकज्जं ।

न पेमरागा परमत्थि वंधो, न बोहिलाभा परमत्थि लाभो ॥

“धर्मकार्यथी उत्कृष्ट वीजुं कोइ कार्य नयी, प्राणीनी हिंसा उपरांत वीजुं कोइ अकार्य नयी, प्रेमरागथी विशेष कोइ वंधन नयी अने बोधि (सम्यक्त) ना लाभ उपरांत वीजो कोइ परम लाभ नयी.” इत्यादि उपदेश आपीने जेनुं मन वालेलुं छे एवी कोशा बोली के-‘हे कंदर्पतुं विदारण करनार ! हे शासननो उद्योत करनार ! हे मिथ्यात्वने निवारनार ! तपने धन्य छे, तमेज खरेखरुं जीविततुं फल मेलच्युं छे. हुं अधन्य छुं, मैं तपने वहु रीते चलाववा प्रयास कर्यो पण तमे चल्या नहि. हवे कृपा करीने सम्यक्त्व आपीने मारो उद्धार करो.’ आ प्रमाणे कहीने स्थूलिभद्रनी पासे सम्यक्त्वा उच्चार पूर्वक बार व्रत अंगीकार करी ते कोशा परम श्राविका थइ. ते साथे

‘राजाए मोकलेल पुरुप शिवाय अन्य पुस्पनो वचनथी पण हुं स्वीकारकरीश नहि’ ए प्रमाणे भोग संवंधी पच्चरखाण लीहुं, तेमज जीव अजीव आदि तत्त्वोनी पण जाणकार थइ.

ए प्रमाणे कोशा वेश्याने प्रतिवोध पमाडी चातुर्मास पूर्ण करी स्थूलिभद्र मुनि श्री संभूति विजयाचार्यनी पासे आव्या. पेला त्रण मुनिओ स्थूलिभद्रनी पहेलां आव्या हता. गुरुए ते त्रणेने ‘दुष्कर कार्य कर्यु’ ए प्रमाणे एकवार कहीने मान आप्युं हतुं; परंतु स्थूलिभद्र मुनिने ‘दुष्कर कार्य कर्यु’ एम त्रणवार कही घणा आदर पूर्वक मान आप्युं. ते जोइ सिंह-गुफावासी मुनिना मनमां मत्सर आव्यो के “गुरुनो विवेक तो जुओ के तेओए क्षुधा ने तृपाथी पीडायेला अमोने ‘दुष्कर कर्यु’ एम मात्र एक वखत कहुं, अने घट्रसने खानार तथा मोह उपजावे एवा स्थाननी अंदर रहेनारने ‘दुष्कर दुष्कर कर्यु’ एम त्रण वखत कहुं.” ए प्रमाणे तेणे मनमां मत्सर धारण कर्यो.

हवे एक दिवस नंद राजानी आज्ञाथी कोइ रथकार कोशा वेश्याना मंदिरे आव्यो. तेनी वारीमां रहीने तेणे वाणसंधान विद्याथी आम्रफलनी लुंब त्यां वेठा वेठा आणी पोतानी कळा वतावी, एटले कोशाए पण पोताना अंगणामां सरसवनो ढगळो करावी, तेना उपर सोय मूकी, तेना उपर एक पुष्प मूकीने तेना उपर नृत्य कर्यु. ते जोइ रथकार चमत्कार पार्माने वोल्यो के—‘आ अति कठिन काम छे.’ त्यारे कोशाए कहुं के—

न दुकरं अंबयलुं बतोडणं, न दुकरं सिरसव नच्चिआए ॥

तं दुकरं तं च महानुभावं, जं सो मुणी पमयवणं मि बुच्छो ॥१॥

“ आंवानी लुंब तोडवी ते दुष्कर नहि तेमज सरसव उपर नाचवुं ते पण दुष्कर नहि; दुष्कर तो ए छे के जे ते महानुभाव स्थूलिभद्रे कर्यु अने प्रमदा रुपी वनमां मोह न पामतां शुद्ध रहा.”

गिरौ गुहायां विजने वनान्तरे, वासं श्रयंतो वशिनः सहस्रः ।

हर्म्योति रम्ये युवतीजनांतिके, वशी स एकः शकडालनंदनः ॥२॥

“ पूर्वतमां, गुफामां, एकांतमां अने वननी अंदर निवास करीने इंद्रियोने वश रा-खनारा हजारो छे, पण अति रम्य हवेलीमां अने स्त्रीजननी समीपमां रहीने इंद्रियोने वश गरवनार तो ते शकडालनंदन एकज छे.”

योऽन्नौ प्रविष्टोऽपि हि नैव दग्धश्छिन्नो न खड्गाश्रकृतप्रचारः ।
कृष्णाहिरंध्रेऽप्युषितो न दृष्टो नोक्तोंजनागारनिवास्यहो यः ॥३ ॥

“जे अश्रीमां प्रवेश कर्या छतां पण बळेल नथी, खड्गनी धार उपर गति करतां छतां छेदायल नथी, काळा सर्पना दर पासे वास करतां छतां जेने दंड थयो नथी अने अंजनना घरमां वास कर्या छतां पण जेने डाघ लाग्यो नथी एवा तो ते स्थूलिभद्र एकज छे.”

वेश्या रागवती सदा तदनुगा पडभीरसैर्भैजिनम्
शुभ्रं धाम मनोहरं वपुरहो नव्यो वयःसंगमः ।
कालोयं जलदाविलस्तदपि यः कामं जिगायादरात्
तं वंदे युवतिप्रबोधकुशलं श्रीस्थूलिभद्रं सुनिम् ॥ ४ ॥

“पूर्वनी प्रीतिवाली वेश्या अने ते पण सर्वदा अनुकूल वर्तनारी, घटरसयुक्त भोजन, सुंदर महेल, मनोहर शरीर, युवावस्था अने वर्षात्रहु—आठलां वानांनो योग छतां पण जेणे आदरथी कामने जीत्यो एवा युवतिजनने प्रतिवोध पमाडवामां कुशल स्थूलिभद्र मुनिने हुं वंदुं छुं.”

रे काम वामनयना तव मुख्यमस्त्रं
वीरा वसंतपिकपंचमचंद्रमुख्याः ।
त्वत्सेवका हरिविरचिमहेश्वराद्या
हा हा हताश मुनिनापि कथं हतस्त्वम् ॥ ५ ॥

“हे काम ! वामनयना तारु मुख्य अख्त छे, वसंतकङ्गु, कोकिल, पंचम स्वर अने चंद्र विगेरे तारा सुभयो छे, अने ब्रह्मा, विष्णु तथा महेश्वरादि तारा सेवको छे, छतां दिलगीरीनी वात छे के हे भग्नाश ! तुं एक मुनिथी केवी रीते हणायो ?”

श्रीनंदीषेणरथनेमिमुनीश्वराद्
बुद्ध्या त्वया मदन रे मुनिरेष दृष्टः ।
ज्ञातं न नेमिमुनिजंब्रसुदर्शनानाम्
तुर्यो भविष्यति निहत्य रणांगणे माम् ॥ ६ ॥

“हे कामदेव ! तें नन्दीपेण, रथनेमि अने आर्द्धुमार मुनीश्वरनी बुद्धिथी आ स्थूलिभद्र मुनिने जोयेला के ते त्रणनी साथे आ चोथा थशे; पण तें एम न जाण्युं के आ तो रणांगणमां मने हणीने नेमिनाथ, जंबूमुनि ने सुर्दर्शन शेठ ए त्रणनी साथे चोथा थशे ?”

श्रीनेमितोपि शकडालसुतं विचार्य
मन्यामहे वयमसुं भटमेकमेव ।
देवोऽद्रिदुर्गमधिरुह्य जिगाय मोहं
यन्मोहनालयमयं तु वशी प्रविश्य ॥ ७ ॥

“श्री नेमिनाथथी पण विचार करतां अमे तो स्थूलिभद्रनेज एक महान योधो गणीए छीए; कारणके श्री नेमिनाथे तो गिरनार दुर्गमो आथ्रय करीने मोहने जीत्योछे, पण इंद्रियोने वश राखनार आ स्थूलिभद्रे तो मोहना घरमां प्रवेश करीने तेने जीती लीयोछे.”

आ प्रमाणे स्तुति करीने कोशाए स्थूलिभद्र मुनितुं वधुं स्वरूप रथकारने कही वताव्युं के बार वर्षनो मारी साथे पूर्व परिचय छतां मारा घरमां आवीने किंचित्प्राप्त पण चलित थया नहि; माटे खरेखरा तो तेज दुष्कर कार्यना करनारा छे. कहुं छे क-

पुफ्फलाणं च रसं, सुराई महिलयाणं च ॥
जाणंतो जे विरह्या, ते दुक्करकारए वंदे ॥

“पुष्प फलादिकनो रस, मदिरा विग्रेनो स्वाद अने स्त्रीओनो विलास, तेने जाणतां छतां अर्थात् जाणीने पण जे विरम्या तेज दुष्करकारक छे तेने हुं नमस्कार करुं हुं.”

इत्यादि स्थूलिभद्रनां स्तुतिवचनोथी प्रतिवोध पामेला रथकारे स्थूलिभद्र मुनि पासे जइने चारित्र लीहुं. स्थूलिभद्र मुनि पण असुक्रमे अर्थ सहित दश पूर्वतुं अने सूत्र मात्रथी वाकीना चार पूर्वतुं अध्ययन करी, चतुर्दश पूर्वीमां छेला थइ, घणा भव्य जीवोने प्रतिवोध पमाडी, पोतानी निर्मल कीर्तिथी आखा जगतने उज्ज्वल करी अने सर्व जनोमां प्रसिद्धि पामी, त्रीश वर्ष घरमां, चोवीश वर्ष व्रतमां अने पीस्ताळीश वर्ष युग प्रधान-पणामां-ए प्रमाणे नवाणु वर्षतुं आयुष्य पालीने महावीर स्वामीथी वसो पंद्रमा वर्षे स्वर्गे गया.

ए प्रमाणे जेम स्थूलिभद्रे हृष्टर व्रतने धारण करी चोरायी चोरीयी मुर्ही पोतानुं नाम राम्युं तेम अन्य मुनिओण पण गुरुनी आज्ञाने अनुसरी ग्रहण करेला व्रतने पाळीने कीर्तिवंत थवुं.

**विसयासिर्पंजरमिव, लोणे असिपंजिगंगि तिंखवंमि ॥
सिंहा व पंजर्गया, वैमंति तवंपंजरे साहृ ॥ ६० ॥**

अर्थ—“लोकने विषे जेम तीक्ष्ण खङ्गना पंजरथी भय पामेल मिंद काष्ठना पांजरामां वसे छे तेम विषय रूप खङ्गपंजरथी भय पामेला मुनिओं तप रूप पंजरमां वसे छे, अर्थात् वार प्रकारनो तप आचरे छे.” ६०

विषय पांच इंद्रियोना शब्दादि जाणवा, तटुप पंजरथी अथवा तचुल्य जे स्थीलोक तेयी भय पामेला मुनिओं संसार तजी दइ चारित्र अंगीकार करीने वाय अभ्यंतर तपने आचरे छे, एट्ले तप रूप पंजरमां वसे छे.

जौ कुण्डे अप्पमार्ण, गुरुवैयणं नर्यं लहेडे उवैंसं ।

सी पच्छां तहं सोअँडे उवकोसंधेरे जंह तवैसी ॥ ६१ ॥

अर्थ—“जे प्राणी आत्ममान करे छे अर्थात् पोताना गुणनुं अभिमान करे छे अने गुरुना वचनने—उपदेशने—आज्ञाने अंगीकार करतो नथी ते प्राणी पाढ्यलयी एवो शोक करे छे के जेवो उपकोशाने घरे गयेला तपस्वी मुनिए कयों.” ६१

‘अहीं जे गुरुना वचनने अप्रमाण करे छे’ एम काणु छे त्यां ‘जे गुरुना उपदेशने मानतो नथी—आज्ञाने मानतो नथी’ एवो अर्थ पण थाय छे.

स्थूलिभद्रजीनी ईर्ष्यायी कोशा वेश्यानी वहेन उपकोशा वेश्याने घरे गयेला सिंहगुफावासी मुनि जे चातुर्मासमां चारे मासना उपवास करीने सिंहनी गुफाने मुखे कायोत्सर्गे रहेता हता तेमनुं दृष्टांत अहीं जाणवुं. २०

सिंहगुफावासी मुनिनुं दृष्टांत.

एक दिवस पाढ्यीपुरमां श्री संभूतिविजय आचार्यना सिंहगुफावासी शिष्ये स्थूलिभद्र उपर ईर्ष्या करी वीजुं चातुर्मास कोशा वेश्यानी वेन उपकोशा वेश्याने घेर करानी गुरु पासे आज्ञा मार्गी. गुरुए अयोग्यता जाणी आज्ञा आपी नहि. गुरुए कहुं के-

‘हे महानुभाव ! त्यां तमारुं चारित्र रहेशे नहि.’ ए प्रमाणे गुरुए वार्या छतां पण ते त्यां गया अने चातुर्मास निवासने माटे याचना करी; ते साथे कहुं के ‘जेवुं स्थूलिभद्रने रहेवा आप्युं हतुं तेवुं स्थानमने रहेवा आपो.’ तेणे ते आप्युं पाढ्याथी उपकोशाए जाण्युं के ‘आ मुनि स्थूलिभद्रनी ईर्ष्या करीने अहीं आवेला छे; तेथी हुं स्थूलिभद्रना गुणमां ईर्ष्या कर्यातुं फल तेने वतावुं.’ ए प्रमाणे विचार करी रात्रिए तमाम प्रकारनां अलंकारो धारण करी, कामदेवने जेणे सजीवन कर्यो छे, जेनां पद्मलोचन प्रफुल्लित थयां छे, जेनां मणिजडित नूपुरो रणकार करे छे, जेणे कटितटमां शब्द करती मेखला धारण करी छे, मुखमां तांबूल चावी रही छे, मधुर स्वरथी जेणे कोकिलना स्वरने पण जीती लीघो छे एवी ते उपकोशो हावभाव वतावती मुनि आगळ आवी. कटाक्ष नांखती अने अंगोपांगने मरडती एवी ते मृगलोचनाने जोड मुनिनुं मन सुस्थिर हतुं छतां पण परवश थइ गयुं. अहो ! कामविकार खरेखर दुर्जय छे. कहुं छे के—

विकलयति कलाकुशलं, हसति शुचिं पंडितं विडंबयति ।

अधरयति धीरपुरुषं, क्षणेन मकरध्वजो देवः ॥

“ कामदेव क्षणमात्रमां कलाकुशलने विकल वनावे छे, पवित्रने हसी कहाडे छे, पंडितने विट्ठणा पमाडे छे अने धीर पुरुषने पण अधैर्य वनावी देखे. ”

वली कहुं छे के—

मत्तेभकुंभदलने भुवि संति शूराः
केचित्प्रत्यन्नंडमृगराजवधेऽपि दक्षाः ।
किंतु ब्रवीमि वलीनां पुरतः प्रसद्य
कंदर्पदर्पदलने विरला मनुष्याः ॥

“ आ पृथ्वी उपर मदोन्मत्त गजेन्द्रना कुंभस्थलने दली नांखवामां शक्तिवान—शूर-वीर एवा मनुष्यो पण होय छे, तेमज प्रचंड केसरीसिंहनो वध करवामां कशल एवा मनुष्यो पण होय छे; परंतु वलवानोनी आगळ हुं आग्रह पूर्वक कहुं हुं के कामदेवना दर्पतुं दलन करवामां कुशल-शक्तिमान एवा मनुष्यो तो विरलाज होय छे. ”

पछी ते सिंहगुफावासी मुनिए कामयी परवश वनी जड्ने उपकोशा पासे भोगनी प्रार्थना करी. त्यारे तेणे कहुं के—‘ अमे निर्धननो आद्र करता नथी, माटे प्रथम धन लावो अने पल्ली इच्छा मुजव वर्तों.’ ए प्रमाणे सांभळी धन मेलववाना उपाय

संवंधी चित्तन करतां तेने याद आव्युं के 'उत्तर दिशामां नेपाल देशनो राजा अर्पण (नवा) साधुने लक्ष मूल्यनुं रत्नकंबल आएँ, माट त्यां जइ, रत्नकंबल लार्वा, आनी साथे विषयसुख सेवीने मनडाच्छित परिपूर्ण करुं.' आ प्रमाणे विचारी वर्पाकालमां मेघनी पुफ्कल द्याउ थती हतां नेपाल देश प्रति प्रयाण कर्युं. यणा जीवोनुं उपर्देन करतो अने अनेक कष्टो सहन करतो केटल्येक दिवसे ते नेपाल देशे पट्टोच्यो, अने आशिर्वाद पूर्वक राजानी पासे रत्नकंबल माग्युं. राजाए ते आप्युं. ते लङ्गने पाद्या फरतां मार्गमां चोरोए लुंटी लीयुं, तेथी तेणे फरीवार नेपाल जड राजाने अरज करी एटले तेने फरीयी रत्नकंबल आपवामां आव्युं. ते रत्नकंबलने बांसमां नाखी गुम रीते लावतां चोरनी पाळना पोपटे चोरोने ते जणाववाथी तेओए तेने धेरी लीयो अने कर्णु के 'एक लाखनी किमतनुं रत्नकंबल तारी पासेले ते वताव.' तेणे कर्णु के-'मारी पासे कंड नथी.' चोरोए कर्णु के-'अमारो आ पोपट खोट्टै बोले नहि माट सत्य बोल, अमे ते लङ्गुं नहि.' तेथी तेणे सत्य कहेवाथी भिक्षुक जाणीने तेने जवा दीधो. अनुक्रमे ते पाडलीपुर आओ अने रत्नकंबल उपकोशाने आप्युं. तेणे तेनावडे पोताना पग लुंछीने तेने दूर अपवित्र स्थानमां फेंकी दीयुं. त्यारे साधुए कर्णु के 'अरे निर्भागिणी ! आ तें शुं कर्यु ? आ रत्नकंबल अतिदुर्लभ छे.' ते सांभली वेश्याए कर्णु के-'तारायी वली वीजो कोण निर्भागीमां शिरोमाणि छे ? मैं तो आ लक्ष्य मूल्यनुं रत्नकंबल अपवित्र जग्यामां नाखी दीयुंछे, पण तें तो अमूल्य एवा ज्ञान दर्शन चारित्र रूप रत्नत्रय के जे अनंत भवमां पण पामवा दुर्लभ ते नट वीट पुरुषने धुंकवाना पात्र जेवा अने अपवित्र मळमूर्यी भरेला एवा मारा देहमां फेंकी दीधा छे; माटे वगर विचार्यु करनार एवा तने धिक्कार छे ! आ मनुष्यभव दुर्लभ छे, तेमां पण उत्तम कुळ दुर्लभ छे; तेमां धर्मनुं अवण दुर्लभ छे, तेमां अद्वा रूप तत्त्व दुर्लभ छे, अने तेमां पण साधुधर्माचरण तो अति दुर्लभ छे. ते छतां मुक्तिने देनारा साधुत्वने तजी दड मारा अंगमां मोह पामी वर्पाकाले नेपाल देशमां गमन करी वहु जीवोनो धात करवा पूर्वक चारित्रनो त्याग करवाथी दीर्घ काल पर्यंत नरकादि दुर्गतिनी वेदनाने तुं केवी रीते सहन करीश !' इत्यादि वाक्यो सांभलीने पुनः वैराग्य प्राप्त धवाथी ते मुनि कहेवा लाग्या के-' तेने धन्य छे ! भवकूपमां पडतां मारो तें उद्धार कर्यो. हवे हुं अकृत्यथी निवृत्त थयोछुं.' त्यारे वेश्याए कर्णु के-'तमारा जेवाने एमज घटेछे.'

पछी ते मुनि गुरु पासे आव्या, चरणमां पडीने र लिभद्र मुनिने खमाव्या अने कर्णु के-'तमने धन्य छे ! आ पनुं काम आपज जाणो. अमारा जेवा सत्वहीन जाणी शके नहि.' पछी तेणे गुरुने जणाव्युं के " हे स्वामिन् ! आपे त्रणवार ' दुष्कर करनार

एम स्थूलिभद्रने जे कहुं ते सत्य छे: ' ए प्रमाणे कही पापनी आलोचना करी, फरीथी चारित्र ग्रहण करीने ते मुनि सद्गतिए गया. माटे गुरुनी आज्ञा पूर्वक जे आचरवुं तेज श्रेष्ठ छे, एवो आ कथानो उपदेश छे.

जिङ्गवयपव्यभरं—समुव्यहणववसिअस्स अञ्चतं ।

जुवइ जणै संवइयरे, जइत्तर्णं उभैओ भईंडुं ॥ ६२ ॥

अर्थ—"ज्येष्ठव्रत जे महाव्रत ते पर्वतना भार सदृश छे, तेने वहन करवामां अत्यंत उद्यमी एवा मुनि पण युवतिजननो संसर्ग कर्ये सते द्रव्यथी ने भावथी वने प्रकारना यतिपणाथी भ्रष्ट ध्याय छे." ६२.

जई ठाँणी जई मोँणी, जई मुँडी वकँली तवँस्सी वा ।

पथिंथतो अं—अंवंभं, वंभाँवि नं रोचए मझँझं ॥ ६३ ॥

अर्थ—"जो स्थानी के० कायोत्सर्ग करनारो होय, जो मौनी के० मौन धारण करनार होय, जो मुँडि के० माथे मुँडन करावनारो होय, अथवा वल्कली के० झाडनी छालनां वस्त्र पहरनारो होय के तपस्वी के० अनेक प्रकारनां तप करनारो होय तो पण अब्रह्म जे मैथुन तेने प्रार्थतो—वांछतो होय तो ते कादि ब्रह्मा होय तो पण ते मने रुचतो नथी. अर्थात् गमे तेवुं कष्ट करनार होय पण जो ते मैथुनाभिलाषी होय तो ते श्रेष्ठ नथी." ६३.

तो पाँढियं तो युरिंयं तो मुरिंयं तो अं चेइओ अप्पा ।

आवडिय पल्लिया मंतिओवि, जई नं कुण्ड अकँजं ॥ ६४ ॥

अर्थ—"जो अकुलिनना संसर्ग स्वप्न आपदामां पड्यो सतो एट्ले कुमित्रे प्रेयों सतो अने स्त्रीए आमंत्रित कर्यो सतो—बोलाव्यो सतो पण जे अकार्य प्रत्ये जतो नथी-आचरतो नथी तो तेनुं भणेलुं प्रमाण, गणेलुं प्रमाण, जाणेलुं प्रमाण अनेआत्म स्वरूपनुं चिंतवन पण प्रमाण समजवुं." ६४. नहीं तो ते वधुं अप्रमाण जाणवुं.

पागडिय सव्वसलो, युरुपायमूर्लमि लहँइ साहूँ पयं ।

अविसुद्धैस्स नं वर्द्दइ, युर्णसेदी तत्त्विया ठाँइ ॥ ६५ ॥

गाथा ६२—स्त्रीजनसंसर्गकृते.

गाथा ६३—ठाणि. पथिंथतो. रोयए:

गाथा ६४—पुर्णायं. पिल्लिया.

गाथा ६५—पादमुर्लंसि. साहूपयं. तित्तिया.

अर्थ—“गुरु महाराजना पादमूले—गुरुसमीपं जेणं सर्वं शल्यं प्रगट कर्या छ—सर्वं पापं आलोच्यां छे ते प्राणी साधुताने पामे छे; अने अविशुद्धनी—अनान्दाचित् पापकर्मवालानी गुणश्रेणि तेटलीज रहे छे—शृङ्खि पामती नथी.” ६५. अर्थान् पापकर्म आलोच्याने निःशल्य थया बिना गुणो शृङ्खि पामता नथी; तेटलेज अटकी रहे छे.

जई दुप्कर दुप्करकारउत्ति, भैणिओ जहैडिओ साँहू ।

त्तो कीस अजसंभूअँ—विजयसीसेहिं नवि खेमियं ॥ ६६ ॥

अर्थ—“जो यथास्थित एवा श्री स्थूलिभद्र नामना साधुने गुरुए (कोशाने त्यां चोमासुं रहीने आध्या त्यारे) ‘दुप्कर दुप्कर कारक’ एवा वहुमानपूर्वक वोलाव्या तो ते गुरुवचनने श्री संभूतिविजयना शिष्य सिंहगुफावारी मुनिए शापाटे न खम्यु—न सहन कर्यु ?” आ तेमनु निविवेकीपणु छे; माटे यथास्थित गुणोने जोइने के सांभलीने तेना पर तो अनुरागज करवो; द्वेष न करवो.

जई ताँव सब्वैओ सुंदरुत्ति, कम्माण उवैसमेण जई ॥

धर्ममं वियाँमाणो, इयैरो किं^३ मच्छेरं वहैइ ॥ ६७ ॥

अर्थ—“जो कोइ प्रथम कर्मना उपशमवडे करिने सर्वं प्रकारे सुंदर कहेथाय तो वीजो यतिधर्मने जाणतो सतो शामाटे तेना उपर मत्सर वहन करे?” ६७. अर्थात् विरुद्ध कर्मना क्षयोपशमवडे कोइ जीवनी ‘आ सर्वं प्रकारे सारो छे’, एवी रुपाति थाय तो ते सांभलीने धर्मना जाण एवा मुनिए तेना प्रत्ये मत्सर धरखो ते योग्य नथी; निर्गुणीए गुणवंत उपर मत्सर धारण करवो ते व्यर्थज छे.

अई सुहिँओत्ति गुणसमुइओत्ति, जो नं सँहै जई पैसंसं ।

स्तो परिहाँइ परभवे, जहाँ महापीठपीठ रिसी ॥ ६८ ॥

अर्थ—“आ मुस्थित छे—चारित्रविषये सुदृढ छे, आ वैयावृत्यादि गुणोवडे समुदित छे-भेरेलो छे; एवी यतिनी प्रशंसाने जे सहन न करे ते पुरुष परभवे परिहीण थाय छे अर्थात् हीनभावने पामे छे—पुरुषवेद त्यजीने स्त्रीवेदने पामे छे; जेम महापीठ ने पीठ मुनि पाम्या तेम.” ६८. अहीं ब्राह्मीसुंदरीना जीव जे पूर्वे पीठ ने महापीठ नामना मुनि हता तेमुं दृष्टांत जाणवुं. २१.

पीठ अने महापीठ मुनिनी कथा।

महाविदेह क्षेत्रमां वज्रनाभ चक्री राज्य छोड़ी चारित्र ग्रहण करी चौदर्पूर्वधारी थया. तेना बीजा चार नाना भाइओ वाहु, सुवाहु, पीठ अने महापीठ पण दीक्षा लइ अग्यार अंगने धारण करनारा थया. तेमां वाहु मुनि पांचसे सायुने आहार लावीने आपता हता, सुवाहु मुनि तेटलाज सायुओनी वैयावच्च करता हता, अने पीठ महापीठ मुनि अध्ययन करता हता. एक दिवसे गुरुए वाहु अने सुवाहु मुनिनी प्रशंसा करी. ते सांभळीने पीठ अने महापीठने इर्ष्या उत्पन्न थइ. तेओ विचारवा लाग्या के—‘अहो! गुरुनुं अविवेकीपणुं तो जुओ! तेओ हजु राजस्वभाव तजता नथी. पोतानी वैयावच्च करनार अने अब पाणी लावी आपनासने वस्त्राणे छे. आपणे बंने—जणा दररोज अध्ययन ने तय करीए छीए, परंतु गुरु आपणी प्रशंसा करता नथी.’ ए प्रमाणे इर्ष्याथी चारित्र पाळता छेवटे पांचे सायुओ काळ करीने सर्वार्थसिद्धि विमानमां देवपणे उत्पन्न थया. त्यांथी च्यवी वज्रनाभनो जीव श्रीकृष्णभद्रेव थया, वाहु सुवाहुना जीवो कृष्णभद्रेवना पुत्र भरत अने वाहु-बलि थया अने पीठ महापीठना जीवो इर्ष्या करवावडे खीवेद वांधेल होवाथी कृष्णभद्रेवनी पुत्रीओ ब्राह्मी अने सुंदरी थया.

ए प्रमाणे जेअमे गुणप्रशंसामां इर्ष्या करे छे तेओ पीठ अने महापीठनी पेठे हीनपणाने पामे छे; तेटलामाटे विवेकीओए कादि पण गुणी प्रत्ये मत्सर धारण करवो नहि.

परपरिवायं गिएहै, अद्वमयैविरल्लणे संया रमैङ् ।

डईज्ञै यै परसिरीए, सकसाओ दुखिवओ निचंचं ॥ ६९ ॥

अर्थ—“जे पारका अपवादने ग्रहण करेले—बोलेले, आठ मदने विस्तारवामां सदा रमेछे—मदमां आसक्त रहेछे अने पारकी लक्ष्मी—शोभा देखीने दाङेछे—वलेछे एवो सकायी पुरुष निरंतर दुःखीओ जाणवो.”

विग्रहविवायरुद्दणो, कुलगणसंघेण वाहिस्कैयस्स ।

नंतिथ किँर देवलोए विँ, देवसंमिइसु अर्वगासो ॥ ७० ॥

अर्थ—“विग्रह ने विवादनी रुचिवाळा अने कुळ गण संघे वहार करेला एवाने देवलोकमां देवसभाने विषे पण अवकाश एटले प्रवेश प्राप्त थतो नथी.”^{७०}—अर्थात् युद्ध त्रवामां के मिथ्या विवाद करवामां तत्पर एवा अने कुळ ते नांगेदादि, गण ते कुळनो

गाथा ६९—अष्टमदविस्तारणे.

गाथा ७०—देवसभायी अवकाशः प्रवेशः

समुदाय अने संघ चतुर्विंश (साखु, साध्वी, आवक ने श्राविका) तेष्णे अयोग्य जाणीने जेने वहार कर्यो होय—कुळ, गण के संघथी दूर करेल होय तेने स्वर्गमां देवसभामां पण अवकाश मळतो नथी एटले ते किलिष जातिना नीच देवपणे उपजेछे. तेथी तेने देवसभामां वेसवानो हक मळतो नथी. ए किलिष देवो मनुष्यमां जेम ढेह गणाय छे तेम देवताओमां हलकी जातिना देव गणाय छे.

जइ ताँ जणसंववहाँर-वज्जिय मक्कज्ज मार्यइ अऱ्नो ।

जौं तं पुणो विकर्त्थइ, परस्सं वैसणेण सो दुःहिओ ॥ ७१ ॥

अर्थ—“जो प्रथम कोइ अन्य, जनव्यवहार—लोकाचारमां वर्जित—निषिद्ध एवं चौर्यादि अकार्यने—पापकर्मने आचरे छे अने जे पुरुष ते पापकर्मने (लोकसमक्ष) विस्तारे छे ते पारके दुःखे दुःखीओ थायछे अर्थात् वीजो माणस परनिंदा करवायी निर्धक पापनो भाजन थायछे.” ७१

सुहुङ्वि उज्जवैमाण, पञ्चेवं करिति॑ रित्यं समैर्ण ।

अङ्गथुइ परनिंदा, जिंभो वैथा कसाया र्य ॥ ७२ ॥

अर्थ—“तपसंयम क्रियाने विषे भले प्रकारे उच्चमवंत एवा साखुने पण १ आत्मस्तुति, २ परनिंदा, ३ जीहा, ४ उपस्थ इंद्रिय अने ५ कषाय ए पांच दोष, गुणथी रित्युण, रहित करेछे. अर्थात् तप संयम क्रियावान् होय छतां पण जो आ पांच दोषमांथी कोइ दोष होय तो ते मुनि गुणरहित थइ जाय छे.” ७२

आत्मस्तुति ते पोतानी प्रशंसा स्वमुखे करवी, परनिंदा ते पारका अपवाद बोलवा, जीहा शब्दे रसेंद्रियतुं परवशपणुं, उपस्थ शब्दे पुरुषचिन्ह या स्त्रीचिन्ह तेना विषवर्तु अभिलाषीपणुं अने कषाय ते क्रोधादि चार—आ पांच प्रकारना दोषथी गुणरहित थवाय छे.

परपरिवायमईओ, दूसैइ वयैणेहिं जैहिं जेहिं३ पैरं ।

७३ ते॒ ते॒ पावैइ दौसे, परपरिवैइ॑ इअ॑ अपिच्छो॑ ॥ ७३ ॥

अर्थ—“पारका अपवाद बोलवामां निषुण बुद्धिवालो पुरुष जे जे वचनोए करी

गाथा ७१—कतिथइ.

गाथा ७२—सुहुङ्वि उज्जमाण. करिति. अङ्गथुइ. जिंभो—था जिहा उमस्था:

गाथा ७३—परपरिवायमइय. अपिच्छो—अपेदयो,

परने दोषवंत करेछे ते ते दोषने पोते पामे छे. ए हेतु माटे परपरिवादी पुस्त्र अमेश्य—
अदर्शनीय—न जोवा लायक छे, अर्थात् परनिदाकारक पुरुषनुं मुख पण जोवा
लायक नथी.” ७३

थेछा छिद्धपेही, अवन्नवाई सयमई चबला ।

वंका कोहण्सीला, सीसा उव्वेअँगा युरुणो ॥ ७४ ॥

अर्थ—“स्तव्य ते अनन्त्र—अभिमानी, छिद्रान्वेषी ते अवर्णवादि, स्वयंमति ते स्वेच्छा-
चारी, चपल स्वभावी, वक्र अने क्रोधस्वभावी—एवा शिष्यो गुरुने उद्गेगना करावनारा
होय छे.” ७४

जस्से गुरुमि नै भैती, नै यै बहुमाणो नै गर्जरवै नै भैयं ।

नैवि लज्जा नैवि नै हो, गुरुकुलवासेण किं तस्स ॥ ७५ ॥

अर्थ—“जे शिष्यने गुरुने विषे भक्ति न होय, बहुमान न होय, गुरुनुं गौरव न
होय, गुरुनो भय न होय, गुरुनी लज्जा न होय अने गुरु उपर स्नेह पण न होय तेवा
शिष्यने गुरुकुलवासे करीने शुं ? अर्थात् तेवा दुर्विनीत शिष्यने गुरु सर्वीषे वसवाथी काँइ
पण फळ नथी.” ७५

भक्ति एटले विनय—गुरुने आवता देरीने उभा यवुं, आसन आपर्व विगरे अने
बहुमान ते अभ्यंतर भक्ति समजदी.

रुसइ चोइजंतो, वहइ हियएँ अणुसयं भैणिओ ।

नर्य काहिं करणिजे, गुरुस्स आलो नै सो सीसो ॥ ७६ ॥

अर्थ—“जे शिष्य गुरुए प्रेरणा कर्यो सतो रोप करे छे अने वोलाव्यो सतो अनुश-
य एटले क्रोधने हृदयमां धारण करे छे तथा कोइ पण कार्यमां काम आवतो नथी. तेवो
शिष्य ते गुरुने आलरूप छे, शिष्य नथी.” ७६ शिक्षाने ग्रहण करे ते शिष्य कहेवाय
जेनामां शिक्षाग्रहणनो अभाव छे ते शिष्य कहेवायज नहि.

उव्विलुण सूअर्ण परिभवेहि, अइ भैणिय दुठ भैणिएहि ।

सत्ताँहिया सुविहियाँ, नचेवै भिंदंति मुहर्गम ॥ ७७ ॥

अर्थ—“उद्गेग पमाडवाथी, मृचना करवायी एटले बचनवटे दोष प्रगट करवायी अने परिभव के० तर्जन करवायी तेमज अति शिक्षावन्नन कहेवायी के कर्कश बचन कहेवायी सत्वाधिक एटले क्रोधादिनो जय करवामां समर्थ एवा मुविहितो—मुशिलो मोदानो रंग पण भेद पमाडता नथी अर्थात् तेमना मोदानो रंग पण बदलतो नथी.” ७७

माणसिणो वि॒ अर्वमाणं, वंच॑णा ते॒ परस्स ते॒ नै॑ कैरंति ।

सुहदुँखुगिरणत्यं, साहूँ उअहिव्वं गंभीरा ॥ ७८ ॥

अर्थ—“इन्द्रादिके मानेला छतां पण समुद्रनी जेवा गंभीर साखुओ (परथी) अपमान थये सते सुखदुःखनो उच्छेद करवाने माटे परनी वंचना करता नथी. अर्थात् तेवा मुनिओ शुभाशुभ कर्मोनो छेद करवानाज अर्थी होवायी अपराधी एवाने पण पीडा उपजावता नथी.” ७८

मउआ निहुअैसहावा, हासदवैविवज्जिया विगहैमुका ।

असमंज्जस मझैहुअं, न भैण्ठि अर्पुच्छिया साहौ ॥ ७९ ॥

अर्थ—“मुदुका—मुकुमाळ—अहंकाररहित, निनृत स्वभाववाला एटले शांत स्वभाववाला, हास्य अने दब जे इर्या तेथी वर्जित, विकथासुक्त एटले देशकथा, राजकथा, भक्तकथा, स्त्रीकथादि विकथा नहि करनारा एवा साखु वगर पुछ्या सता असंवद एवं अति प्रचुर वोलता नथी.” ७९ पुछ्या सता पण तेओ केवुं वोले छे ते कहे छे—

महुरं निउं थोवं, कज्जैवडिअं अगैविय मर्तुच्छं ।

पुव्वैमझंसंकलियं, भैण्ठि जं धर्मसंजुतं ॥ ८० ॥

अर्थ—“मधुर, निपुणता—चतुराइवाङ्मुं, थोडुं, कार्य पूर्तुं, गर्वरहित, अतुच्छ—तुंकारादि रहित, प्रथम बुद्धिपूर्वक विचारेलुं अने ते पण जे धर्म संयुक्त होय ते कहे छे. अर्थात् तेबुं वोले छे.” ८०

सङ्खिवासैसहस्रा, तिसत्तुखुत्तोदयेण धोएण ।

अणुचिन्तं तामेलिणा, अज्ञाणंतवुत्ति अप्फळो ॥ ८१ ॥

अर्थ—“तामालि तापसे साठ हजार वर्ष पर्यंत (छठ छठने पारणे) त्रिसप्तवारकवीश वार उदकवडे धोयेला अनवडे (पारणुं करीने) तप आचयो, परंतु ते अज्ञान तप

गाथा ७८—करिति. ‘ते’ नथी. सुहदुँखुगिरणत्यं, सुहदुःखोच्छेदनाथ. साहू.

गाथा ७९—हासदव्व. दवः पेरपामिर्यादिकारण. अतिवहुलं—अतिप्रचुरं.

गाथा ८०—कार्येआपतितं—कार्ये सति जल्पति. पुब्बं.

गाथा ८१—सङ्खि. तवाति.

होवाथी अल्प फलवालो थयो” ८१. एटलो तप जो दयायुक्त कथों होत तो तेनुं मुक्ति उप फल प्राप्त थात. तेथी जिनाज्ञायुक्त तपज प्रमाण छे.

अहं आदला वया तपथी मात्र जेने इशानइंद्रपणानी प्राप्ति थइ एवा तामलि तापसनुं दृष्टं जाणवुं. २२.

तामलि तापसनी कथा,

तामलिसी नगरीमां तामलि नामे शेष वसतो हतो. एक दिवस तेणे पोताना उप्रने गृहभार सोरीने वैराग्यपरायण थइ तापसी दीक्षा लीधी. अने नदीना कांडा उपर रहेवा लाग्यो. तेमज कायम छठ करीने पारणुं करवा लाग्यो. पारणाना दिवसे पण जे आहार लावतो तेने नदीना जळथी एकवीश वार धोइ निरस करीने खातो हतो अने उपर पांछो छठ करतो हतो. ए प्रमाणे साठ हजार वर्ष सुधी तेणे दुष्कर अज्ञानतप कर्युं. छेवट अनशन अंगीकार कर्युं. ते अवसरे वर्लींद्र च्यवी गयेल होवाथी वलिचंचा राजधानीना रेहनारा असुरोए आवी, अनेक प्रकारनां नाट्य अने समृद्धि बतावी तामलि तापसने विज्ञासि करी के—‘हे स्वामिन! तमे नियाणुं करी अमारा स्वामी थाओ. अमे स्वामी राहित छीए.’ ए प्रमाणे ब्रणवार कहा छतां पण तेणे तेमनुं वचन अंगीकृत कर्युं नहि. पछी आयु पूर्ण धये कषाय अल्प होवाथी तेमज अस्येत कष्ट करेलुं होवाथी तेना प्रभाववडे ते काळ करीने इशान देवलोकपां इंद्रपणे उत्पन्न थया, अने तरतज समकित प्राप्त कर्युं. माटे ज्ञानपूर्वक तप करवुं एज पोक्ष आपनारुं छे. तेथी थोडुं पण तप दया अने ज्ञानयुक्त करवुं; पण तामलि तापसनी पेठे अज्ञान ने हिंसायुक्त करवुं नहि.

छज्जीवकायवहगा, हिंसकसत्थाइ उबइसंति पुणो।

सुर्वहुंपि तवकिलेसौ, वालतवैस्सीण अर्पणफलो ॥ ८२ ॥

अर्थ—“छ जीवकायना वंध करवावाळा अने वळी हिंसक जात्वोनो उपदेश करें छे एवा वाळ तपस्वीओनो अति प्रचुर एवो तपक्षेश पण अल्प फलवालो थाय छे. तेथी हिंसना त्यागवडेज तप महाफलने आपे छे एम समजवुं.” ८२

अहं छ जीवकाय ते पृथ्वी, पाणी, आग्नि, वायु, वनस्पति अने वैदिक्यादि त्रस जीवो समजवा. वाळतपस्वी ते अज्ञान कष्ट करनारा तापसादि जाणवा.

परियेच्छंति सञ्चं, जहंडियं अवितहं असंदिद्धं ।

तो जिणवयणीविहन्नू, सहंति॑ वहुर्भस्स वहुआइ ॥ ८३ ॥

अर्थ—“(जे साहु दोय छे ते) यथास्थित, सत्य अने संदेह विनाटुं जीवार्जवाई सर्व पदार्थोंनुं स्वस्त्रप जाणे छे तेथी तेवा जिनवचननी विधिना जाणवावाळा साहुओ घणा जनोनां घणां दुर्वचनादि सहन करे छे.” ८३ तेथी तेमनुं तप मोदा फलने अर्थ थाय छे.

जो जससं वट्टृए हिँयए, सौ तं यावेई सुंदरसंहावं !

वर्णधी छौवं जर्णणी, भैङ्गं सौमं चै मंशेइ ॥ ८४ ॥

अर्थ—“जे जेना हृदयमां वर्त्तनुं दोय छे ते तेने गुंद्र स्वभाववाढुं स्थापे छे—माने छे, अहीं दृष्टांत कहे छे के वावण माता पोताना बालकने भद्र अने साम्य माने छे.” ८४

जेम वावण अज्ञानपणाथी अभद्र अने अशांत-सर्व-जीवनुं भक्षण करी जनार एवा पोताना बालकने पण भद्र अने शांत माने छे तेम अज्ञानीयो पोताना चित्तमां गर्मी गयेला पोताना अज्ञान तपने पण सम्यग तप जाणे छे—माने छे; परंतु ते मानवृं मिथ्या छे,

मणिकणगरयणैधणपूरियांमि, भवैर्णमि सालिभद्रोवि ।

अर्ण्वीवि किंर मझ्ञाँवि, सामिँओत्ति जार्ओ विगर्यक्षमो ॥८५॥

अर्थ—“माणि, कंचन, रत्न अने धनबडे पूरित-भरेला एवा भुवनमां रहेतां छतां पण शाळिभद्र नामे थेष्ठी निश्चये ‘मारो पण वीजो स्वामी छे’ एम विचारतो सतो विषयाभि लापरहित थइ गयो.” ८५ अर्थात् ‘हजु मारे माये पण वीजो स्वामी छे’ एम लक्षमां आवतां, जो एम छे तो तो आ मारा वैभवने विकार छे’ एम चित्तवी शाळिभद्रे विषय भोग तजी चारित्र अंगीकार कर्युं.

अहीं शाळिभद्रनो संवंध प्रसिद्ध होवायी संक्षेपे कहे छे. २३

श्री शालिभद्रनुं दृष्टांत.

परणे कोइ साधु त्यां वहोरवा माटे पधार्या. तेमने जोइ संगमने अति हर्ष थवाथी तेणे वहु भावपूर्वक वधी क्षीर ते सुनिने वहोरावी दीधी. पछी ते विचार करवा लाग्यो के—‘आजे साधु रूपी सत्पात्र मने प्राप्तथवाथी हुं अति धन्य छुं !’ ए प्रमाणे पोताना कार्यनी प्रशंसा करवा लाग्यो. आ प्रमाणे अनुमोदना सहित दान घणुं फल आपनारु थायछे. कहुं छे के—

आनंदाश्रूणि रोमांचो, बहुमानं प्रियंवचः ।

किंचानुमोदना पात्र—दानभूषणपंचकम् ॥

“आनंदथी नेत्रमां आंसु आववां, रोमराय विकस्वर थवा, बहुमान सहित वहोरावबुं, प्रिय वचन बोलतां आपबुं अने तेनी अनुमोदना करवी; ए पांच सुपात्र दासनां भूषण छे.”

अहीं संगमे साधुने दान आपवाथी घणुं पुण्य उपार्जन कर्यु. कहुं छे के—

व्याजेस्याद्विगुणं वित्तं, व्यवसाये चतुर्गुणम् ।

क्षेत्रे शतगुणं प्रोक्तं, पात्रेऽनंतगुणं भवेत् ॥

“व्याजनी अंदर धन बमणुं थाय छे, व्यवसाय (व्यापारादि)थी चारणुं थायछे, क्षेत्रमां सोगणुं थायछे, अने पात्रमां आपवाथी तो अनंतगुणुं थायछे.” वली संगमे जे दान आणुं ते अति दुष्कर छे. कारणके—

दाणं दरिहस्स पहुस्स खंती, इच्छानिरोहोय सुहोइयस्स ।

तारुण्णए इंदियनिग्गहोय, चत्तारि एयाइं सुदुकराइं ॥

“दरिद्री छतां दान आपबुं, सामर्थ्य छतां क्षमा राखवी, सुखनो उदय छतां इच्छानो रोध करवो अने तरुणावस्थामा इंद्रियोनो निग्रह करवो—आ चार वानां अति दुष्कर छे.”

पिताए तेनुं शालिभुमार नाम पाठयुं, युवावस्था प्राप्त थनां तेने वर्तीय क-
न्याओ एक ल्ये परणावी. त्यारपद्मि गोभद्र शेठ चारित्र ग्रहण करी प्राप्त अनश्वन
आदरी सौर्यम् देवलोकमां देवता थया. पद्मि अवधिज्ञानपूर्णी पोताना पुत्रेन जाइन अनि
स्वेहातुर वनी त्यां आवी तेने दर्शन दर्युं अने भट्टाने कयुं के—‘शालिभद्रने सर्व प्रका-
रनी भोगसामयी हुं पूरी पाढीया.’ पट्टयुं कहीने ते गयो. पद्मि गोभद्रनो जीव देवता
तेपने मनवांचित पूर्वा लाग्यो. दररोज ३२ स्त्रीओ अने शालिभद्रने पाठे ३३ पंडी
वस्त्रोनी, ३३ पंडी आभूषणोनी अने ३३ पंडी भोजनादि पदायांनी कुळ ०९ पंडी
मोकलवा लाग्यो.

यद्गोभद्रः सुरपरिहृष्टो भूपणाद्यं ददो य-
ज्जातं जायापदपरिचितं कंवलिरत्नजातम् ।
पण्यं यच्चाजानि नरपतिर्यच्च सर्वार्थसिद्धि-
स्तद्वानस्याद्भुतफलमिदं शालिभद्रस्य सर्वम् ॥

“देवताओमां श्रेष्ठ एवा गोभद्रे जेने भूपणादि आप्यां, रत्नकंवल जेनी स्त्री-
ओना पगनी साये परिचयवालां थयां, पट्टले जेनी स्त्रीओए रत्नकंवल तो पग छुछवामां
वापर्या, जेने राजा (श्रेणिक) करियाणा रूप वन्यो अने जेणे प्राप्ते सर्वार्थसिद्धि-
विमान प्राप्त कर्युं-आ प्रमाणे शालिभद्रने दाननुं सर्व प्रकारनुं अद्भुत फळ प्राप्त थयुं.”

पादांभोजरजः प्रमार्जनमपि क्षमापाललीलावती-
दुःप्रापाद्वुतरत्नकंवलदलैर्यद्वलभानामभूत ।
निर्माल्यं नवहेममंडनमपि क्षेशाय यस्यावनी-
पालालिंगनमप्यसौ विजयते दानात्सुभद्रांगजः ॥

“जेनी स्त्रीओना चरणकमल उपर लागेली रजनुं प्रमार्जन राजानी राणी लीला-
वतीने पण दुष्प्राप्य एवा रत्नकंवलना ककडावडे थयुं, जेने नवीन सुवर्णनां
घरेणांओ पण दरेक दिवसे निर्माल्य रूप थयां, अने जेने भूपतितुं आलिंगन पण क्ले-
शनेपाटे थयुं एवो सुभद्रानो पुत्र शालिभद्र पूर्वे करेला दानथी विजय पामेछे.”

आवी शालिभद्रनी समृद्धि जोइने श्रेणिक राजाए पण आ प्रमाणे विचार
कर्यो हतो के-

स्तुही महातसर्वहिर्वृहदभानुर्यथोच्यते ।
सारतेजोवियोगेऽपि नरदेवास्तथा वयम् ॥

“जेम स्तुही नामनुं ज्ञाड वहु नानुं होयछे छतां महातरु कहेवायछे, अने अग्नि जरा जेटलो होय छतां पण ते वृहद् भानु (मोटामां मोटो सूर्य) कहेवाय छे, तेवीज रीते अमे सारभूत तेज वागरना छतां पण नरदेव कहेवाइए छीएः”

शालिभद्रे पण पोताने घेर आवेला श्रेणिक राजाने पोताना स्वामी जाणीने विचार्यु के—‘आ मारी परावीन लक्ष्मीने यिकार छे!’ ए प्रमाणे वैराग्यपरायण वनी दररोज एकेक स्थीने तजवा लाग्यो. ते हकीकत सांभलीने धन्य नामना तेना वनेवीए आवीने एक सांधे सर्व स्थीओनो त्याग करी दीक्षा लेवानी तेने प्रेरणा करी. आ प्रमाणेनी प्रेरणाथी उत्साहित वनी श्री महावीर स्वामीनी पासे जइ चारित्र ग्रहण करी दुष्क्र तप तपी धार वर्ष पर्यंत दीक्षापर्याय पाली प्राप्ते एक मासनी संलेखना करी सर्वार्थसिद्धि विमानमां तेवीश सागरोपम आयुष्यवाक्य अहमिन्द्र देवपणे उत्पन्न थया.

आ मुनिने धन्य छे के जेमणे सर्वकुं अनुत्तर (सर्वथी उत्तम) प्राप्त कर्युं.

अनुत्तरं दानमनुत्तरं तपो, ह्यनुत्तरं मानमनुत्तरं यशः ।

श्रीशालिभद्रस्य गुणा अनुत्तरा, अनुत्तरं धैर्यमनुत्तरं पदम् ॥

“तेनां (शालिभद्रनां) दान, तप, मान, यश, गुणो, धैर्य अने पदै-ए सर्व अनुत्तर (जेनाथी अन्य श्रेष्ठ नथी एवां) छे.”

आ प्रमाणे ज्ञान सहित तप करवामां आवे तो मोडुं फल प्राप्त थायछे.

नै कर्त्तव्यं जेँ तैव संज्ञमं चै तेँ तुल्पाणिपायाणं ।

पुरिसा सम पुरिसाणं, अवस्त्वं पेसंत्तणं मुविंति ॥ ८६ ॥

अर्थ—“जे प्राणी तप (धार प्रकारे) अने संयम (सत्तर प्रकारे) करता—आदरता नथी ते पुरुषो समान हाथपगवाला अने सद्वा पुरुषाकार धारण करनारनुं सेवकपणं अवद्य प्राप्त करे छे.” ८६

शालिभद्रे एज विचार कर्यो इतो के—“श्रेणिकमां ने मारामां कांइ पण हाथपगनुं विशेषपणुं नथी ते छतां ते स्वामी ने हुं सेवक, तेनुं कारण मात्र में पूर्वजन्ममां मुकुत कर्युं नथी ते ज छे.” आप विचारीने तेणे चारित्र ग्रहण कर्युं.

सुंदर सुकुमाल सुहोइएण, विविहेहिं तवविसेसेहिं ।

तहं सोर्सविओ अप्पां, जैह नौवि नौंओ सभर्वणेपि ॥ ८७ ॥

१ जेने स्वामी तरांके इन्द्र होता नपी तेओ पोतेज पोताना विमानना स्वामी होतामा अहमिन्द्र विद्यय छे. २ पद से स्थान—अनुसरप्रयात्मा.

अर्थ—“सुंदर (स्वपनान), सुकुमाळ (मृदु परीस्वाला) अने सुखोनित अर्थात् सुखना अभ्यासी एवा शालिभद्र विविध प्रकारनां तप विशेषवडे करने पोताना आत्माने(देहने) एवो शोपव्यो-दुर्बल कर्यों के जेथी पोताने घर पण ते ओळखी शकाया नहि.” ८७
शालिभद्र मुनि थया पछी पाञ्चां राजगृहीण आव्या त्यां पोतानी माताने घर गोचरीनिमित्ते जतां तेना सेवकपुरुषोण पण तेपने ओळख्या नहि एवो तेपने तपस्यावडे देह सुकवी नाख्यो हतो.

दुक्कर सुखोसिकरं, अवंतिसुकुमालं मंहरिसीचरियं ।

अप्पांवि नामं तहै तज्जै—इति अच्छेरेयं र्ग्यं ॥ ८८ ॥

अर्थ—“दुक्कर अने सांभळतां पण रोमोत्कंप के—रुचादां उभां थाय एवुं अवंति सुकुमाळ महर्षिनुं चरित्र छे; जे महात्माण पोताना आत्माने पण एवा प्रकारे तर्जित कर्यों के जेमनुं चरित्र संपूर्ण आर्थर्यकारक थयुं.” ८८

अहां अवंतिसुकुमाळनो संबंध जाणवो. २४

अवंतिसुकुमाल कथा.

अवंती देशमां उज्जयिनी नगरीमां भद्रा नामनी एक शेटनी त्वी हती. तेने नलिनी-गुल्म विमानथी च्यवीने आवेलो अवंतिसुकुमाल नामं पुत्र थयो. ते वत्रीश त्वीओनी साथे विषयसुखनो अनुभव करतो हतो. एक दिवस पोताना घरनी नजीक रहेला सुस्थित आचार्यना मुखधी रात्रिनी पहेली पोरपीमां नलिनीगुल्म विमान अध्ययन सांभळी जाति-स्मरणज्ञान धवाधी पूर्वभवनुं स्वरूप जाणी, त्यां (नलिनीगुल्म विमानमां) जवाने उत्सुक थयेलो अवंतिसुकुमाल गुरु पासे जह विनयपूर्वक पृछवा लाग्यो के—‘आपे नलिनीगुल्म विमाननुं स्वरूप केवी रीते जोयुं ?’ गुरुए कणुं के ‘सिद्धांत स्पृष्टी नेत्रधी जोयुं छे.’ पछी अवंतिसुकुमाले पृछयुं के ‘ते केवी रीते प्राप्त थाय ?’ त्यारे गुरुए कणुं के ‘चारित्र पालवाधी. कारणके चारित्र आलोक अने परलोकमां अनेक प्रकारतुं सुख आपे छे.’ कणुं छे के—

नो दुष्कर्मप्रयासो न कुयुवतिसुतस्वामिदुर्वाक्यदुःखम् ।

राजादौ न प्रणामोऽशनवसनधनस्थानचिता न चैव ॥

ज्ञानासिलोंकपूजा प्रशमपरिणतिः प्रेत्यनाकाद्यवाप्ति ।

चारित्रे शीवदायके सुमतयस्तत्र यत्नं कुरुध्वम् ॥

“ जेनी अंदर दुष्कर्म संवंधी प्रयास नथी, जेनी अंदर खराव स्त्री, पुत्र के स्वामीनां दुर्वाक्षयश्रवणतुं दुःख नथी, जेनी अंदर राजा आदिने प्रणाम करवो पडतो नथी, जेनी अंदर भोजन, वस्त्र धन के स्थान माटे चिंता करवी पडती नथी, जेनी अंदर ज्ञाननीं प्राप्ति थाय छे, लोको पूजा करे छे, शांतभाव परिणमे छे, अने परभवे स्वर्गादिनीं प्राप्ति थाय छे एवा मोक्षदायक चारित्रमां हे विद्वान् पुरुषो ! तमे प्रयत्न करो.”

‘ माटे चारित्र ग्रहण करी, अनशन करवा वडे नलिनीगुल्म विमान मेलवी शकाय छे. ’ ए प्रमाणे गुरुमुखथीं सांभवीने अवंतिसुकुमाले कहुं के ‘ मैं चारित्र अने अनशन भावथी अंगीकार कर्युं छे. ’ गुरुए ज्ञानथीं जाण्युं के ‘ आतुं कार्य आ प्रमाणेज सिद्ध थवानुं छे तेथी तेने रात्रिएज साधुवेष आप्यो. ते वेष धारण करीने ते शहदरथी बहार स्मशानभूमिए जइ कंथेर (थोर) ना वनमां कायोत्सर्ग मुद्राथी रहा. त्यां जतां मार्गमां कांटा, कांकरा आदिना प्रहारथी अतिकोमळ एवा तेना चरणना तळीयामांथी रुधिर स्ववा लाग्युं. तेना गंधथीं पूर्व भवमां अपमानित करेली खीनो जीव शियाळणी धणां वज्ञाओथीं परिवृत्त थइ त्यां आवीं अने तेनुं शरीर खावा लागी. परंतु ते मुनि जरा पण क्षुभित थया नहि. तेमनुं चित्त स्थिर होवाथी अति वेदना सहन करता सत्ता काळ करीने ते नलिनीगुल्म विमानमां देवपणे उत्पन्न थया. प्रातःकाळमां ते सघळुं तेनी माता भद्राए जाण्युं. एटले एक गर्भवंती वहुने घरमां राखीने वाकीनी तमाम वहुओ साथे भद्राए चारित्र ग्रहण कर्यु. घर आगळ रहेली वहुने एक पुत्र थयो. ते पुत्रे स्मशानभूमिमां एक जिनप्रासाद चणाव्यो अने तेमां जिनप्रतिमा स्थापी. स्मशानतुं नाम महाकाल पडयुं.

जे प्रमाणे अवंतिसुकुमाले धर्मने अर्थे पोताना शरीरनो त्याग कर्यो परंतु ग्रहण करेला व्रतनो भंग कर्यो नहि, तेवीं रीते अन्य जनोए पण धर्मविषयमां यत्न करवो, एवो आ कथानो उपदेश छे.

अच्छूढ सरीरघरा, ऊन्हो जीवो संरीर मर्वाति ॥

धर्मस्सै कारणे सुविहिया, संरीरंपि छँडुंति ॥ ८९ ॥

अर्थ—“ तजी दीधो छे शरीर रूपी घरनो मोह जेणे एवा सुविहितो—उत्तम पुरुषो धर्मने कारणे ‘ आ जीव अन्य छे अने शरीर अन्य छे ’ एवी बळिवडे करीने शरीरने । तजी दे छे. ” ८९.

जा देहनो संवेध एक भवनोज हे अने ते शरीर जन्मे जन्मपां नवृं नवृं मञ्चारुं
हे, पण धर्म जो तजी दीधो तो ते फर्मने प्राप्त थवो दुर्क्षभ हे, तेवी उत्तम पुरुषो
धर्मने कारणे शरीरने तजे हे पण शरीरने कारणे धर्मने तजता नधी, माटे प्राणाते पण
धर्मने न तजवो.

एक दिवसांपि जीवो, पवज्जंसुवागओ अनन्नमणो ।

जइंवि नैं पावड मुखखं, अवस्सं वेमाणिओ होइं ॥ ९० ॥

अर्थ—“चारित्र धर्मसुं फल कहेहे—अनन्य मनवालो जीव एक दिवस पण प्रब्रह्मा
(दीक्षा) प्रतिपत्त करे अर्थात् भवप्राप्ते एक दिवस पण शुद्ध दीक्षा पाले तो ते यथापि
संहनन कालादिना अभावयी—मोक्ष न पामे, परंतु अवश्य वैष्णानिक देव तो थाय.” १०

एक दिवसना विशुद्ध मनयुक्त चारित्रनुं फल आ काळमां पण वैष्णानिक देव-
पणानी प्राप्ति थवा स्वप्न हे.

सीसंवेदेण सिरिंमि—वेदिं निग्गर्याणि अच्छीणि ।

मेयङ्गजस्स भग्वओ, नैय सौ मणसावि परिकुंविओ ॥९१॥

अर्थ—“लीली चामडानी वाघरवडे मस्तकने वेष्टित कर्ये सते (ते मुकाइने खेचावायी
आखो नीकळी पडी, परंतु ते मेतार्य भगवंत मनधी (लेश मात्र) पण (सोनी उपर)
कोपायमान थया नहि.” ११

मेतार्य मुनिना मस्तके सोनीए लीली वाघर वांटी ते मुकावायी नसोनुं खेचाण
थवाने लीधे वने नेत्र नीकळी पडगां, परंतु मेतार्य मुनि किंचित् मात्र पण ते सोनी
उपर कोपायमान थया नहि. एवी रीते वीजा मुनिराजोए पण क्षमा करवी.

अहीं मेतार्य मुनिनुं दृष्टांत जाणवू. २५

मेतार्यमुनिनी कथा.

साकेतनपुरमां चंद्रावतंसक नामे अत्यंत धार्मिक राजा हतो. तेने सुदर्शना
नामनी स्त्री हती. ते स्त्रीनी कुक्षियी सागरचंद्र ने मुनिचंद्र नामे वे पुत्र उत्पन्न थया
हता. ते वेमां मोटाने युवराजपद आप्युं अने नानाने उज्जयिनी राज्य आप्युं हतुं.
वीजी प्रियदर्शना नामे राणीयी गुणचंद्र अने बालचंद्र नामे वे पुत्र थया हता. ए
रमाणे चार पुत्र विग्रेथी परिवृत्त थइ ते राजा राज्य करतो हतो.

गाथा ९०—जइ नवि. अवस्स.

गाथा ९१—सिरिंमि. आर्द्धचर्मवभ्राविष्टेन.

एक दिवस चंद्रावतंसक राजाए पौष्ठ कर्ये हतो. ते रात्रिए एकांतवासमां रहा सता तेण एवो अभिग्रह कर्यो के 'ज्यांसुधी आ दीवो बले त्यांसुधी मारे कायो-त्सर्गमां स्थित रहेवुं?' ते अभिग्रहने नहि जाणनारी कोइ दासीए ते दीवामां तेळ पूर्या कर्यु. घणो वस्त कायोत्सर्गमां स्थित रहेवार्थी राजाने शिरोवेदना थइ, तेथी ते मृत्यु पास्यो अने देवलोकमां गयो. ते जोइ सागरचंद्रे विचार्यु के-'आ देहनो संबंध कृत्रिम छे, जे प्रातःकालमां जोवामां आवेछे ते मध्यान्हे जोवामां आवतुं नथी अने जे मध्यान्हे जोवामां आवेछे ते रात्रिए नाश पामेछे. वायुए कम्पावेला पत्र जेवुं आ आयुष्य क्षणे क्षणे क्षीण थतुं जाय छे. कहुं छे के-

आदित्यस्य गतागतेरहरहः संक्षीयते जीवितम्
व्यापौर्बहुकार्यभारगुरुभिः कालो न विज्ञायते ।
दृष्टा जन्मजराविपत्तिमरणं त्रासश्च नोत्पद्यते
पीत्वा मोहमर्यां प्रमादमदिरामुन्मत्तभूतं जगत् ॥

"सूर्यना गमन ने आगमनथी आयुष्य दररोज क्षय पामेछे, वहु प्रकारना कार्य-वाला मोटा मोटा व्यवसायोर्थी काळ केटलो गयो ते जणातुं नथी, अने जन्म, वृद्धावस्था, विपत्ति ने मरण जोइने माणसोने त्रास उत्पन्न थतो नथी; तेथी (जणायचे के) मोहमर्यी प्रमाद रूपी मदिरातुं पान करीने आ जगत उन्मत्त थयेलुं छे."

त्यादि कारणथी जेनुं चित्त वैराग्यवान थयेलुं छे एवो सागरचंद्र राज्यथी प्रराङ्मुख हतो छतां पण तेनी ओरमान माताए कहुं के 'मारा वने पुत्रो हाल राज्यभार वहन करवाने अशक्त छे, तेथी तुं आ राज्यबुराने ग्रहण कर.' ए प्रमाणे बलात्कारथी सागरचंद्रने राज्य उपर स्थापित कर्यो, परंतु ते विरक्त मनथी राज्यतुं पालन करेछे. अनुक्रमे तेने समृद्धि ने कीर्तिथी वधी गयेलो जोइने तेनी ओरमान माता दुभाणी, तेथी ते दररोज तेनी इर्प्पा करेछे अने छिड खोलेछे. एक दिवस क्रीडाने वास्ते वनमां गयेला सागरचंद्रने माटे तेनी माताए दासी मारफत एक लाडु मोकल्यो. ते दासी लाडु आपवा जती हती ते वस्ते तेने बोलावीने ओरमान माताए पूछ्यु के-'आ शुं छे?' तेणे कहुं के-'हुं राजाने माटे लाडु लइ जाउंद्युं.' तेणे कहुं के-'जोउं, ते केवो छे?' दासीए तेने आप्यो, एटले ते ओरमान माताए विषथी खरडायेला हाथबडे ते लाडुने री रीते स्पर्श करी विषमिश्रित करीने दासीने पाढो आप्यो. दासीए ते लाडु लइ इने राजा पासे मूक्यो. राजाए ते मनोरंजक लाडु ग्रहण कर्यो. परंतु ते अवसर

पोतानी आगल हाथ जोड़ने उभेला पोताना वे सावका भाइने जोइने स्नेहवय थइ तेणे विचार कर्यों के 'मारा लघु वंधुओने छोटी मारे लाडु सावो ते उचित नथी.' ए विचारी तेणे लाडुना वे भाग करी वंनेने वहेंची दीधो. पोते साथो नहि. थोडा वक्त तमां पेला वंनेने विष चढवायी भूमि उपर पडेला जोइने राजा वणो खिल थयो, अं मणि मंत्र आदि प्रयोगोवडे तेमनुं झेर उतार्यु. पछी (तेनुं कारण शोधतां) दासीना मुख्य ओरमान माताना हस्तस्पर्शयी थयेल विषप्रयोग जाणीने तेनी पासे जड़ सागरचंद्र उपालंभ आपवा लाग्यो के—'तने धिकार छे ! पहेलां मारा आपतां छतां पण तें राज अंगीकार कर्यु नहि, अने सांप्रत समये आवुं अकार्य कर्यु ! स्त्रीओना चारित्रने विज्ञा छे !' कहुं छे के-

नितंविन्यः पतिं पुत्रं, पितरं भ्रातरं क्षणम् ।

आरोपयंत्यकार्येऽपि, दुर्वृत्ताः प्राणसंशये ॥

"दुराचरणी स्त्रीओ पोताना पतिने, पुत्रने, पिताने अने भाइने क्षणवारम प्राणनो संशय थाय तेना अकार्यमां पण जोडी दे छे." 'हवे दुर्गतिना कारणभूत आ राज्यधी मारे सर्यु.' ए प्रमाणे विचार करी ते ओरमान माताना पुत्र गुणचंद्रने राज्य आपी पते दीक्षा लइ चाली नीकल्या.

अनुक्रमे उग्र विद्वान् करतां करतां शात्र्वना पारगामी थया. एकदा उज्जयिनीयी आवेला एक साधुए सागरचंद्र मुनिने कहुं के 'हे स्वामिन् ! उज्जयिनीमां तमारो भ्रातृपुत्र (भ्रीजो) अने पुरोहितपुत्र वंने मल्ली साधुओनी मोटी हीलना करे छे.. विशेष कहेवायी शुं !' ते सांभली गुरुनी आज्ञा लइने तेमने प्रतिवोध करवाने माटे सागरचंद्र मुनि उज्जयिनी आव्या अने ज्यां राजपुत्र अने पुरोहितपुत्र हता त्यां जइ उच्च स्वरे धर्मलाभ आप्यो. ते सांभली पेला वंने जणा खुशी थतां थतां तेनी पासे आव्या, अने 'चालो आजे धर्मलाभ आव्योछे तेने आपणे नचावीए.' एट्लुं कही ते मुनिने हाथधी पकडीने महेल उपर लइ गया. पछी वारणुं वंध करीने तेओ साधुने कहेवा लाग्या के—'तुं नाच, नहितो अमे तने मारशुं.' त्यारे सागरचंद्रे कहुं के—'तमे वाजित्र वगाडो एट्ले ते प्रमाणे हुं नृत्य कर्स.' तेओए कहुं के 'अमने वाजित्र वगाडतां आवडतुं नथी.' त्यारे साधुए कहुं के—'मने नृत्य करतां पण आव-डतुं नथी.' त्यारे तेओए कहुं के—'तो अमारी साथे मल्लयुद्ध कर.' साधुए कहुं के 'भले एम हो.' पछी सागरचंद्र मुनिए मल्लयुद्ध करतां ते कळानो पूर्वे अभ्यास करेते होवायी ते. वंने 'जणना शरीरसंधि छुदा करी नांख्या, अने वारणुं उघाडी पोतां'

उपकरणो लइ नगरनी वहार नीकली वनमां कायोत्सर्गमुद्राए स्थित थया। अहीं राज-
पुत्र अने पुरोहितपुत्र वंनेने घणी वेदना धवाथी ते पोकार करवा लाया। एटले राजाए
आवीने पूछयुँ के—‘तमने शुं थयुँछे ?’ त्यारे वीजा लोकोए कहुँ के—‘अहीं एक मुनि
आव्या हता तेणे कंइक करेलुं जणायचे.’ एटले राजा ते मुनिने खोळतो खोळतो
वनमां गयो। त्यां पोताना मोटा भाइने जोइ वांदीने अरज करवा लाय्यो के—‘हे
स्वामी ! आपनी जेवा महात्माओने वीजाने पीडा करवी घटती नथी.’ ते सांभळीने
सागरचंद्रे कहुँ के—‘तुं चंद्रावतंसक राजानो पुत्र पांचमो लोकपाल छे, छतां सायुओने
दुःख देतां तारा पुत्रने तेमज पुरोहितपुत्रने शामाटे अटकावतो नथी ? आवो अन्याय
कैम प्रवर्तीवेछे ?’ त्यारे मुनिचंद्र राजाए कहुँ के—“मारो अपराध क्षमा करो। ते
पुत्रोए जेवुं कर्मु तेवुं तेसुं फल भोगव्युं। परंतु आप पिताने स्थाने छो, माटे कृपा
करीने ते वंनेने साजा करो। आपना शिवाय तेओनां अस्थि ठेकाणे लाववाने वीजो कोइ
शक्तिवान नथी.” एम कहीने वंनेने सागरचंद्र मुनि समीपे लाववामां आव्या। त्यारे
तेमणे कहुँ के—‘जो जीववानी इच्छा करता हो तो संयम लेवातुं कबुल करो.’ तेमणे
ए प्रमाणे कबुल करवाथी तरतज तेओने साजा करवामा आव्या, एटले चारित्र ग्रहण
करीने तेओ साथेज चाली नीकल्या।

ए वे मुनिमां पुरोहितपुत्र जाते ब्राह्मण होवाथी तेणे जातिमद करवाने लीधे
नीच गोत्र वांश्युं। चारित्र पाळीने प्रांते ते वंने देवता थया। तेओ परस्पर स्नेहवाला
हता तेथी तेओए संकेत कर्यो के ‘आपणामांथी जे प्रथम च्यवीने मनुष्य थाय तेने
स्वर्गमां रहेला वीजाए प्रतिवोध पमाडवो.’ पछी काळातेरे प्रथम पुरोहितजीव च्यवीने
राजगृह नगरमां महेर नामना चंडालना घरमां मेती नामनी भार्यानी कुक्षिमां जा-
तिमद करवाथी अवतर्यो। ते चंडालनी भार्या ते शहेरमां कोइ शेठने घेर हमेशां आवेषे।
तेने शेठनी स्त्री साथे अत्यंत मैत्री यड्ढे। शेठाणी मृतवत्सा (छोकरां जीवे नहि ते)
ना दोषवाली होवाथी तेने छोकरां जीवतां नथी। ते वात तेणे चांडालनी स्त्रीने कही।
तेणे कहुँ के—‘आ वरवते जो मने पुत्र थशे तो हुं तमने ओपीश.’ काळे करीने तेने पुत्र
जन्म्यो एटले ते पुत्र तेणे शेठाणीने गुप्तपणे आप्यो। शेठाणीए पुत्रजन्मनो महोत्सव
कराव्यो। अने मेतार्य एवं ते छोकरानं नाम पाण्ड्यं। अनक्षये ते मोळ नर्धनो थयो।

तेने पोतानी पुत्रीओं शामाटे आपोयो? एनो विवाह तो हुं कर्युः' ए प्रमाणे कठी बलात्कारे ते पुत्रने पोताने घेर लइ गइ. पछी देवे त्वां आवीने मेतार्यें कहुं के-'ते माहं कहेवुं केम कर्यु नहि? जोयुं, तारो केवो तिरस्कार कराव्यो? माटे हजु मारा कहेवा प्रमाणे चाल अने चारित्र ग्रहण कर.' मेतार्यें कहुं के-'हुं दीक्षा केवी रीं ग्रहण करुं? तमे मने चांडाल टरावीने लोकोनी अंदर हल्को पाठ्यो, तेथी जो तमे मने पाछो मोटो बनावो, शेड मने पुत्र तरीके स्थापे अने श्रेणिक राजा पोतानी पुत्री मने आपे तो हुं चारित्र लड़.' देवे ते प्रमाणे सघुं करवानुं कबुल कर्यु. पछी देवे अशुचिने बदले रत्नोनी लिंडीओ करतो एक वकरो तेने घेर वांव्यो, अने चांडालने प्रेरणा करी तेथी तेणे रत्नथी भरेलो एक एक थाल लइ जड़ने ब्रण दिवस मुखी श्रेणिक राजाने भेट कर्यो. त्यारे अभयकुमारे पृष्ठयुं के-'एट्लां वधां रत्नो तारी पासे क्यांधी? तेणे कहुं के 'मारे घेर तो वकरो रत्नोनी लिंडीओ कोरेहे.' फरीथी अभयकुमारे कहुं के 'तुं अमने आ रत्नो शामाटे भेट करेहे?' चांडाले कहुं के 'राजा मारा पुत्रने पोतानी पुत्री परणावे माटे हुं भेट करुंदुं.' राजाए कहुं के 'ए केम वनें?' अभयकुमारे कहुं के 'एक वक्खत तुं वक्कराने अहीं लइ आव, पछी यथायोग्य करुं.' तेणे वकरो लावीने राजाने घेर वांव्यो; एट्ले त्वां तो ते हुर्मधयुक्त विष्टा करवा लाग्यो. ते जोइ अभयकुमारे राजाने कहुं के 'आ कोइ देवनो प्रभाव जणाय छै, नहि तो आ राजपुत्रीनी मागणी केवी रीते करी शके? माटे तेनी परीक्षा करवी जोइए. जे कार्य मनुष्य करी शके नहि ते कार्य जो ते करे तो जहर तेमां देवनो प्रभाव खरो.' आ प्रमाणे विचार करी तेणे चांडालने कहुं के 'जो आ राजगृह नगरनी आसपास नवो सोनानो किलो करी आपे, वैभार पर्वत उपर सेतुवंध (सङ्क) वांधे, गंगा, यमुना, सरस्वती ने क्षीरसागर-ए चारेने अहीं लावे अने तेमना पाणीथी तारा पुत्रने नवरावे तो श्रेणिक राजा पोतानी पुत्री तेने आपे.' देवप्रभावथी अभयकुमारना कहेवा प्रमाणे सर्व एक रात्रिमां थयुं. पछी ते जळवडे चांडालपुत्रने नवरावी, पवित्र करीने राजपुत्री परणावी. एट्ले पेला वाणिकोए पण पोतानी पुत्रीओ परणावी. ए प्रमाणे तेणे नव स्त्रीओनी साथे पाणिग्रहण कर्यु. एट्ले देवे आवीने कहुं के 'हवे दीक्षा लें.' त्यारे मेतार्यें कहुं के 'हुं हमणाज परणेलो छुं; तेथी वार वर्ष सुधी आ स्त्रीओनी साथे विषयसूख भोगवीने पछी चारित्र ग्रहण करीश.' देवे पण ते कबुल कर्यु. वार वर्ष गया पछी फरीथी देव आव्यो. त्यारे स्त्रीओए हाथ जोडी फरीथी वार वर्ष माग्यां. विनयथी रंजित थयेला देवे फरीथी वार वर्ष आप्यां. ए प्रमाणे चौवीश वर्ष सांसारिक सुख भागवान् श्री महावीर स्वर्णी

पासे व्रत ग्रहण करी नव पूर्वसु अध्ययन करी जिनकल्पीपणं अंगीकार करीने एकल वेहारी थया।

विहार करतां करतां एक दिवस मासक्षणने पारणे राजगृह नगरमां भिक्षाले गटे भमतां एक सोनीने घेर जइने धर्मलाभ आप्यो. त्यारे ते सोनी श्रेणिक राजानी भाज्ञार्थी जिनभक्तिने अर्थे घडेला एकसो आठ सोनाना जब वहार मूर्कीने घरमां गयो. ते समये कोइ एक क्रौंच पक्षी त्यां आवीने ते सर्व जब गळी गयो. मेतार्यमुनिए ते जोयुं अने क्रौंच पक्षी पण उटीने उच्चे बेटुं, सोनी वहार आव्यो अने जब नहि जोवार्थी साधुने ते विषे पूछ्युं. साधुए विचार कर्यो के 'जो हुं पक्षीनुं नाम लङ्घ तो अ सोनी तेने मारी नाखशे.' तेथी दयाने लीधे मौन धारण करीने उभा रहा. साधुओने ते योग्यज छे, कहुं छे के—

बहु शृणोति कर्णभ्यामक्षिभ्यां बहु पश्यति ।

न च हृष्टं श्रुतं सर्वं, साधुमार्ख्यातुमर्हति ॥

"साधु वंने कानथी घणुं सांभळेछे अने वंने नेत्रथी घणुं जुएछे; छतां पण साधु सघळुं जोएलुं अने सांभळेलुं कहेवाने योग्य नथी."

साधुने वारंवार पूछतां छतां पण जवाव न देवार्थी 'आ चोर छे' एम मानी सोनीए कोधवश थइ लीला चामडार्थी तेमतुं माशुं वर्दीने तेमने तडकामां उभा राख्या. पछी तडकाने लीधे कठण थयेलुं आर्ड चामडुं खेंचावार्थी नसोना खेंचाणने लीधे ते साधुनां वंने नेत्रा नीकळी पड्यां, तेथी घणुं दुःख उत्पन्न थया छतां पण तेमणे तेना उपर रोप आप्यो नहि. क्षमाना गुणथी सघळां कर्मनो क्षय करी आयुष्यने अंते केवलज्ञान पार्मीने मेतार्य मुनि मोक्षे गया. ते समये लाकडानो वोजो पडवार्थी उत्पन्न थयेला शब्दना भयथी व्याकुल थयेला पेला पक्षीए सघळा जवो वर्षी नाख्या. ते जवोने जोइ भय पामेलो सोनी विचार करवा लाग्यो के 'अरे ! मैं वहु खराव काम कर्युं ! मैं श्रेणिक राजाना जमाइ मेतार्य नामना मुनिने हण्या. जो राजा आ वात जाणशे तो जरुर मारो सह-कुदुंब नाश करशे.' पछी भयना मार्या तेणे परिवार सहित महावीर स्वामी पासे जइने चारित्र ग्रहण कर्युं. चारित्र पाळी, पापनी आलोचना करीने ते सद्गतिए गयो.

भक्तिवर्डे कोइ वायनाचंदनथी विलेपन करे अने सुनि करे तमन द्वेषवर्डे कोइ भुजानो छेद करे अने निंदा करे; ते वेनेनी उपर महिंध्रो समभाव राखे अर्थात् मुनि शत्रु पित्र उपर समभाववालाज होय.

सीहिगिरिसुसीसाणं, भईं गुरुवयणसंदहंताणं ।

वयैरो किर दाही वायणंति, नवि “कोविअं वर्यणं ॥ ९३ ॥

अर्थ—“गुरुपदाराजना वचनने सद्वनारा एवा सिंहिगिरि आचार्यना मुशिष्योंहुं कल्याण थाओ. ते शिष्योए ‘आ वत्र मुनि तमने वांचना आपशे’ एवा गुरुपदाराजना वचनने असत्य न कर्युं.” ९३. अर्थात् आ वालक वज्रमुनि अपने शुं वांचना आपशे? एवो विचार पण कर्यो नहि. गुरुपदाराजना वचन प्रत्ये आची वृढ़ श्रद्धा जेने होय तेवा शिष्योंहुं कल्याण थाय तेमां शुं आर्थर्य! अहां वज्रस्वामीनुं दृष्टांत जाणवृं. २६.

वज्रस्वामीनुं दृष्टांत.

वाल्पावस्थामां पदानुसारिणी लविना वल्यी साध्वीमुखे सांभलीने अग्नां अंगनुं जेणे अध्ययन कर्युंछे, अने जेने आठ वर्षनी उपरे गुहए दीक्षा आपेली हे एवा वज्रस्वामी गुरुनी साधे विहार करता हता. एक दिवस वज्रस्वामीने उपाश्रयमां मूर्की सर्व साधुओं गोचरीए गया हता. ते अवसरे वज्रस्वामीए सबक्ष मुनिओनी उपर्यिथो (आसन विगेरे उपकरणो) ने हारवंध गोटवी तेमां मुनिओनी स्थापना करीने (मुनिओ वेठा हे एम मानीने) पोते वचमां वेसी मोटे स्वरे तेमने आचारांगादिनी वांचना आपत्त होय तेम वोल्वा लाग्या. ते अवसरे स्थंडिलभूमिधी आचार्य आव्या. उपाश्रयनां वारण वंध जोइने गुहए गुप्त रीते अंद्र जोयुं तो वज्रस्वामी सर्व मुनिओनी उपर्यिने एकर्त करी छात्रबुद्धिथी भणावता हता. गुहए चिंतव्युं के ‘जो हुं एकदम वारणुं उवडावीं तो ते शंकित थशे.’ एम विचारी मोटे स्वरे ‘निसिहि’ ए प्रमाणे ब्रणवार शब्दोवा कर्यो. ते सांभली गुरु आव्या हे एम जाणी वज्रस्वामीए लघुलाघवी कळाए एकद दरेक उपर्यिने तेने स्थाने मूर्की दइने वारणुं उवडायुं. गुहए विचारुं के ‘आ पुरुषरत्नम आटलुं वयुं ज्ञान हे, माटे आनुं ज्ञान अजाणयणामां न जाओ.’ एवुं विचारी वीजे दिव से सिंहिगिरि आचार्य कंइ कार्यतुं मिप करीने वीजे गाम जवाने उद्युक्त थाया. वखते साधुओए पूछयुं के ‘हे स्वामी! अमने वांचना कोण आपशे?’ गुहए कर्णुं ‘आ वज्र नामना लघुं मुनि तमने वांचना आपशे.’ तेओए कर्णुं के ‘तहत्ति’ (वहु सारं) ते वखते ‘आ वालक अमने शुं वांचना आपी शकशे?’ एवी शंका पण तेओए क नहि. गुरु वीजे गाम गया. शिष्योए सिद्धांतनी वांचना वज्रमुनि पासे लीधी, अध्यय

वहु सारी रीते थयुं. पछी गुरुमहाराज पधार्या अने शिष्योने पूछयुं के—‘काँइ अध्ययन धर्युं के केम ?’ तेओए कहुं के ‘अध्ययन वहु सारी रीते थयुं, थोडा दिवसमां घणो अभ्यास थयो; माटे हवे पछी आ वज्रस्वामीज अमारा वांचनाचार्य थाओ.’ ए प्रमाणे साहुओए अरज करवाथी गुरुएं वज्रमुनिने आचार्यपद आप्युं अने वांचनाचार्य तरीके स्थाप्या.

“ जेवी रीते सिंहगिरिना शिष्योए गुरुनुं वचन मान्य कर्युं तेवी रीते श्रीजाओए पण गुरुना वचनमां संदेह करवो नहि ” एवो आ कथानो उपदेश छे.

मिँण गोणसंगुलीहिं, गँणेहिं वाँ दंतचूँकलाइ से^५ ।

इच्छंति भार्णिङ्कं, कंजं तुं तैव जाणंति ॥ ९४ ॥

अर्थ—“हे शिष्य ! आ सर्पने अंगुलिवडे माप अथवा तेना दंतस्थान-दांत गण”; एवी रीते गुरुमहाराजे कहे सते शिष्य ‘इच्छुं छुं’ अथवा ‘तहात्ति’ कही ते कार्य करवा चाल्यो जाय पण विचार न करे. कारणके तेनुं कार्य तो गुरुमहाराजाज जाणे छे” ९४. एटले तेम शामाटे करवा कहे छे ते हेतु गुरुमहाराज समजे छे, तेमा विनीत शिष्यने विचारवानी जस्तर नथी. तेथी तेमां ते विलंब पण करतो नथी. जेने आवी गुरुमहाराज-नी प्रतीति होय तेनुं खरुं विनीतपणुं समजवुं.

कारणविऊ कर्याई, सेँयं कायं वैयंति आयसिया ।

तं तह सद्विर्यवं, भैवियवं कारणेण तंहिं ॥ ९५ ॥

अर्थ—“ कारणना जाण एवा आचार्य कोइक वस्त ‘आ कागडो झेते छे ’ एम वोले तो तेज प्रकारे सर्दहुं, कारणके तेमां काँइ पण कारणनुं होवापणुं छे.” ९५. कारण विना आचार्य तेबुं कहेज नहि, माटे आचार्यना तेवा वचनमां पण शंका करवीं नहि.

जो गिहई युरुवयौणं, भैणंतं भावओ विसुद्धमैणो ।

ओर्सहमिव पीजंतं, तं तंस सुंहावहं होइ^६ ॥ ९६ ॥

अर्थ—“ भावथी विशुद्ध मनवालो जे शिष्य कहेवातुं एवुं गुरुमहाराजनुं वचन ग्रहण छे अंगीकार करे छे तेने औपथनी जेम पीवातुं ते गुरुनुं वचन सुखने आपनारुं थाय छे.” ९६. जेम पीतां कडब्ब लागे एवुं पण औपथ पीवुं छतुं परिणामे घणा सुखने

अणुवंत्गा विणीया, वैहुखमा निजभैत्तिमंताय ।

युरुकुलवासी अमुई, धन्नीं सीसा इह सुसीला ॥ ९७ ॥

अर्थ—“गुरुनी अतुर्वतनाए चालवावाला, वालाम्यंतर विनयवंत, वहु सहन कर-वावाला, नित्य भक्तिवंत, गुरुकुलवासे वसनागा (स्वच्छाचारी नहि), ज्ञानादि कार्य सिद्ध थये पण गुरुने नहि मुकवावाला अने मुशील (सम्यग् आचारवाला) एवा शिष्यो आ जगत्पां धन्य छे.” ९७

जीवंतैस्स इह जसो, किंती मयर्स्स परंभवे धम्मो ।

सुगुणंसय निर्गुणससय, अर्जंसो किंती अहंमोय ॥ ९८ ॥

अर्थ—“गुणवंत एवा शिष्यनो जीवता सता आ भवमां यश थाय छे अने कीर्ति थाय छे, तेमज मरण पाम्ये सते परभवमां तेने धर्म प्राप्त थायछे. निर्गुणी-दुर्विनीत शिष्यने आ भवमां अपयश अने अपकीर्ति प्राप्त थाय छे अने परभवमां अधर्म-नरकादि गतिनी प्राप्ति रूप थाय छे.” ९८.

बुद्धावोसोवि ठियं, अहैव गिँलाण उँरुं परिभिंवांति ।

दत्तुव्व धम्मविर्मंसएण, दुसींखिखयं तंपि ॥ ९९ ॥

अर्थ—“बृद्धावस्थाने विषे (विहारादिनी अशवितथी एक स्थानके विधिपूर्वक) स्थित थयेला अथवा ग्लान-च्यापियुक्त थयेला एवा गुरुने दत्त नामना शिष्यनी जेम जे पराभव करछे ते धर्मविचारणा वडे पण दुःशिक्षित जाणवुं, अर्थात् दुष्ट शिष्यनुं आचरण समजवुं.” ९९. अहीं दत्तनुं दृष्टांत जाणवुं, २७

दत्तमुनिनुं दृष्टांत,

कुल्लपुर नामना शहेरमां संघनी अंद्रु कोइ स्थविर (बृद्ध) आचार्य हता तेमणे एक वसते आगल मोटो दुङ्काल पडवानो छे एम जाणी गच्छना सर्व सावुओरे वीजे देश मोकल्या; पण बृद्धपणाने लीधे पोते जबाने अशक्त होवाथी तेज नगरीमा वस्तीना नब भाग कल्पी एक स्थानवासी थड्ने रखा. एकदा गुरुसेवाने माटे दत्त नामनो शिष्य त्यां आव्यो. ते शिष्य जे निवासस्थानमां गुरुने मूकनीने गयो हतो तेज स्थान (भाग)नी अंदर गुरु विहारक्रमथी आवेला हता. तेथी शिष्य तेज स्थानमां गुरुने जोइने शंकित थइ विचार करवा लाग्यो के ‘गुरु पासथ्या अने उन्मार्गगामी थया जणायछे, तेमणे स्थान पण वदल्युं होय एम जणातुं नथी.’ आप विचारीने ते जुदा उंगश्रयमां रहो. भिक्षार्थे गुरुनी साथे नीकल्यो, अने उच्च नीच कुल्मां फरतां भिक्षा नहि मल्लवाथी मनमां उद्गेग पामवा लाग्यो. गुरु तेना मननो विचार इंगिताकार

जाणीने कोइ मोटा शेठने घेर गोचरीने माटे गया. ते शेठने घेर व्यंतरना प्रयोगथी एक वाल्कने रोतो जोइने गुरुए कहुं के—‘रो नहि’ ए प्रमाणे कही चपटी बगाडी एटले व्यंतरी नासी गड़ अने वाल्क शान्त थइ गयुं. तेथी खुशी थयेलां तेनां मातापिताए गुरुने लाडु वहोराव्यो; ते आहार दत्तने आपीने गुरुए तेने उपाश्रये मोकल्यो. दत्त विचारवा लाग्यो के ‘आवुं स्थापनाकुळे छतां पण गुरुए मने वहु रखडाव्यो. पछी गुरुए पण सामान्य कुळमां जड नीरस आहार ग्रहण करी उपाश्रये आवीने आहार कर्यो. प्रतिक्रमण करतां दिवसना दोपोनी आलोचनाने अवसरे गुरुए दत्तने कहुं के—‘रे महानुभाव ! तें आजे धावीपिंड (वाल्ककोने प्रसन्न करी तेमनां मावाप पासेथी खोराक लेवो ते) नुं भक्षण कर्यु छे, माटे सारी रीते तेनी आलोचना कर.’ ए सांभळीने दत्ते विचार्यु के—‘गुरु मारा सूक्ष्म दोपो पण जुएछे अने पोताना मोटा मोटा दोपो पण जोता नयी.’ आम विचारीने ते गुरु उपर मत्सर धरवा लाग्यो. पछी प्रतिक्रमण करीने पोताने स्थानके जतां गुरुना गुणथी रंजित थयेली शासनदेवीए ‘आ दत्तने गुरुना पराभवनुं फळ वतावुं.’ एवुं विचारी घणो अंधकार विकुर्वी तेने मोह पमाड्यो. दत्त कई पण जोइ शकतो न होवायी आकुलव्याकुल थवा लाग्यो अने पोकार करवा लाग्यो. गुरुए कहुं के ‘अहं आव.’ त्यारे तेणे कहुं के ‘त्यां केवी रीते आवुं ? हुं द्वार पण जोइ शकतो नयी.’ त्यारे गुरुए पोतानी अंगली थुंकवाली करीने उंची करी दीवानी माफक वळती देखाडी. दत्ते ते जोइने विचार कर्यो के ‘गुरु वहु सावद्य (अति दोषवालो) एवा दीपक पण राखता जणायछे.’ ए प्रमाणे तेने गुरुना अवगुणोज भासवा लाग्या. पछी शासनदेवता ए कहुं के ‘अरे दुरात्मन् ! पापी ! तुं गौतम जेवा गुरुनो पराभव करेछे ? शुं तारे दुर्गतिमां जवुं छे ?’ ए प्रमाणे घणां कर्कश वाक्योयी तेने शिक्षा आपी. तेथी दत्त मुनि पश्चात्ताप करतो सतो गुरुचरणनी अंदर पड्यो अने वारंवार पोतानो अपराध खमाव्यो. छेवटे पापकर्मनी सम्यक् प्रकारे आलोचना करीने ते सद्गतिए गयो.

आ प्रमाणे दत्त मुनिना दृष्टांती शिष्ये गुरुनी अवज्ञा करवी नहि, एवो आ कथानो उपदेश छे.

आयरिय भैत्तिरागो, कससै सुनखवत्त भैहरिसि सरिसो ।

आवि जीविँअं वर्वसिअं, नै चेव गुरुपैरभवो सहिँओ ॥१००॥

आर्य—“गम जाग भैत्तिरागनं दृष्टांत कहेछे—आचार्य उपर भैत्तिराग सनक्षत्र महार्षि

सुनक्षत्र मुनिनुं वृत्तांतं।

एक वखत श्रीवीरप्रभु श्रावस्ती नगरीमां समवसर्या, त्यां गोशालक पण आव्यो, नगरमां एवी वात फेलाइ के आजे नगरमां वे सर्वज्ञ आवेला छे: एक श्रीवीरप्रभु अने वीजो गोशालक, ए वात गोचरीए गयेला श्रीगौतम स्वामीए सांभळी, तेथी तेणे भगवंतने पूछ्युं के 'आ गोशालक कोण छे के जे लोकोनी अंदर सर्वज्ञ एवुं नाम धरावे छे.' भगवाने कहुं के—'हे गौतम! सांभळ. सरवण नामना गाममां मंखलि नामनो मंख जातिनो एक पुरुष हतो. तेने भद्रा नामनी स्त्री हती, तेनी कुक्षिथी ते जन्म्यो छे. जेने घणी गायो हती तेवा एक ब्राह्मणनी गौशालामां जन्मवाथी तेनुं नाम गोशालक पाड्युं हतुं. ते युवान थयो तेवामां हुं छद्गस्थ अवस्थाए फरतो राजगृह नगरने विषे चारुमास रह्यो हतो. ते पण फरतो फरतो त्यां आव्यो. में चार मासक्षणनां पारणां परमान्न(क्षीर) वडे कर्या. तेनो महिमा जोइने ते विचार करवा लाग्यो के 'जो हुं आनो शिष्य थाउं तो दररोज मिष्टान्न मळे.' ए प्रमाणे विचारी ' हुं तमारो शिष्य छुं ' एम कही मारी पाढळ लाग्यो, ते मारी साथे छ वर्ष पर्यंत भग्यो. एक दिवस कोइ योगिने जोइने तेणे मळकरी करी के 'आ जूओनुं शश्यातर छे' तेथी क्रोधित थयेला ते योगिए तेनापर तेजोलेश्या मूर्की. में शीतलेश्या मूर्कीने तेने वचाव्यो. पछी तेणे तेजोलेश्या उत्पन्न करवानो उपाय मने पूछ्यो. में पण भावि भाव जाणीने तेनो उपाय कह्यो, एटले ते माराथी जुदो पड्यो. तेणे छ मास कष्ट वेठी तेजोलेश्या साथी, अने अष्टांग निमित्तोनो पण जाण थयो. पछीथी आ प्रमाणे जनसमुदाय आगळ ते पोतानुं सर्वज्ञपणुं स्थापित करेछे; परंतु ते खोडुं छे. ते कांइ जिन नथी अने सर्वज्ञ पण नथी.' आ प्रमाणेनी भगवंते कहेली हकीकत सांभळीने त्रिक (त्रण मार्ग मळे ते स्थान) मां, चोकमां अने राजमार्गमां सघळा लोको कहेवा लाग्या के 'आ गोशालक सर्वज्ञ नथी.' ए सघलुं वृत्तांत गोशालके कोइना मुख्यी सांभळ्युं, एटले तेने क्रोध उत्पन्न थयो. ते अवसरे आनंद नामना एक साधुने गोचरीए जतां जोइने तेणे बोलाव्या अने कहुं के "हे आनंद ! तुं एक दृष्टांत सांभळ-केटलाएक वाणीआ करियाणांनां गाडां भरीने चाल्या. तेओ जंगलमां गया. त्यां तेमने घणी तृष्णा लागवाथी पाणीनी शोध करतां तेओए चार राफळानां शिखरो जोयां. तेओए एक शिखर तोड्युं, एटले तेमांथी गंगाजल जेवुं निर्मल जळ नीकल्युं. सघळाओ ते जळ वारंवार पीने संतुष्ट थया. वीजुं शिखर तोडवा जतां साथेना कोइ एक वृद्ध माणसे तेमने वार्या, परंतु तेओ वार्या रहा नहि. ते शिखर तोडतां अंदरथी सोनुं नीकल्युं. ए प्रमाणे त्रीजुं शिखर भेदतां अंदरथी रत्नो नीकल्यां. चोरुं शिखर भेदवा वरते ते वृद्धे घणा वाय छतां पण तेओए ते शिखर तोड्युं तो तेमांथी अति भयंकर दृष्टिविष सर्प नीकल्यो. तेपे सूर्य सामुं जोइने तेमनी उपर दृष्टि फेंकी, जेथी ते सघळा भस्म थह गया. पेलो वृद्ध वाणी

यो वच्यो. तेवी रीते हे आनंद ! तारो धर्माचार्य पण पोतानी क्राद्धिथी तृप्त न थतां मारी इर्प्या करेछे तेथी हुं तेने वाळीने भस्म करी नाखीश. परंतु तुं तेने हितोपदेश देनार थवाथी तने हुं वाळीश नहि". ए प्रमाणे सांभळीने भयभीत थयेला आनंदे भगवानने सर्व हकीकत कही, भगवंतनी आज्ञाथी गौतम आदि मुनिओने ते वात जणावी; जेथी तेओ सर्व भगवंतथी दूर पोतपोताने स्थाने वेसी गया. एटलामां गोशालक त्यां आवी प्रभुने कहेवा लाग्यो के "हे काश्यप ! तुं मने पोतानो शिष्य कहेवे ते खोडुं छे. ते तारो शिष्य तो मरी गयो, हुं तो तेनुं शरीर वळवान जाणीने ते शरीरमां स्थिति करीने रहो छुं." ए सांभळीने "आ भगवाननी अवज्ञा करेछे" एम जाणी गुरुभक्तिमां अत्यंत रागवाला सुनक्षत्र नामना साथुए गोशालकेन कहुं के "अरे ! तुं तारा धर्माचार्यनी निंदा केम करेछे ? तेज तुं गोशालक छे (वीजो नथी)." ए सांभळीने गोशालके क्रोधवश थइ तेजोलेश्यथी सुनक्षत्र मुनिने वाळी नाख्या. समाधिथी मृत्यु पार्मी ते आठमा देवलोकमां देवपणे उत्पन्न थया. ए समये वीजा सर्वानुभुति नामना साथुए पण सर्व जीवोने खमावी अनशन करी गोशालकनी सन्मुख आवीने कहुं के "तुं स्वधर्माचार्यनी निंदा केम करेछे ?" तेथी दुष्ट गोशालके तेमने पण वाळी नाख्या. ते मरीने वारमा देवलोकमां उत्पन्न थया. पछी भगवाने कहुं के "हे गोशालक ! तुं शामाटे तारा देहने गोपवे छे? जेम कोइ चोर भागतो सतो कोइ न देखे तेटला माटे तरणुं पोतानी आडुं थरेछे पण तेथी ते छानो रहेतो नथी, तेवी रीते तुं पण माराथीज बहुश्रुत थयो छे अने मारीज अपलापना करेछे." इत्यादि वचनोथी क्रोधित थइने तेणे भगवाननी उपर पण तेजोलेश्या मूकी. ते तेजोलेश्या भगवानने त्रण प्रदक्षिणा करी पाढी वळीने गोशालकना शरीरमांज पेठी. पछी गोशालक वोल्यो के "हे काश्यप ! तुं आजथी सातमे दिवसे मरण पार्मीश." त्यारे भगवाने कहुं के "हुं तो सोल वर्ष सुधी केवलीपणे विचरीश, परंतु तुं तो आजथी सातमे दिवसे मोर्टी वेदना भोगवीने मरण पार्मीश." पछी गोशालक पोताने स्थाने आव्यो. सातमे दिवसे शांत परिणामथी समकित फरश्युं तेथी ते मनमां विचार करवा लायो के "अरे ! मैं आ अत्यंत विस्त्र आचरण कर्युं. मैं भगवाननी आज्ञानो लोप कर्यो! मैं साथुओनो वात कर्यो! आवता भवमां मारी शी गति थशे ?" ए प्रमाणे विचारी शिष्योने वोलावी कहुं के "मारा मरण पछी मारा कलेवरने पगथी वांधीने श्रावस्ती नगरीमां चोर तरफ फेवजो, कारणके हुं जिन नहि छतां. 'हुं जिन छुं ?' एवुं मैं लोकमां कहेवराव्युल्ले." आ प्रमाणे आत्मनिंदा करतो सतो मरण पार्मीने ते वारमा देवलोकमां उत्पन्न थयो, पछी शिष्योए गुरुनुं वचन मान्य करवा माटे उपाश्रयनी अंदर श्रावस्ती नगरी आलेखी कमाड वंथ करी कलेवरने

पुन्नेहिं चोइया पुरक्केहिं, सिरिम्भायणं भविईसत्ता ।

युहुँ माग्मेसिभदा, देवर्यमिव पञ्जुवामंति ॥ १०१ ॥

अर्थ—“पूर्वकृत पुण्यवडे प्रेरयेला, लक्ष्मीना भाजन अने आगामि काळे जेमत्वं कल्याण थवानुं छे एवा भव्य जीवो पोताना गुरुने देवतानी जेम सेवे छे. अर्थात् जर्वे रीते देवनी सेवा करे तेवी रीते गुरुनी पण सेवा करे छे.” ?०१.

बहु सुखव सयैसहस्राण, दायग्गा मोअग्गा दुहसैहस्राण ।

आयैरिआ फुँड मेर्इं, केसि पएसिअ “तेहेउ ॥ १०२ ॥

अर्थ—“बहु प्रकारना लाखोगमे मुखना आपनारा, अने सेंकडो अथवा हजारो दुःखथी मूकावनारा धर्मचार्य होय छे, ए वात प्रगट छे (एमां संदेह जेवुं नर्थी). प्रदेशी राजाने केशि गणधर तेवीज रीते मुखना हेतु थयेला छे.” ?०२.

अहीं केशि गणधर अने प्रदेशी राजानो उपनय जाणवो. ३९

जंबूदीपना भारतवर्षमां कैक्यार्द्द देशमां श्वेतांवी नामनी नगरी छे. त्यां अर्थमानो शिरोमणि, जेना हस्त निरंतर रुधिरथी लेपायेलाज रहे छे एवो, परलोकनी दस्कार विनानो अने पुण्यपापमां निरपेक्ष प्रदेशी नामनो राजा हतो. तेने चित्रसारथि नामनो मंत्री हतो. तेने एक दिवसे प्रदेशी राजाए श्रावस्ती नगरीमां जितशत्रु राजानी पासे मोक्षयो. त्यां ते केशिकुमार नामना मुनिनी देशना सांभर्डने परम श्रावक थयो. पछी तेणे केशिकुमारने विज्ञप्ति करी के ‘हे स्वामिन् ! एक वस्त्र आपे श्वेतांवी नगरीए पथारवानी कृपा करवी. आपने तेथी लाभ थयो.’ केशिगणधरे कहुं के ‘तमारो राजा वहु दुष्ट छे तेथी केवी रीते आवीए ?’ चित्रसारथिए कहुं के ‘राजा दुष्ट छे तो तेथी शुं ? त्यां वीजा भव्य जीवो पण घणा वसे छे.’ त्योर केशिकुमारे कहुं के ‘प्रसंगे जोइशुं.’ पछी चित्रसारथि श्वेतांवीए आव्यो. अन्यदा केशिकुमार पण घणा मुनिओथी परिवृत थड श्वेतांवीनी वहार मृगवन नामना उपवनमां समवसर्या. चित्रसारथि तेमतुं आववुं सांभर्डी मनमां विचार करवा लाग्यो के ‘हुं राज्यचिंतक छतां दुर्बुद्धि अने पापी एवो मारो राजा नरके न जीवो जोइए, माटे तेने आ मुनि पासे लइ जाउं.’ एवुं विचारी अश्वक्रीडाना मिष्ठी राजाने नगर वहार लइ गयो. पछी अति श्रमधी थार्झी गयेल राजा श्री केशिकुमारे अलंकृत करेला वनमां आव्यो. त्यां घणा लोकोने देशना देतां तेमने जोइने राजाए चित्रसारथिने पूछयुं के ‘आ मुंडो जड अने अज्ञानी लोकोनी आगळ शुं कहे छे ?’, चित्रसारथिए

कहुं के ‘ हुं जाणतो नयी. ’ जो आपनी इच्छा होय तो चालो. त्यां जइने सांभलीए. ए प्रमाणे कहेतां राजा चिवसारथिनी साथे त्यां गयो, अने बंदनादि विनय कर्या बिना गुरने पूछ्युं के ‘ आपनो हुकम होय तो वेसुं ? ’ गुरए कहुं के ‘ आ तमारी भूमि छे, माटे इच्छा मुजवं करो. ’ ए प्रमाणे सांभलीने राजा तेमनी आगळ वेठो. तेने वेठेलो जोइने आचार्ये विशेषे कर्नी जीव आदिनुं स्वरूप वर्णव्युं. ते सांभलीने राजा-ए कहुं के “ आ सर्व असंबद्ध छे. जे वस्तु प्रत्यक्ष देखाय तेज सत् होय छे. जेम पृथ्वी जळ, तेज ने वायु प्रत्यक्ष देखाय छे तेम आ जीव प्रत्यक्ष देखातो नयी तेरी आकाश-पुष्पवत् अविद्यमान एवी जीवसत्ता केम मानी शकाय ? ” त्यारे केशिकुमारे कहुं के “ हे राजा ! जे वस्तु तारी नजरे देखाय नहि ते शुं सघलानी नजरे न देखाय ? जो तुं कहीशके ‘ जे हुं देखुं नहि ते सर्व असत्य छे ’ तो ते मिथ्या कथन छे. कारण के सघलाए जोयुं होय अने एके न जोयुं होय तो ते असत्य ठरतुं नयी. वळी जो कहीश के ‘ सघलाओ जोइ शकता नयी ’ तो तुं शुं सर्वज्ञ छे के जेथी वधा जोइ शकता नयी एवी तने ख्वर पडी ? जे सर्वज्ञ छे ते तो जीवने प्रत्यक्ष जुए छे, तुं तारा शरीरनो अग्र भाग जोइ शके छे पण पृष्ठ भाग जाइ शकतो नयी तो जीव-नुं स्वरूप के जे अरूपी छे ते तो शी रीते जोइ शके ? माटे जीवसत्ता छे एम मानीने परलोकनुं साधन छे एम प्रमाण कर. ” त्यारे प्रदेशि राजाए कहुं के ‘ हे स्वामी ! मारो पितामह अत्यंत पापी हतो ते तमारा पत प्रमाणे नरके जबो जोइए. तेने हुं घणोज मिय हतो, पण तेणे आवीने मने कहुं नहि के पाप करीश नहि, पाप करीश तो रके जबुं पडेश, त्यारे जीवसत्ताने हुं केवी रीते मान्य करुं ? ’ केशिकुमार मुनिए लिंग के ‘ तेनो उच्चर सांभल-तारी सूरीकंता राणीनी साथे विषयसेवन करतां कोइ रपुरुपने जो तुं जुए तो तेने तुं शुं कर ? ’ राजाए कहुं के ‘ हुं तेने एक घाए वे टुकड़ि करी मारी नाखुं, एक क्षण कुडुंबमेलाप करवाने माटे तेने धेर जवानी पण रजा थापुं नहि.’ गुरए कहुं के ‘ ए प्रमाणे ते नारकीओ पण कर्वयी वंशायेला होवाथी अने आवी शकता नया.’ फरीथी राजाए कहुं के ‘ अति धर्मिष्ठ एवी धारी माता तमारा पत प्रमाणे स्वर्गमां गइ हरो. तेणे पण आवीने मने कहुं नाहूं के वत्स ! पुण्य करजे. पुण्य करवाथी स्वर्ग मळे छे, तो हुं जीवसत्ताने केवी रीते प्रमाण करुं ? ’ त्यारे केशिगणधरे कह्य के ‘ तपे भव्य वस्त्र पहेरी चंदन आदिथी शरीरने लिस करी-

चत्तारिंचजोयणसयाइं, गंधोअ मणुअ लोगसस ।
उहुं वच्छ जेण, न हु देवा तेण आवंति ॥

“आ मनुष्यलोकनो दुर्गंध चारशें पाचशें योजन सुधी उंचो जाय छे, तेथी देवताओ अहीं आवता नथी.” फरीथी राजाए कहुं के ‘हे स्वामी! एकवार में एक चोरने जीवतो पकड्यो अने लोढानी कोठीमां नाखी तेनुं वारणुं बंध कर्युं. काळे करीने ते कोठीनुं वारणुं उघाही जोयुं तो चोर मरी गयो हतो अने तेना कलेवरमां घणा जीवडांओ उत्पन्न थयां हतां, पण तेमां छिद्र पडेलां नहोतां तो ते जीवने नीकळवाना अने बीजा जीवोने आववानां छिद्रो तो होवां जोइए. में ते जोयां नहि तेथी कहुं छुं के जीव नथी.’ केशिकुमारे कहुं के ‘कोइ एक पुरुषने घरना गर्भागारमां राखवामां आवे अने घरनां सर्व द्वार बंध करवामां आवे; पछी ते मध्ये रहो सतो शंख ने भेरी विगेर वाजित्र वगाडे, तो तेनो शब्द बहार संभलाय के नहि?’ राजाए कहुं के ‘संभलाय.’ गुरुए कहुं के ‘बहार शब्द आववार्थी शुं ओरडानी भींतमां छिद्रो पडेछे?’ राजाए कहुं के ‘पडतां नथी.’ गुरुए कहुं के ‘जो रूपी शब्दथी छिद्र पडतां नथी तो अरूपी जीवथी छिद्रो केम पडे?’ फरीथी प्रदेशी राजाए कहुं के ‘हे स्वामी! एक चोरना में ककडे ककडा करी तेना दरेक प्रेदेश जोया पण तेमां जीव जोवामां आव्यो नहि,’ केशिगणधरे कहुं के “तुं कठीयारानी जेवो मूर्ख देखाय छे. केटलाएक कठीयाराओ लाकडां लेवाने माटे बनपां गया. तेमांथी एक कठीयाराने कहुं के ‘आ अग्नि छे, तेथी रसोइनो वखत थाय त्यारे रसोइ करजे, कादि आ अग्नि बुझाइ जाय तो आ अरणीना काष्ठमांथी अग्नि उत्पन्न करजे.’ ए प्रमाणे कहीने तेओ गया. अहीं अग्नि बुझाइ गयो तेथी पेला मूर्ख कठीयारे अरणीनुं लाकडुं लावी तेना चूरचूरा कर्या, परंतु अग्नि उत्पन्न थयो नहि. तेटलामां पेला कठीयाराओ आव्या. तेओए तेनी मूर्खता जाणी बीजुं अरणीनुं काष्ठ लावी तेनुं मथन करीने तेमांथी अग्नि प्रगट कर्यो, अने रसोइ करी भोजन कर्युं. एम जेवी रीते काष्ठनी अंदर रहेलो अग्नि उपायथी सधाय छे तेवी रीते देहमां रहेलो जीव पण साधी शकाय छे.” ए प्रमाणे सांभलीने प्रदेशी राजाए कहुं के “हे स्वामिन्! में एक चोरनुं वजन करी तेना श्वासनुं रुधन करीने तेने मारी नांख्यो. तेने फरीथी तोल्यो तो ते तेटलाज वजननो थयो. त्यारे में जाण्यु के ‘जीव नथी.’ जो तेनामां जीव होत तो जीव जतां ते कांडक ओछो थात.” केशिगणधरे कहुं के “हे महीपति! जेम पूर्वे जोखे चामडानी धमणने पाढ़ल्यथी वायुथी पूर्ण करीने जोखतां पण ते तेटलीज थाय छे—१ बघतो नथी, तेवी रीते जीव संवंधी तुं सारी रीते विचारकर. ज्यारे रूपी द्रव्य रूप वालु

भार वध्यो नहि तो अरूपी द्रव्य जीवना जवाथी न्यूनता शी रीते थाय ? सूक्ष्म एवा रूपी द्रव्योनी पण विचित्र गति छे तो अरूपी द्रव्यनी विचित्र गति होय तेमां तो शुं कहेवुं ! माटे आ बाबतमां तुं शामाटे शंकित थाय छे ? आत्मा आपणने अनुमान प्रमाणथी गम्य छे अने केवलीने प्रत्यक्ष प्रमाणथी गम्य छे. वली 'हुं सुखी छुं हुं दुखी छुं' ए प्रकारनुं जे ज्ञान थाय छे ते आत्मानुंज लक्षण छे. माटे जेम तलनी अंदर तेल, दुधनी अंदर धी अने काष्ठनी अंदर अग्नि रहेल छे तेम देहनी अंदर जीव रहेलो छे." इत्यादि अनेक पश्चोन्ना उत्तर शास्त्रयुक्तिथी आप्या. तेथी संदेहरहित थयेलो राजा विचार करवा लाग्यो के 'आ वात सत्य छे, आ ज्ञाने धन्य छे, पछी गुरुने नमस्कार करीने राजाए विज्ञासि करी के 'हे भगवन ! तमारा उपदेश रूपी मंत्रथी मारा हृदयमां रहेलो मिथ्यात्व रूपी पिशाच भागी गयो, परंतु कुलपरंपराथी आवेला नास्तिक मतने हुं केवी रीते छोडुं ?' त्यारे केशिकुमार मुनिए कह्युं के "हे प्रदेशि राजा ! तुं लोहव-णिकनी पेठे मूर्ख केम बने छे ? ते वार्ता आ प्रमाणे छे-

केटलाक वणिको व्यापार करवाने माटे परदेश जवा चाल्या. मार्गमां तेओए एक लोढानी खाण दीठी, एटले तेओए लोढानां गाडां भर्या. आगळ चालतां तां-वानी खाण जोइ, तेथी लोढुं खाली करीने तांबुं भर्यु. मात्र एक वाणीआए लोढुं खाली कर्यु नहि. आगळ चालतां तेओए रुपानी खाण जोइ, एटले तांबुं खाली करी रुपुं भर्यु. घणुं कहेतां छतां पण पेला लोहवणिके लोढुं काढी नांख्युं नहि. आगळ चालतां तेओए सोनानी खाण जोइ, तेथी रुपुं खाली करी सोनुं भर्यु. आगळ चालतां रत्नोनी खाण जोइ, एटके सोनुं खाली करी रत्नो भर्या. ते वखते तेओ पेला लोहव-णिकने कहेवा लाग्या के 'हे मूर्ख ! आ मेल्वेलो रत्नसमूह तुं शामाटे गुमावे छे ! लोढुं तजी दइने रत्नो ग्रहण कर, नहि तो पाछळथी जस्त तने पश्चात्ताप करवो पडशे', ए प्रमाणे तेने घणुं कहेवामां आब्युं छतां तेणे मान्युं नहि अने कहेवा लाग्यो के 'तमारामां स्थिरता नथी, तेथी एकने छोडी बीजाने ग्रहण करोछो अने बीजाने छोडी त्रीजाने ग्रहण करोछो पण हुं ए प्रमाणे करतो नथी. मैं तो जेनो स्वीकार कर्यो तेनो कर्यो.' पछी ते सघळा घेर आव्या, अने रत्नना प्रभावथी पेला वणिको सुखी थया. तेमने सुखी थयेला जोइने लोहवणिक मनमां पश्चात्ताप करवा लाग्यो के 'अरे ! मैं आ शुं कर्युं ! तेओनुं कहेवुं मैं मान्युं नहि.' एम तेणे घणा काळ सुधी शोच कर्यो. ए

दारिद्र्यदास्यदुर्नीयदुर्भगतादुःखितादि पितृचरितम् ।
नैवं त्याज्यं तनयैः स्वकुलाचारैककथितनयैः ॥

“ दारिद्र्य, दासपणुं, अनीति, दुर्भागीपणुं अने दुःखीपणुं आदि जे पोतान वितादिए आचर्यु होय तेने पोतानो कुलाचार एज नीति छे, एम कहेनारा पुत्रो नज तजबुं जोइए । ” माटे हे राजा ! कुलाचार ए धर्म नयी; किन्तु जंतुनी रक्षा कर्व इत्यादिज धर्म छे । ” इत्यादि वचनोयी प्रतिवोध पामेलो प्रदेशि राजा विनय पूर्वन वोल्हो के ‘ हे भगवन् ! आ आपनुं वाक्य सत्य छे अने तत्त्व स्वय छे, एज खां अर्थ छे, ए शिवाय वीजुं सर्व अनर्थज छे । ’ ए प्रमाणे कहीने प्रदेशि राजाए समक्ति मूळ वार व्रतो ग्रहण कर्यो, फरीयी शिक्षाने अवसरे केशी गणधरे कलुं के-

माणं तुम पएसी पुर्विं रमणिजे भवित्ता पच्छा अरमणिजे भविजासिइति ।

आ राजप्रश्नीय सूत्रनो आलाचो छे, तेनो भावार्थ ए छे के ‘ प्रदेशि राजा तुं पूर्वे रमणिक थइने पक्षात् (हवे) अरमणिक न थइश । ’ एटले प्रथम अन्यनो दात यह सांप्रत काळे जिनधर्मनी प्राप्ति थवार्थी तेमनो अदाता न थइश; केमके तेम थवार्थ अमने अंतराय कर्म वंथाय अने जिनधर्मनी अपभ्राजना (निंदा) थाय. चली लांच वस्ततर्थी चाल्या आवता दाननो निषेध करवार्थी लोकविरुद्धता अने अपभ्राजनादि दो तने पण प्राप्त थाय. माटे जेने आपतो हो तेने आपबुं पण पात्रद्विष्ट न आपबुं, आरि हंत विगेरे पण उचित दाननो निषेध करता नयी, माटे तारे तो मिथ्यात्वने तजबुं अने सर्वथी उत्तम एवा दयादानने निरंतर धारण करबुं । ” ए प्रमाणे गुरुनी शिक्षा ग्रहण करीने प्रदेशि राजा घेर आव्यो, अने पोताना धननो (राज्यना आवदानीनो) एव भाग अंतःपुर माटे, वीजो भाग सैन्य माटे, त्रीजो भाग भंडार माटे अने चोयो भा दानशाला माटे उपयोगमां लेवो, ए प्रमाणे मुकरर करीने सर्व उपज चार भागम वहेची दीर्घी. अनुक्रमे श्रावकपणुं पालतां केटलोक काल व्यतीत थया वाद एवद परपुरुषमां लुभ थयेली सूर्यकान्ता नामनी तेनी पट्टराणीए तेन भोजनमां विष आए ते वातनी भोजन कर्या पछी प्रदेशि राजाने खवर पडी, परंतु अव्याकुल चित्ते राणी उपर किंचित् पण क्रोध कर्या विना पौषधशालामां आवी, दर्भनो संथारो करी, ईशान कोण सन्मुख बेसी, भगवान धर्माचार्य श्रीकेशि गणधरने नमस्कार करी, पोते लीघेल व्रतमां लागेला अतीचारेनी सम्यक प्रकारे आलोचना प्रतिक्रमणा करीने तेणे कर्यो, अने सूर्याभ नामना विमानमां चार पल्योपम आयुष्यवालो सूर्याभ नामनो थयो, पाढो त्यांयी च्यवी महाविदेहसां अवतरीने मोक्षे जशे ।

कर्यु अने अनुक्रमे तेषणे आचार्यपद मेलव्युं. तेषनो भाणेज दत्त स्वच्छंदी थयो अने द्यूत आदि व्यसनोर्थी पराभव पामी राजानी सेवा करवा लाग्यो. कर्मयोगे राजाण तेने मंत्रीपद आप्युं. अधिकार मलतां राजानेज पदभ्रष्ट करीने ते राज्य पञ्चावी पड्यो. राजा पण तेना भयथी नासी गयो अने गुप्तपणे कोइ स्यानके रह्यो. पढ़ी महाकूर कर्म करनारो ते दत्त राजा मिथ्यात्वथी मोह पामीने अनेक यज्ञो करववा लाग्यो अने संख्यावंध पशुओनो घात करवा लाग्यो. अन्यदा अवसरे कालिकाचार्य महाराज तां समवसर्या; त्यारे भद्रा माताना आग्रहथी दत्त राजा वांदवाने आव्यो. गुरुमद्वाराने देशना आपी के-

धर्माद्धनं धनत एव समस्तकामा
कामेभ्य एव सकलेंद्रियजं सुखं च ।
कार्यार्थिना हि खलुकारणमेपर्णीयं
धर्मो विधेय इति तत्त्वविदो वदन्ति ॥

“ धर्मथी धन मलेछे, धनथी समस्त कामनाओ सिद्ध थायछे अने सर्व कामनानी सिद्धिथी समग्र इंद्रियजन्य सुख प्राप्त थायछे. माटे कार्यार्थीए तो अवश्य कारण शोध जोइए; तेथी धर्म करवो एवुं तत्त्ववेत्ताओ कहेछे. ”

आ प्रमाणे सांभलीने दत्ते यज्ञनुं फल पृछयुं. गुरुए कहुं के ‘ ज्यां हिंसा हो त्यां धर्मनो अभाव छे.’ कह्युं छे के-

दमोदेवगुरुपास्तिर्दानमध्ययनं तपः ।

सर्वमप्येतदफलं हिंसां चेन्न परित्यजेत ॥

“ इंद्रियोनुं दमन, देवगुरुनी सेवा, दान, अध्ययन अने तप-ए सघळां जं हिंसानो त्याग न करे तो व्यर्थ छे. ”

फरीथी दत्ते यज्ञनुं फल पूछयुं. त्यारे गुरुए कहुं के ‘ हिंसा दुर्गतिनुं कार छे. ’ कह्युं छे के-

पंगुक्षिष्ठुणित्वादि हृष्टा हिंसाफलं सुधीः ।

निरागस्यसजंतूनां हिंसां संकल्पतस्त्यजेत ॥

“ डाह्या माणसे पांगलापणुं, कोटीआपणुं ने ढुंठापणुं विगेरे हिंसानां फल-हे एम जाणीने निरपराधी एवा त्रस प्राणीओनी हिंसा संकल्पवडे पण न करवी. ” वली दत्ते कहुं के ‘ तमे आवो आडो आडो उत्तर कम आपोछे ? यज्ञनुं फल जेवुं

तेवुं सत्य कहोः । त्यारे कालिकाचार्ये विचार कर्यो के ‘जोके आ राजा हे अने यज्ञमां प्रतिवालो छे ते छतां जे बनवाहुं होय ते बनो पण हुं मिथ्या बोलीय नहि प्राणांते पण मिथ्या बोल्हुं कल्याणकारी नयीः । कहुं छे के-

निंदन्तु नीतिनिषुणा यदि वा स्तुवन्तु

लक्ष्मीः समाविशतु गच्छतु वा यथेष्टम् ।

अद्यवै वा मरणमस्तु तुगान्तरे वा

न्यायात्पथः प्रविचलन्ति पदं न धीराः ॥

“नीषुण गणाता लोको भने निंदा करो अथवा स्तुति करो, लक्ष्मी भने प्राप्त थाओ अथवा मरजी सुनजव चाली जाओ, मरण आज थाओ अथवा युगने अतै थाओ, परंतु शीर पुस्तो नीतिना मार्गीयी एक पगलुं पण खसता नयोः ।”

आ प्रमाणे विचारी कालिकाचार्ये कहुं के ‘हे दृच ! हुं निश्चय पूर्वक कहुं छुं के नरकगति एज यज्ञतुं फल छे ।’ कहुं छे के-

यूपं चित्त्वा पश्चात् हत्वा, कृत्वा सूधिरकर्दमम् ।

यद्येवं गम्यते स्वर्गे, तरके केन गम्यते ॥

“यज्ञस्तंभ छेडी, पशुओने हणी अने सूधिरनो कीचड करी जो स्वर्गे जवाहु होय तो पछी नरकमां कोण जावे ?” दृचे कहुं के ‘ए केवी रीते जणाय ?’ गुरु कहुं के ‘आजयी सातपे दिवसे घोडाना पगाना ढावलायी उडेली विष्टा तारा सुखमां पड्यो, अने पछी तुं लोहानी कोटीयां पूराइय, आ अहुमानयी तारी अवश्य नरकगति यवानी छे एम जाणजे, ’ दृचे कहुं के ‘तपारी शी शति यवे ?’ गुरुए कहुं के ‘अपे थर्मना प्रभावयी स्वर्गे जड्हुं’ आ प्रमाणे सांभर्चीने क्रोधित यवेदा दृचे विचार कर्यो के ‘जो सात दिवसनी अंद्र आ बाक्य प्रमाणे नहि बने तो पछी हुं अवश्य आपने मारी नांवीश, ’ आम विचारी कालिकाचार्यनी आसपास राजसेवकोने सूक्ष्मी पोते नगरमां आव्यो, अने आज्ञा यद्येना तपाम रसनाओमांयी अपवित्र पडायों काढी नस्तावी साफ कराइया अने सर्व स्यले पुष्पो वेगव्यां, पोते अंतःपुरमांन रहो, ए प्रमाणे छ दिवसो व्यतीत यवा पछी आठमा दिवसनी भ्रांतियी सातपे दिवसे क्रोध-युक्त बनी घोडा उपर स्वार यइ गुरुने हणवा चाल्यो, तेवामां कोइएक वृद्ध मार्ची दम्प जवानी हाज्रनयी पीढा पामबाने लीये रस्तामांन विष्टा करी बेने पुष्पोयी दांकीने

त्याः एकांतं जाणीने जितशत्रु राजाना सेवकोए तेने पकड़ी लीथो अने जितशत्रुने गादीए वेसार्यो. पछी सामंतराजाओए विचार्यु के 'जो आ जीवतो रहेथे तो दुःखदायी थथे.' ऐस विचारी तेओए तेने लोहानी कोटीमां नांगयो. पछी वणा दिवस पर्यत महान् दुःख भोगवतो सतो विलाप करतो अने पोकार करतो ते मृत्यु पास्यो. मरीने ते सातमी नरके गयो अने श्रीकालिकाचार्य तो चारित्रं सेवीने स्वर्गं गया.

ए प्रमाणे साधुए प्राणांते पण मिथ्या भाषण न करुं एवो आक्यानो उपदेश छे.

फुडपांगडमक्हंतो, जहैडिअं वोहिलाँभ मुवहंणइ ।

जहै भगवैओ विसालो, जरमरणमहोअही आँसि ॥ १०६ ॥

अर्थ—“स्फुट प्रगट (सत्यार्थ) न कहेवाथी यथास्थित-सत्य एवा वोधिलाभने आगमी भवे धर्मप्राप्तिने हणी नाखे छे-विनाश करे छे. जेम भगवंत श्री महावीर स्वार्पीने (मरिचिना भवमां सत्य न कहेवाथी) विशाळ एवो जरा परण स्वप्न महोदधि-महासमुद्र थयो. अर्थात् कोटाकोटि सागरोपम प्रमाण संसार ववार्यो.” १०६.

अहीं श्री महावीर स्वामीना पूर्वभवनो संवंध जाणवो. ३१.

प्रथम भवमां पथिम महाविदेहने विषे नयसार नामे कोइ ग्रामाधिपति (गामेती) हतो. ते एक दिवस काष्ठ लेवाने माटे बनमां गयो. मध्यान्हसमये भोजन तैयार कर्यु. ते अवसरे साथयी विकुटा पडी गयेला कोइ एक मुनि त्यां आव्या. तेने जोइने नयसार घणो खुशी थयो अने भावयी श्रद्धा पूर्वक तेने आहार आप्यो. आहार करी रखा पछी साधुने मार्ग वताववाने माटे ते साथे गयो. साधुए पण योग्य जीव जाणीने तेने देशनावडे सम्यक्त्व प्राप्त कराव्यु. पछी ते साधुने नर्मीने घेर गयो. कालांतरे मरण पामीने ते सौधर्म देवलोकपां उत्पन्न थयो. ए वीजो भव थयो.

त्यांथी च्यवीने श्रीजा भवमां मरिचि नामे भरत चक्रवर्तीनो पुत्र थयो. श्रीकृष्णदेव भगवाननी देशना सांभळी, भोगोनो त्याग करी स्थविर मुनि पासे चारित्र ग्रहण कर्यु. पछी अग्यार अंगनुं अध्ययन करी चारित्र पाळतां एकवार उष्णकाळमां तापथी पीडित थड्हने ते विचार करवा लाग्यो के 'माराथी चारित्र पळबुं मुश्केल छे; आ चारित्रधर्म अति दुष्कर छे, तेथी माराथी ते पाळी शकाय तेम नथी' अने घेर जंगु ए पण योग्य नथी.' ए प्रमाणे विचार करीने तेणे एक नवो त्रिदंडी वेष ग्रहण कर्यो; परंतु जे कोइ तेने धर्म पूछे तेनी आगळ साधुर्धर्म प्रकाशित करे अने जे कोइ तेनी देशनाथी ग्रतिवोध पामे तेने भगवाननी पासे मोकले. आ प्रमाणे तेणे अनेक

पुत्रोंने प्रतिवोध पमाडचो. आ स्थितिमां पण मरीचि भगवाननी साथे विचरेले. विहार करतां करतां एक वार भगवान अयोध्यामां समवसर्या. भरत चक्री प्रभुने वांदवा आव्या अने देशनाने अंते पूछलुँ के 'हे भगवन् ! आ आवी मोटी सभामां कोइ पण भावी (थनार) तीर्थकर छे ? ' भगवाने कहुँ के 'आ त्रिदंडी सन्यासी वेषधारी मरीचि नामे तारो पुत्र आ चोवीशीमा चोवीशमा वर्धमान नामे तीर्थकर, महाविदेहने विषे मूका नगरीमां प्रियमित्र नामे चक्रवर्ती अने आ भरतक्षेत्रमांज त्रिपृष्ठ नामे पहेलो वासुदेव थशे. ए प्रथम वे पदवीने भोगवी छेवटे तीर्थकर थशे. ' ए सांभळी भरत मरीचि पासे जइ, त्रण प्रदक्षिणा दइ, नमस्कार करीने कहुँ के "हे मरीचि ! आ संसारमां जेटला लाभ छे तेटला वधा तें मेलब्याछे. कारणके तुं चक्रवर्ती, वासुदेव अने तीर्थकर थनार छे; माटे हुं तारा परिव्राजक वेषनी अनुमोदना करतो नथीः परंतु तुं छेलो तीर्थकर थनार छे तेथी हुं तने वांदुङ्हुं. ' ' ए प्रमाणे कहीने भरत चक्रीना गया पछी मरीचिए त्रण वखत पग पछाडी नाचतां नाचतां कहुँ के 'हुं त्रण पद मेलबीश तेथी मारुं कुळ उत्तम छे. ' ' ए प्रमाणे वारंवार कुळनो मद करवाथी तेणे नीच गोत्र वांध्युं. अन्यदा प्रथम प्रभु मोक्षे गया पछी साधु साथे विहार करतां तेना शरीरे मांदगी आवी, परंतु साधुना आचारथी रहित होवाने लीधे तेनी कोइए सेवा चाकरी करी नहि. तेथी ते विचार करवा लाग्यो के 'जो हुं साजो थाऊं तो एक शिष्य करूँ? ' अनुक्रमे ते स्वस्थ थयो. एक दिवस कोइ कपिल नामे राजपुत्र मरीचिनी देशना सांभळी प्रतिवोध पास्यो. त्यारे मरीचिए कहुँ के 'हे कपिल ! तुं साधु पासे जह चारित्र ग्रहण कर. ' तेणे कहुँ के 'हुं तमारो शिष्य थइश. ' पछी मरीचिए पोतानुं स्वरूप यथार्थ कही बताव्युं अने कहुँ के 'मारामां चारित्र नथी. ' तोपण कपिल मान्यो नहि अने कहेवा लाग्यो के 'शुं तमारा दर्शनमां सर्वथा धर्म नथीज ? ' त्यारे मरीचिए जायणुं के 'आ कपिल मने योउय मल्यो छे. ' एम जाणी मरीचिए कहुँ के 'कपिला इत्थंपि इहंपि ' , 'हे कपिल ! साधु समीपे महान धर्म छे, अने मारी पासे अल्प धर्म छे. ' ' ए प्रमाणे सूत्रविरुद्ध कथनथी तेणे एक कोटाकोटि सागरोपम प्रमाण संसारनी घृद्धि करी. तेनी आलोचना कर्या वगर चोराशी लाख पूर्वनुं आयुष्य पालीने ते चोथा भवे पांचमा देवलोकमां दश सागरोपमना आयुष्यवालो देवता थयो.

त्यांथी च्यवी पांचमा भवमां कोल्हाग संनिवेष गाममां ऐशी लाख पूर्वना आयुष्य-वालो ब्राह्मण थयो. ते भवमां त्रिदंडी थइ घणो काळ संसारमां भटक्यो. (आ भवो पांचमीं लीधा नथी, स्थूल भवोज गणेला छे.) छात्रा भवमां स्थूणा नगरीमां बोंतेर छक्री आयुष्यनान्त्रो गाहा जाये वाक्यण थयो, ते त्रिदंडी थइ मरण पामीने सातमा भवे

प्रथम देवलोकमां मध्यम स्थितिवालो देव थयो.. त्यांथी च्यवी आठमा भवमां चैत्यसं-
निवेष नामना गाममां साठ लाख पूर्वना आयुष्यवालो अग्रिम्योत नामे ब्राह्मण थयो,
छेवटे त्रिदंडी थइ मृत्यु पार्मीने नवमा भवे वीजा देवलोकमां मध्यम स्थितिवालो देव थयो,
त्यांथी च्यवी दशमा भवे पंदिरसंनिवेषे साठ लाख पूर्वना आयुष्यवालो अग्रिभूत नामे
ब्राह्मण थयो. प्रति त्रिदंडी थइ मृत्यु पास्यो. अग्यारमा भवे त्रीजां देवलोकमां मध्यम स्थिति-
वालो देव थयो. त्यांथी च्यवी वारमा भवमां खेताम्बरी नगरीमां चोराशी लाख पूर्वना आयु-
ष्यवालो भारद्वाज नामे ब्राह्मण थयो. छेवटे त्रिदंडीपणे मृत्यु पार्मी तेरमा भवे चौथा देवलो-
कमां मध्यम स्थितिवालो देव थयो. पछी घणो काळ संसारमां भट्की चौदमा भवे राजगृह
नगरमां चोत्रीश लाख पूर्वना आयुष्यवालो स्थावर नामे ब्राह्मण थयो. छेवटे त्रिदंडी
थइ मृत्यु पास्यो. पंदरमा भवे पांचमा देवलोकमां मध्यम स्थितिनो देव थयो. त्यांथी
च्यवी सोळमा भवमां एक क्रोड वर्षना आयुष्यवालो विश्वभूति नामे युवराजपुत्र
थयो. ते जन्ममां तेणे वैराग्यपरायण थइ संभूति मुनि पासे चारित्र ग्रहण करी अर्थंत
तीव्र तप कर्यु. एक दिवस मासक्षणने पारणे मथुरा नगरीमां गोचरीए गया हता. त्यां
दुर्वलपणथी एक गायना अथडावाथी ते भूमि उपर पडी गया. तेने जोइने तेना काकानो
छोकरो वैशाखनंदी हास्य करीने बोल्यो के 'तुं एक मुष्टिना प्रहारथी कोठाना झाडना
तेमाम फळने भूमि पर पाढी नाखतो हतो ते दिवस क्यां गयो ?' आ वचन सांभर्वीने
क्रोधायमान थइ ते गायने शींगडावती पकडी आकाशमां फेरवीने एवुं नियाणुं कर्यु के
' जो आ तपर्नुं फळ होय तो आगामी भवे हुं घणो वळवान थाउं.' ए प्रमाणे हजार
वर्ष तप तपी प्राते पापनी आलोचना कर्या विना भरण पार्मी सत्तरमा भवे सातपा देव-
लोकमां उत्कृष्ट स्थितिवालो देव थयो. त्यांथी च्यवी अढारमा भवे पोतनपुर नगरमां
प्रजापति नामना राजाने घेर पोते परणेली पोतानी पुत्री जे मृगावती तेनी कुक्षिमां सात
स्वप्नथी सूचन करायेल त्रिपृष्ठ नामनो वासुदेव थयो. ते भवमां भरतार्थीने साधी घणु
पाप करी चोराशी लाख वर्षनुं आयुष्य भोगवी औगणीशमा भवे सातमी नरके गयो.
त्यांथी च्यवीने वीशमा भवे सिहणे उत्पन्न थयो. एकवीशमा भवे चौथी नरकमां नारकी-
पणे उत्पन्न थयो. त्यारपछी पाढो घणा काळ सुधी संसारमां भट्कयो. पछी वावीशमा
भवे एक क्रोड वर्षना आयुष्यवालो मतुष्य थयो. ते भवमां शुभ कर्मो करी चैवीशमा भवे
महाविदेहमां मूका राजधानीमां धनंजय राजाने घेर धारिणी राणीनी कुक्षिमां चौद
स्वप्नथी सूचन करायेल विधमित्र नामे चक्रवर्ती थयो. प्रति पोष्टिलाचार्य पासे चारित्र
ग्रहण करी एक कोटी वर्ष सुधी चारित्र पाढी पूरेपुर्ण चोराशी लाख पूर्वनुं आयुष्य

भोगवी चोवीशमा भवे सातमा देवलोकमां देवपणे उत्पन्न थयो. त्याथी च्यवी पचीशमा भवे छत्रिका नगरीमां जितशानु राजाने घेर भद्रा नामनी राणीनी कुक्षिमां पचीश लाख वर्षना आयुष्यवालो नंदन नामे पुत्र थयो. तेणे ते भवमां पोटिलाचार्य पासे दीक्षा लड्ड यावज्जीव मासक्षण करी वीशस्थानकनी आराधनावडे तीर्थकरनामकर्म उपार्जन कर्यु. एक लाख वर्ष सुधी चारित्र पालीने प्रांते एक मासनी संलेखनावडे छत्रीशमा भवने विषे दशमा देवलोकमां पुष्पोत्तरावतंस विमानमां वीश सागरोपमना आयुष्यवाला देवता थया. त्याथी च्यवी सत्तावीशमा भवे चोवीशमा तीर्थकर थया.

आ प्रमाणे मरीचिना भवमां तेणे उत्सूत्र भाषणथी कोटाकोटि सागरोपम प्रमाण संसारनी दृद्धि करी. ए प्रमाणे अन्य जीवो पण जो उत्सूत्र भाषण करे तो संसारनी वृद्धि करेः माटे उत्सूत्र भाषण कदि पण करवुँ नहि, एवो आ कथानो उपदेश छे.

कारुन्नरुन्नसिंगार—भाँवभयजीविअंतकरणेहि ॥

साँहू अविँञ्च मँरंति, नैय निअनिँअमं विराहंति ॥ १०७ ॥

अर्थ—“कारुण्यभाव, रुदन, शृंगारभाव (हावभावादि), राजादिकनो भय अने जीवितांतकारी अनुकूल प्रतिकूल उपसर्गवडे साधु कदाचित् मरण पामेछे, परंतु पोताना नियमने विराधता नथी.” १०७ अर्थात् पूर्वोक्त कारणो प्राप्त थतां प्राण तजी देष्ठे; पण व्रत तजता नथी—कारुण्यादिवडे व्रतनी विराधना करता नथी.

अप्पैहिअ मायरंतो, अणुमोअंतो अँ सुगगैँ लहैँ ॥

रहकार दाणअणुमोअगो—मिंगो जँह यँ बँलदेवो ॥ १०८ ॥

अर्थ—“आत्महित एट्ले तप संयमादि तेने आचरतो सतो श्राणी सद्गतिने पामेछे, तेमज तेने—दानादि धर्मने अनुमोदतो सतो पण सद्गतिने पामेछे. जेम सुनिने दान देनार रथकार, तेना दाननी अनुमोदना करनार मृग अने तपसंयम आचरनार बँलदेव सुनि सद्गतिने पाम्या तेम.” १०८

बँलदेवमुनि, रथकार ने मृग ए त्रणे पांचमे देवलोके गया, तेथी तप संयमादि तेमज दान शीलादि धर्म कर्यो, कराव्यो अने अनुमोद्यो सतो पण वहु फळने आपेछे. अहीं बँलदेव, रथकार ने मृगनो संवंध जाणवो. ३२

बँलदेव रथकार ने मृगनी कथा.

द्वारिका नगरीने वाली नांखवानु जेणे नियाणु करेलछे एवा द्विपायन क्रुपिए कुमारपणे उत्पन्न थइ ज्यारे द्वारिकाने वाली त्यारे मात्र कृष्ण अने बलभद्र वेज

व्रतवा पास्या वीजा मर्ये बर्दी गया। वनं याद्वां वनमां गया, त्वा कुण्डने याँ
तृपा लागो तेथी वल्लभद्र पाणी लाववाने गया। न्या वैरीनी साथे उड़ थर्ना शति पर्ही
गह, अही कुण्डा एक वृक्षनी नीचे पग उपर पग चढार्वानि सुना हता, त्वा कुण्डन
मृत्यु पोनाने दाथे थवानु छे पट्टु थी नेपीश्वरना मुख्यार्थी जाणनि जेणे ते प्रपाणे न थ-
वाने पांडित घनवाम ग्रहण केल्यो छे पट्टो वसुदेवनी जगा शाणीनो पृथु जगाकुमार त्वा
आव्यो, तेणे फरतां फरतां राखिए कुण्डना पगने नक्कीपु रेहन्दु पद्म दृश्यी दीद्धुः एक्ये
आ अकचकित मृगनु नेत्र जणाय छे पट्टु थारी तेणे कणी पर्यंत वाण मंचीने कुण्डने
चरण दीधी नाल्यो, पासे आवतां ते पोतानो धाह छे पूम जाणी पश्चात्ताप करतो सनो
जगाकुमार विचाप करवा लाग्यो, ते वस्त्रे कुण्डे कल्यु के 'हे पापी ! तुम अहीर्थी जल्दी
चाल्यो जा, हमणा वल्लभद्र आवद्ये तो ते तने मारी नाल्यो.' ए प्रपाणे कहेवार्थी जग-
कुमार तरतज न्यार्थी चाल्यो गयो, पट्टी आयुष्यना प्रांत धारे कुण्डने क्रोध उत्पन्न थाँ,
तेथी ने मनमां विचार करवा लाग्यो के 'अर ! जुआं त्रणसें ने साड संप्रापनो करतांग
एयो हुं पद्मावल्लवान छतां पने वाणीही हणानि आ जगाकुमार क्षमकुण्डल गयो !' ए प्रपाणे
दुर्ध्यानने वदा थड़ परण पार्हीने कुण्डे दीनी नस्के गया।

ते मध्यं जल वृद्धने वल्लभद्र पण न्या आव्या, तेणे कुण्डने प्रन्ये कल्यु के हुं थेवु ! मे-
तारा पांट केहू जल आर्यु छे, तुम उठ अने जल पी.' ए प्रपाणे कहेवार्थी आव्या अही
कुण्डे उत्तर आप्यो नहि त्यारे वल्लदेवे विचार कर्थी के 'मैं जल लाववार्थी वणो वस्त्र
गुपाल्यो नेथी आ पारा थेवु क्रोधित थेयेआ जणाय छे तेथी हुं नेने खमावुं.' ए प्रपाणे
विचार करी पगपां पट्टने अरज करवा लाग्या के 'हे थेवु ! आ क्रोधतो अवमर छे ?
आ पांद्य अंगल्यां आपणे थेने एक्या शीण पांट तुम उठ.' ए प्रपाणे वारेवार कहेवार-
छतां पण उपारे ने धोल्या नहि त्यारे वल्लदेव मोहवद थड़ कुण्डा मृत्यु पांभद्र छे अही
नन भीवता जाणी पोताना संक्रम उपर लड्हने चाल्या, आ संसार्यां त्रण वस्तु मर्वर्थी
अधिक छे, कल्यु छे के—

तीर्थ्यकरणां साम्राज्यं, मपत्नीविरमेव च ।

वासुदेववल्लस्नेहः, मर्वेभ्योऽधिककं मतम् ॥

अथ—“ तीर्थ्यकरणं नाश्राज्य, मपत्नी (शोक) तु वैर अने वासुदेव ने वल्लदेवता
स्नेह ए त्रण वानां मर्वर्थी अधिक गणांयनां छे.”

एम बोलता तेनी पछवाडे मारवाने दोड्या, पण देव अदृश्य थइ गयो. वलीं फरीथी ते देवने पर्वतनी शिला उपर कमल वावतो जोइने बलदेवे कहुं के ‘रे मूर्ख ! शिलानी अंदर शुं कमलनी उत्पत्ति संभवे छे ? ’ देवे कहुं के “जो तारो मृत्यु पामेलो भाइ उभो थइ तने ‘हे भाइ ! ’ ए प्रमाणे कहेशे तो आ शिलानी विषे पण कमलनी उत्पत्ति थशे.” ए प्रमाणे कहेतां छतां पण बलदेवजी मोहने वश थयेला होवाथी पोतानो भाइ मृत्यु पामेलो छे एम तेमणे जाण्यु नहि. ए प्रमाणे तेमणे छ मास सुधीं परिभ्रमण कर्यु. पछी तेमणे ते शरीरने विनाश पामेलुं जाण्यु एटले छोडी दीदुं. सिद्धार्थदेवे ते शरीरने समुद्रमां क्षेपन कर्यु. पछी वहु विलाप करता एवा बलदेवने श्री नेमिनाथे मोकलेला चारण मुनिए आवीने प्रतिवोध पमाड्यो, तेथी वैराग्यपरायण थइने तेमणे ते चारण मुनि पासे दीक्षा लीधी. पछी पर्वत उपर रही उग्र तप करवा लाग्या. एक वार मासक्षणने पारणे शहरनी अंदर आहार लेवाने माटे आवतां तेमने कूवाने कांठे उभेली एक स्त्रीए जोया. तेना रूपथी मोहित थयेली ते स्त्रीए घडानी भ्रांतिथी पुत्रना गळामां दोरडानो गाळीओं नांख्यो. ते जोइने बलराम मुनिए कहुं के ‘हे मुख्ये ! तुं आ शुं करे छे ? मोहथी पराधीन थइने पुत्रने केम मारे छे ? ’ पछी तेमणे विचार कर्यो के ‘मारा रूपने धिकार छे ! हवेथी मारे नगरमां आववुं श्रेयस्कर नथी; वनवास सेववोज सारो छे.’ ए प्रमाणे अभिग्रह करीने तुंगिका पर्वत उपर रह्या. त्यां पारणाने दिवसे जो कोइ सार्थ अथवा कोइ कठीयारो आवे छे अने ते तेमने शुद्ध अन्न वहोरावे छे तो ते आहार करे छे, नहि तो तपमां शृद्धि करेछे. ए प्रमाणे तप करतां तेमने अनेक लघिओ उत्पन्न थइ; अने देशनावडे अनेक व्याघ्र तथा सिंह विग्रे प्राणीओने प्रतिवोध पमाड्यो. पेलो सिद्धार्थदेव पण तेमनी सेवामांज रहेवा लाग्यो. त्यां एक अतिभद्रक मृग देशनाथी प्रतिवोध पास्यो. ते अहर्निश तेमनी सेवा करेछे अने वनमां भमेछे. ज्यां ते आहारनो योग जाणेछे त्यां ते संवंधी संज्ञावडे बलभद्र मुनिने जणावेछे. मुनि पण तेने आगळ करीने त्यां जायेछे.

एक दिवस कोइ रथकार (सुतार) ते वनमां आव्यो. ते कोइ मोटा वृक्षनी शाखा कापतां कापतां अरधी मूकी तेनी नीचे रसोइ करवा लाग्यो. पेला मृगे ते जोइने संज्ञावडे मुनिने निवेदन कर्यु. मुनि मृगनी साथे त्यां आव्या. साधुने आवेला जोइ रथकार घणो हर्षित थइने वहोराववा लाग्यो. ते वरखते पेलो मृग पण आगळ उभो रही शुभ भावना भावेछे; तेवामां पेली अरधी कापेली डाळी एकाएक त्रुटी पडी ने समकाळे त्रणेना उपर पडवाथी ते त्रणे जणा काळ करी पांचमा देवलोके उत्पन्न थया.

तप करनार बलदेव साधु, सहाय करनार रथकार अने अनुमोदना करनार मृग—ए जणाए सरखुं फल मेलव्युं. माटे आ जैनधर्म आचर्यो होय, वीजा पासे पळाव्यो

होय अने कोइ पाळनारनी अनुमोदना करी होय तो ते समान फळ पण आपेछे; ते निरंतर धर्मां उच्चम करदो, एवो आ कथानो उपदेश छे.

जैं तैं कृयं पुरा पूर्णेन, अद्वुक्तं चिरकालं ।

जई तं^{१३} दयाविरो इह, कैरितु तो^{१३} सफल्यं हुंतं ॥ १०९

अर्थ—“जे ते अतिदुष्कर एवो तप पूर्वे चिरकाल-धणा काळ पर्यंत पूरण तापसे के ते तप जो आ संसारमां (ते भवमां) दयातत्परपणे कर्या होत तो ते सफल यात १०२. परंतु तेणे करेलो तप धणो छतां अज्ञान दोषवालो होवाने लीये तुच्छ फळ प्रथयेहुं होवायी ते निष्फल गयोज कहेवाय.

पूरण तापसे तामर्छी तापसनी जेवो वार वर्ष पर्यंत तप कर्यो तेने परिणामे चमेरन्द्र थयो, विशेष फळ मञ्चुं नहि. अर्हं पूरण तापसनो संवंथ जाणवो. ३३

पूरण तापसनो वृत्तांत्.

विद्याचल पर्वत पासे पैदाल नामे गाममां पूरण नामे एक शेड रहेतो हतो. दिवस वैरग्यवान थवायी पोताना पुत्रने पोताने स्थापीने तेणे तामालि मुनिनी तापसी दीक्षा लीथी. ते हमेशां छट करीने पारणुं करेछे; अने पारणाने दिवसे चतुष्पं (चार खानावालुं) पात्र लड्ने परिमित घरे भिक्षा अर्थे भमेछे. तेमां जे अज्ञादि पात्रना प्रखंडमां (खानामां) पडे ते पक्षीयोने आपी देढे, वीजा खंडमां पडचुं होय ते मत्त आपी देढे, त्रीजा खंडमां पडचुं होय ते स्यलचर जीवोने आपी देढे, अने चे खंडमां पडचुं होय ते पोते खायेढे. आ प्रमाणे अति उग्र अज्ञान तप वार वर्ष करी एक मासनी संलेखनायी काळधर्म पापी चमरचंचा नामनी राजधानीमां चमययो. आठचुं तप जो तेणे दया पूर्वक कर्युं होत तो तेने वहु फळ प्राप्त यात. ज्ञान पूर्वक तप कर्वुं, एवो आ कथानो उपदेश छे.

कारण नीयावासी, सुड्युरं उज्ज्वेण जईयव्वं ।

जैह ते^{१४} संगमीथरा, सपांडिहेरा तंया आसि ॥ ११० ॥

अर्थ—“वृद्धावस्थादि कारणे करीने नित्यावासी एट्ले एक स्थानके रहेतां दण अतिशय उच्चमे करीने (चारित्रविपये) प्रयत्नवान रहेवुं. जेम तेवा—चारित्रवि उच्चमवंत ‘संगम स्थविर’ नामे आचार्य ते काळे (देवसानिव्ययी) सप्रातिदि के० मद्दात्म्यवाला होता हवा.” ? ? ०

एगंतं नीयावासी, घरसंरणाइसु लैँ मर्मत्तंपि ।

कैह नै पडिंहांति कलिकलसंगोसदोसाण आवाप ॥ १११ ॥

अर्थ—“रोगादि कारण विना एकांत नित्यावासी के० नित्य एक स्थाने रहेनार मुनि, घर सज्ज करवा विग्रेरेमां एट्ले पोते जे मकानमां रहेता होय ते मकान दुरस्त करवा विग्रेरेमां जो ममत्वपणुं धारण करेछे तो ते मुनि कलि के० क्लेश-कळह, कल्प ते मलिन आचरण अने रोप के० क्रोध तद्रूप अथवा तेना जे दोष तेनी आपदामां केम न पडे ? अर्थात् पडेज.” १११.

अविकित्तिऊण जी॑वे कैत्तो घरसरणयैत्तिसंठप्पं ।

अविकित्तिआइ॒ तं तह॑, पडी॑आं असंज्याण पंहे ॥ ११२ ॥

अर्थ—“जीवने हण्याविना घरनुं संमार्जन अने घर फरतुं वाड विग्रे नाखवा वडे संरक्षण क्यांथी थाय ? नज थाय. तेथी तेवा प्रकारना वेषधारी जीवधातको असंयतिना मार्गमां पडेलाज जाणवा.” ११३

उपाश्रयने घर करी वेसनारा अने तेनी सारसंभाल विग्रे करवा करववा घाला गुनिवेषधारने माटे आ उपदेश जाणवो. तेमने असंयतिज जाणवा.

थोडोवि॑ गिहिपैसंगो, जईणो सुख्दैस्स पंकै॑ मार्वहइ ।

जैह सो॑ वरित्तिरिसि, हैसीओ पजो॑अंनरवइणा ॥ ११३ ॥

अर्थ—“थोडो पण गृहस्थनो प्रसंग शुद्ध मुनिने पण पाप रूप पंक के० कर्दम-कादव लगाडेछे. जेम ते वार्तक नामना मुनिनी चंडप्रद्योत नामे राजाए हांसी करी के ‘हे नैमित्तिक ! तमने वंदन करुं छुं.’ माटे मुनि महाराजाए थोडो पण गृहस्थनो प्रसंग न करवो.” ११३. अहीं वरदत्त मुनिनो संवंध जाणवो. वार्तक त्रुष्णिनुं वीजुं नाम वरदत्तमुनि जाणवुं. ३४

वरदत्त मुनिनुं दृष्टांतः

चंपानगरीमां मित्रप्रभ नामे राजा हतो. तेने धर्मघोष नामे मंत्री हतो. ते नगरमां धनसित्र नामे एक अत्यंत राजमान्य शेठ हतो. ते शेठने धनश्री नामे भार्या हती. तेमने सुजातकुमार नामे अति कांतिवान, रूपलावण्यथी युक्त अने स्त्रीओने अतिप्रिय लागे तेवो पुत्र थयो हतो. एक दिवस धर्मघोष मंत्रीना अंतःपुर पासे थइने ते जातो हतो, तेवामां प्रियंगुमंजरी नामनी मंत्रीपत्नीए तेने जोयो. ते कुमारखुं रूपलावण्य जोइ मोहित थयेली मंत्रीनी सर्व स्त्रीओ परस्पर कहेवा लागी के ‘हे सखीओ ! आपणने आ पुरुष घणो प्रिय लागेछे, परंतु जे स्त्रीनो आ भोक्ता थशे ते स्त्रीने धन्य ए प्रमाणे विचार थयेलो होवाथी एक दिवसे प्रियंगुमंजरी गुप्तपणे सुजातकुमा-

गाथा ११२-अविकित्तिऊण. संठप्पं. अविकित्तिआय. पडिया. असंज्याण. अहत्वा जीवधातका. १३-थोडोवि. वारित्तिरिसि. वारित्तिरिसि- नरवयणा.

रनो वेष धारण करीने शोकोनी साथे पुरुषनी पेठे क्रीडा करती परस्पर खेलवा लागी। मंत्रीए ते सघङ्कुं जोयुं, तेथी तेना मनमां इर्ष्या उत्पन्न थइ. ते विचार करवा लाग्यो के 'अरे ! मारी सघळी स्त्रीओ सुजातकुमारनी साथे विलास करेछे.' पछी तेणे सुजातकुमार उपर द्रेष राख्यो, अने सर्व स्त्रीओनो त्वाग कर्यो.

एक दिवस मंत्रीए कूटपत्र लखी राजाना हाथमां आप्यो अने कहुं के 'आवा कूटलेख लखनार सुजातकुमारने मारी नांखवो जोइए.' ए प्रमाणे सांभळीने राजाए विचार कर्यो के 'जो हुं तेने अहीं एकदम मारी नांखीश तो मारी अपकीर्ति थावो.' एम जाणी सुजातकुमारने कूटपत्र लखी आपीने चंद्रध्वज राजानी पासे मोकल्यो. ते पत्रमां लख्युं के 'आ पत्र लावनार सुजातकुमारने मारी नांखवो.' ते वाक्य वांचीने चंद्रध्वज राजाए विचार कर्यो के 'आ पुरुषरत्नने मारी नांखवानुं शामाटे लखेछे ?' पछी गुप्त चर मोकली तेणे सर्व हकीकत जाणी लीधी. पछी तेणे पेलो कूटपत्र गुप्त रीते पोतानी पासे साचवी राख्यो, अने पोतानी वैन चंद्रयशाने सुजातकुमारनी साथे परणावी तेने पोताना महेलमां राख्यो. चंद्रयशाना संयोगथी सुजातकुमारने रोग उत्पन्न थयो, तेथी चंद्रयशा विचारवा लागी के 'मने धिक्कार छे के मारा संयोगथी आ पुरुष रोगी थयो.' त्यारे सुजातकुमारे कहुं के 'हे सुलोचना ! आमां तारो कांइ अपराध नथी, मारां अशुभ कर्मनोज आ दोष छे.' इत्यादि वचनोधी चंद्रयशा प्रतिवोध पामी, वैराग्यपरायण थइ, अनशन अंगीकार करीने समाधिथी मृत्यु पामी देवपणे उत्पन्न थइ. अवधिज्ञानथी पूर्वभव जाणी त्यां आवी अने सुजातकुमारने कहुं के 'हे स्वामिन ! तमारा प्रसादथी हुं चंद्रयशानो जीव देव थयेल हुं, माटे जे आज्ञा होय ते करूं.' सुजातकुमारे कहुं के 'मने मारां मातापिता पासे पहोंचाड अने मार्ह कलंक उतार, जेथी हुं दीक्षा ग्रहण करूं.' देवे तत्काल ते प्रमाणे कर्यु. सुजातकुमारने चंपानगरीना उद्यानमां मूकयो अने नगरप्रमाण शिला विकुर्वीने चंद्रप्रभ राजाने भय पमाडी कहुं के 'हे नराधम ! ते आ सुजातकुमार उपर विलद्ध आचरण केम कर्सु ?' तेथी राजाए भयभ्रांत थइ पगमां पडीने सघळी हकीकत यथार्थ निवेदन करी अने सुजातकुमारना पंगमां पडी वारंवार खपाववा लाग्यो. देवे पण शिला संहरी लीधी. पछी राजाए सुजातकुमारने हाथी उपर वेसाडी मोटा महोत्सव साथे नगरमां आण्यो. सुजातकुमार पिता साथे दीक्षा लह केवलज्ञान प्राप्त करीने मोक्षे गयो.

धर्मवोप मंत्रीने राजाए देशनिकाल कर्यो. तेना छोकराओए तथा स्त्रीओए तेने घणो धिक्कार आप्यो. ते भमतो भमतो राजगृह नगरे आव्यो. त्यां तेणे एक स्थविर मुनि पासे वैराग्यपरायण थइने दीक्षा लीधी अने गीतार्थ (सूत्र ने अर्थनो जाणनार) विहार करतां अन्यदा वरदत्त नामना नगरमां वरदत्त मंत्रीने घेर गोचरीने माटे गया.

मंत्री दूधपाकनुं भाजन लइने सन्मुख वहोराववा आव्यो अने कहुँ के 'हे स्वामी ! आ निर्देष अब ग्रहण करो.' तेवामां ते पात्रमांथी एक बिंदु नीचे पड़युँ. ते जोइ धर्मघोष मुनि पाछा वली गया. त्यारे वरदत्त मंत्रीए विचार कर्यो के 'मुनि आहारमाटे आवेल छतां आ शुद्ध आहार तेमणे शामाटे ग्रहण कर्यो नहि ?' ए प्रमाणे ते विचार करेछे तेवामां नीचे पडेला दूधपाकना बिंदु उपर एक मसिका (मार्खी) वेठी, ते मार्खीने जोइने तेना उपर एक गरोळी आवी, ते गरोळी उपर एक काकीडो आव्यो, ते काकीडाने मारवाने एक विलाडी दोडी, ते विलाडीना वध माटे घरनो कूतरो आव्यो, अने ते कूतराने मारवाने माटे शेरीनो कूतरो दोळ्यो, शेरीना कूतराने घरना नोकरोए मारी नांख्यो. त्यारे शेरीना लोकोए घरना कूतराने मारी नांख्यो. पछी घरना नोकरो अने शेरीना लोको वच्चे परस्पर गाळागाळी थवा लागी. वेमांथी कर्जीओ वध्यो, अने क्रोध वधी जवाथी वाणो अने खडगोवडे युद्ध थवा लाग्युँ. ते जोइ वरदत्त मंत्रीए विचार कर्यो के 'अहो ! आ साधुने धन्य छे के जेणे आवो भावी उपद्रव जाणीने शुद्ध अब्ज आपतां छतां पण ग्रहण कर्यु नहि, आ जिन धर्मने पण धन्य छे. हवे ए जंगम तीर्थ रूप साधुनो मने केवी रीते मेलाप थशे ?' एम विचार करतां तेने जातिस्मरणज्ञान उत्पन्न थयुँ एटले सघळुं पूर्व भवनुं वृत्तांत दीक्षाग्रहणादि स्मरणमां आव्युँ. पछी स्वयमेव चारित्र लइ देवताए आपेलो वेष धारण करी स्वयंबुद्ध एवा वरदत्त मुनि विहार करतां सुस-मारनगर आव्या, अने नागदेवना चैत्यमां कायोत्सर्ग करीने स्थित थया.

सुसमारपुरना राजा धुंधुमारने अंगारवती नामे अति रूपवती पुत्री हती. तेणे एक दिवस कोइ योगिनीनी साथे विवाद कर्यो अने योगिनीने निरुत्तर करी. योगिनीने क्रोध उत्पन्न थयो, तेथी तेणे अंगारवतीनुं रूप चित्रपटमां आळेखीने उज्जयिनीना राजा चंडप्रद्योतने वताव्युँ. तेना रूपथी मोहित थइने अने योगिनीना मुखथी पण ते वह रूपवती छे एम सांभळीने ते राजाए धुंधुमार राजा पासे दूत मोकली अंगारवतीनी मारणी करी. धुंधुमारे कहेवराव्युँ के 'पुत्री मननी प्रसन्नताथी अपायछे पण वक्ताल्कारथी लइ शकाती नथी.' ए प्रमाणे दूतना मुखथी सांभळी चंडप्रद्योत राजाने अति क्रोध उत्पन्न थयो, तेथी मोडुं लक्षक लइ सुसमारपुर आवीने घेरो घाल्यो. अल्प सैन्य-वालो धुंधुमार राजा नंगरनी अंदरज रहो, वहार नीकच्योज नहि. ए प्रमाणे धणा दिवसो व्यतीत थतां धुंधुमार राजाए कोइ निमित्तियाने पूळयुँ के 'मारो जय थशे के पराजय ?' निमित्तिये कहुँ के 'हुँ निमित्त जोइने कहीश.' पछी पेला निमित्तियाए

जोइने मुनिए कहुं के ‘ हे वाल्को ! तमे वीवो नहि, वीवो नहि, तमने भय नथी.’ आ प्रमाणेनुं मुनिरुं वाक्य सांभलीने ते निमित्तियाए आवी राजाने कहुं के ‘ हे राजा ! आपने कोइ पण प्रकारे भय नथी. आपनो जय थशे.’ ए प्रमाणे सांभलीने धुंधुमार राजा अति हर्षित थयो अने नगरथी वहार नीकली युद्धमां चंडप्रद्योतनो पराजय करी तने जीवतो पकड़ीने नगरमां दाखल थयो. धुंधुमार राजाए चंडप्रद्योतने कहुं के ‘ हुं तने क्या प्रकारनो दंड करुं ? ’ त्यारे चंडप्रद्योते कहुं के ‘ हुं तमारे घेर परोणे आव्योहुं’ माटे परोणाने उचित होय ते दंड आपो.’ ए प्रमाणे विनययुक्त कोमळ वाक्य सांभलीने धुंधुमारे विचार कर्यो के-

गुरुस्मिद्धिजातीनां, वर्णानां ब्राह्मणो गुरुः ।

पतिरेवगुरुः स्त्रीणां, सर्वस्याभ्यागतो गुरुः ॥

“ ब्राह्मणोनो गुरु असि छे, वर्णोनो गुरु ब्राह्मण छे, स्त्रीओनो गुरु पति अने अभ्यागत (परोणो) सर्वनो गुरु छे.” ए प्रमाणे कहेलुं होवाथी आ चंडप्रद्योत मारे सर्व रीते पूज्य छे. वली मोटा पुरुषनी प्रार्थनानो भंग करवो ते पण श्रेयने म नथी. कहुं छे के-

याचमानजनमानसवृत्तिः, पूरणाय वत जन्म न यस्य ।

तेन भूमिरिति भारवतीयं, न द्वूमैर्न गिरिभिर्न समुद्रैः ॥

“ जे माणस जन्मीने याचना करनार माणसना मनोरथने पूर्ण करी शकतो नर्त ते माणसज आ भूमिने भाररूप छे, दृशो, पर्वतो के समुद्रथी भूमि भारवाली नथी.’ आ प्रमाणे विचार करीने तेणे पोतानी पुत्री तेने परणावी अने कहुं के ‘ तमारे आ मारी पुत्रीने विशेष मानवती करवी.’ तेथी तेणे पण तेने पढ़राणी करी.

एक दिवस चंडप्रद्योते एकांतमां अंगारवती राणीने पूछ्युं के ‘ तारो पिता स्वत सैन्यवालो छतां मने केवी रीते जीती शकयो ? ’ त्यारे अंगारवतीए कहुं के ‘ स्वासिन ! नागप्रासादमां रहेला एक मुनिए कहेला निमित्तना प्रभावथी मारा पितानो जय थयो.’ ते सांभली चंडप्रद्योत राजाए त्यां आवी ते मुनिने कहुं के ‘ हे नैमित्तिक मुनि ! हुं तमने वांदुंहुं.’ ए प्रमाणे मुनिरुं हास्य कर्युं. वरदत्त मुनिए विचार्युं के ‘ मैं क्यारे निमित्त कहेलुं छे ? ’ ए प्रमाणे विचारतां तेमणे जाय्युं के “ सत्य छे, त्रास पारीने अर्हीं आवेला/ वाल्कोने ‘ तमे वीवो नहि, तमारे भय नथी ’ ए प्रमाणे कहेवाथी मने निमित्तदोप छे.’ पछी तेनी आलोचना करी चारित्रने आराधीने ते मुनि सद्गतिना भाजन

ए प्रमाणे शुद्ध चारित्रवालाओए जरा पण गृहस्थोनो प्रसंग करवो नहि, एवो आ कथानो उपदेश छे:

सभ्मावो वीसंभो, नेहो रइवइयरो जुवइजणे ।

सयणघर्संपसारो, तवसीलिंवयाइ फेडीज्ञा ॥ ११४ ॥

अर्थ—“ सद्भाव के० स्त्रीनी आगळ हृदयनी वार्तानुं कहेवुं. विश्रंभ के० स्त्रीनो विश्वास, नेह के० स्त्रीनी साथे स्नेह करवो, रतिव्यतिकर के० कामकथानुं कहेवुं अने स्त्रीनी साथे स्वजन संबंधी घर एटले पोतानुं मंदिर तेनो संप्रसार एटले वारंवार आलोच्वुं-ए सर्वे वातो तप-छट अठमादि, शील-सदाचार अने व्रत ते मूलगुण तेनो नाश करेछे. ” ११४.

जोइस निमित्त अख्खर, कोउ आएस भूइकम्भेहिं ।

करणाणुमोअणाहिअ, साहुँस्स तवर्खओ होइ ॥ ११५ ॥

अर्थ—“ ज्योतिष शास्त्रानुं कहेवुं, निमित्त ते होरादिनुं कहेवुं, अक्षरोना अनुयोगनुं कहेवुं, कौतुक ते समस्यादिनुं कहेवुं, आदेश ते ‘आ वात आमज थशो’ एम कहेवुं अने भूतिकर्म ते मंत्रेली राख विगेरेनुं आपवुं-एटलां वानां पोते करवाथी वीजा पासे कराववाथी अने ते ते कार्य करनारनी अनुमोदना करवाथी साधुना तपनो क्षय थायछे; ऐ साधु एटलां वानां आचरता नथी. ” ११५.

जहजैह कीरइ संगो, तहत्तह पस्सरो खणेखणे होइ ।

थोर्वोवि होइ बहुओ, नैयं लहुइ धिंहिं निरुभतो ॥ ११६ ॥

अर्थ—“ जेम जेम गृहस्थनो संग मुनि करेछे तेम तेम क्षणे क्षणे तेनो प्रसार थायछे अर्थात् वधतो जाय छे; थोडो होय तो पण ते बहु थायछे; अने पछी ते मुनि गुरुखच्चने रोक्यो सतो पण धृति जे संतोष तेने पामतो नथी. ” ११६. माटे मुनिए गृहस्थनो प्रसंगज करवो नहीं.

जो चर्यैइ उत्तरेणुणे, मूलगुणेवि अचिंरेण सौ चर्यैइ ।

जहजैह कुण्ठै पर्मायं, पिलिज्जइ तहं कसाएहिं ॥ ११७ ॥

अर्थ—“ जे मुनि उत्तर गुण जे आहारशुद्धि विगेरे तेने तजे छे ते मुनि थोडा

गाथा ११४-फेडिझ्जा, गाथा ११५-कोइअयाएस. करणाणुमोअणेहिअ.

गाथा ११६-थोर्वोवि, धियं, धृतिं. गाथा ११७-पिलिज्जइ- प्रेयतै.

काळमांज मूळगुण जे प्राणातिपातविरमणादि तेने पण तजे छे-उत्तर गुणनो नाश थये सते मूळगुणनो नाश पण थायज छे. कारण के जेम जेम आ जीव प्रमाद-शिथिलता करेछे तेम तेम क्रोधादि कषाये करीने प्रेराय छे. ” ११७. एटले प्रथम शिथिलता थवाथी उत्तर गुणनी हानि थायछे, पछी कषायनो उद्भव थवाथी मूळगुणनी हानि थायछे; माटे उत्तर गुण पण तजवा नहि.

जो निच्छैएण गिन्हैइ, देहचाँएवि नर्य धिँइ मुअँइ ।

सो साँहैइ सक्कजं, जैह चंद्रवर्डिसओराँया ॥ ११८ ॥

अर्थ—“ जे प्राणी निश्चयवडे-स्थिरताए करीनै व्रत नियमादि ग्रहण करेछे अने देहत्यागे-प्राणांत कष्ट प्राप्त थये सते पण जे धैर्यने मूकता नथी अर्थात् ग्रहित अभिग्रहने तजता नथी ते प्राणी पोताना मुक्ति साधनरूप कार्यने साधेछे, जेम चंद्रावर्त-सक राजाए प्राणांत कष्ट उत्पन्न थये सते पण ग्रहण करेलो अभिग्रह तज्यो नहि तेम बीजाए पण प्रवर्त्तनुं. ” ११८. अहीं चंद्रावर्तसक राजानुं दृष्टांत जाण्वुं, ३५.

चंद्रावर्तसक राजानुं दृष्टांत.

साकेतपुर नगरमां चंद्रावर्तस नामनो राजा हतो. तेने सुदर्शना नामे राणी हती, ते राजा परम श्रावक हतो, अने समकितमूल श्रावकनां वार व्रतो सारी रीते पाल्तो सतो राज्य करतो हतो. एक दिवस सभा विसर्जन करी अंतःपुरमां ज़इ सामायक करी कायोत्सर्गमुद्राए मनमां एवुं धारीने स्थित थयो के ‘ज्यांसुधी आ दीवो वळे त्यांसुधी मारे कायोत्सर्ग मुद्राथी अहींज स्थिर रहेवुं.’ ए प्रमाणे पहेलो पहोर गयो. पछी दीवाने झांवो पडेलो जोइ राजाना अभिग्रहने नहि जाणती दासीए तेमां तेल पूर्यु. ए प्रमाणे वीजो पहोर गयो. एटले फरीने तेल पूर्यु. ए प्रमाणे तेल पूरवाथी चार पहोर सुधी अखंड दीवो वळयो; अने अखंड अभिग्रहवाला राजाए पण प्रातःकालमां दीवो ओलवाया पछी कायोत्सर्ग पार्यो. परंतु राजा घणो कोमळ होवाथी चार पहोर सुधी एक स्थाने स्थिति करवाने लीये घणी वेदना अनुभवी विशुद्ध ध्यानवडे काळ करी देवलो-कपां उत्पन्न थयो.

ए प्रमाणे अन्य मनुष्योए पण दृष्टा राखवी, एवो आ कथानो उपदेश छे.

सीउंएहखुँपिवासं, दुस्सज्जैपरिसहं किलेसं चै ।

जो सहै तस्स धम्मो, जो धिंझमं सा^१ तैवं चैरह ॥ ११९ ॥

अर्थ—“जे मुनि शीत परीसह, उषण परीसह, क्षुधा परीसह, पिपासा ते तृष्णा परीसह तथा दुष्ट शश्या ते तृष्ण संस्तारके तद्रूप परीसह अने कलेश ते लोचादि कायकष्ट—तेने सहन करेछे तेने चारित्रधर्म होयछे. जे पुरुष परीसह सहवामां धृतिमान कें० निश्चल चित्तवाला होयछे तेज तपने आचरेछे—आचरी शकेछे.” ११९.

**धर्म मिणं जाणंता, गिहिणोवि दद्ववेया किमुं अ साँहू ।
कमलामेलाहरणे, साँगंरचंदेण इत्थु वमा ॥ १२० ॥**

अर्थ—“आ जिनभाषित धर्मने जाणनारा—तेने सम्यग् प्रकारे समजनारा एवा गृहस्थ श्रावको पण द्वद्वतवाला—व्रत धारण करवामां दृढ होय छे, तो पछी साधु केम दृढ व्रतवाला न होय? होयज. अहीं कमलामेलाना संवंधमां आवेला सागरचंद्र कुमारनी उपमा अर्थात् तेनु दृष्टांत जाणुँ.” १२० अहीं सागरचंद्र कुमारनो संबंध जाणवो, इद्व सागरचंद्र कुमारनु दृष्टांत.

द्वारिका नगरीमां कृष्ण राजा राज्य करेछे. तेमने बलभद्र नामे मोटा भाइ छे, अने निषध नामे पुत्र छे. ते निषधने सागरचंद्र नामे कुमार छे. ते नगरीमां धनसेन श्रेष्ठीनी पुत्री कमलामेला नामे छे. तेने उग्रसेनना पुत्र नभसेन वेरे आपेली छे.

एकदा नभसेनने घेर नारद मुनि आव्या. ते वरवते नभसेने क्रीडामां व्यग्र चित्त होवाने लीघे तेमने आदर आप्यो नहि; तेथी अति क्रोधित थइ नारद मुनि त्यांथी उडीने सागरचंद्रने घेर आव्या. तेणे नारद मुनिनो विनय पूर्वक घणो आदरसत्कार कर्यो अने सिंहासन उपर वेसाडव्या. पछी सागरचंद्र तेमना पण धोइ हाथ जोडी उभो रहीने कहेवा लाग्यो के ‘हे स्वामिन! आपे जोयेलुं, अनुभवेलुं के जाणेलुं आश्र्यकारी कोइक कौतुक कहो.’ तेना विनयथी रंजित थयेला नारद मुनिए कहुं के “हे कुमार! पृथ्वीमां कौतुको तो घणा जोवायछे, पण कमलामेलानु रूप जे मैं जोयुंछे ते महा आश्र्यकारक छे. एना जेबुं रूप कोइ पण स्त्रीनु नथी. जेणे ए स्त्रीने जोड नथी ते माणसनो जन्मज वृथा छे, परंतु तेना मातापिताए तेने नभसेनने आपीने काच अने मणिनी पेटे तेनो अयोग्य संबंध कर्योछे.” ए प्रमाणे कहीं सागरचंद्रना मनमां प्रीति उत्पन्न करीने नारदमुनि कमलामेलाना रंदिरे आव्या. तेणे पण नारद मुनिनो अति सत्कार कर्यो अने पूछ्युं के ‘काइक आश्र्यकारी वार्ता कहो.’ त्यारे नारदे कहुं के ‘जेबुं आश्र्यकारक रूप सागरचंद्रनु छे तेबुं रूप आ पृथ्वीमां वीजा कोइ पुरुषनु नथी. तेना रूपनी उपमा भूमि उपर तो नथी. तेना रूपमां अने नभसेनना रूपमां मोटो तफावत छे.’ ए प्रमाणे कहीने नारद मुनि उत्पती गया.

गाथा १२०—आहरणे—दृष्टांते, इध्युवमा—अत्रोपमा,

हवे नारदनां वचनोर्थी कमलामेला सागरचंद्र उपर रागचाळी थइ; तेथी नभसेन प्रत्ये विरक्त मनवाली थइने विचार करवा लागी के 'एवं मारुं भाग्य क्यांथी होय के सागरचंद्रनी साथे मारो संवंध जोडाय. तेना विना मारुं यौवन तथा आ मारो देह वृथा छे.' ए प्रमाणे मननी अंदर सागरचंद्रनुं ध्यान करती रहेली छे. ते अवसरे नारदना मुख्यांशी कमलामेलानी प्रीति जेणे जाणेलीछे एवो सागरचंद्र पण ते वाळानुं ध्यान करतो सतो क्षणमात्र पण आनंद मेल्यांशी शकतो नथी. जेम धतुरानुं भक्षण करवाथी माणस चारे तरफ सुवर्ण जुएछे, तेम सागरचंद्र पण मोहवश थइने सर्वत्र कमलामेलानेज जुएछे, ते तेनामां तन्मय थइ गयोछे. कहुं छे के-

ग्रासादे सा दिशि दिशि च सा पृष्ठतः सा पुरस्सा
पर्यके सा पथि पथि च सा तदियोगातुरस्य ।
हंहो चेतः प्रकृतिरपरा नास्ति मे कापि सा सा
सा सा सा जगति सकले कोयमद्वैतवादः ॥

" कमलामेलाना वियोगथी आतुर थयेला सागरचंद्रने महेलमां, दरेक दिशामां पृष्ठे तेमज अग्र भागमां, शश्यामां तथा दरेक रस्तामां ज्यां जुएछे त्यां कमलामेलाज जोवामां आवेछे. अरे चित्त! ते वाळा माराथी जुदी छे, ते कांइ मारी (प्रकृति) नथी छतो जगतमां सर्वत्र तेज दृष्टिगत थायछे, तेथी आ अद्वैतवाद (एकरूपता) कया प्रकारनो छे ? " सागरचंद्र तेना विना आखुं जगत अंधकारमय मानवा लाग्यो. कहुंछे के-

सति प्रदीपे सत्यमौ, सत्सु नानामणिषु च ।
विनैकां मृगशावाक्षिं, तमोभूतमिंदं जगत् ॥

" दीवो छतां, अग्नि छतां अने विविध तरहेना मणिओ छतां मुगशिशुना नेत्र जेवा नेत्रवाळी ते वाळा विना सघळुं जगत अंधकारमय छे. " ते भ्रांतिथी सर्वत्र कमलामेलानेज जुएछे. भ्रांतिथी जोवामां आवेली ते वाळा प्रत्ये ' हे प्राणप्रिये ! मारी पासे आव, तारुं आलिंगन आप ' एम वोलता अने अनेक प्रकारनी चेष्टा करता—एवा तेने शांवकुमारे जोयो. तेथी तेणे पाछलथी आवी हास्यथी सागरचंद्रनी आंखो वंध करी, त्यारे सागरचंद्र वोल्यो के ' हुं जाणुरुं के तुं कमलामेला छे. तुं मारी आंखो शामाटे वंध करेछे ? तुं आवीने मारा खोल्यामां वेस तो वधारे सारु. ' ए सांभर्लीने शांवकुपीराने हसवुं आव्युं. ते वोल्यो के ' वत्स सागरचंद्र ! हुं कांइ कमलामेला नथी. हुं तो कम

मेलानो मेलाप करावनारो तारो काको छुँ. माटे आंखो उवाड अने सारी रीते जो. अहो! कामांधपणु केवुँ छे ! कहुँ छे के—

दिवा पश्यति न घूकः, काको नक्तं न पश्यति ।

अपूर्वः कोऽपि कामाधो, दिवा नक्तं न पश्यति ॥

“ घुबड दिवसे जोइ शकतो नथी, कागडो रात्रिए जोइ शकतो नथी, पण कामांध तो कोइ अपूर्व अंय छे के ते दिवसे तेमज रात्रिए—कोइ वरवत जोइ शकतो नथी. ” एटलुँ कहेतां सागरचन्द्रे काकाने जोया एटले ते तेना चरणमां पञ्चो; अने पोतानो अविनय खमावी छज्जा मूकीने बोल्यो के ‘हे तात ! आप बोल्याछो के हुँ कमलामेलानो मेलाप करावनार छुँ तो ते वात सत्य करो. सत्पुरुषो पोतानु बोलेहुँ पाळेछे. ’ कहुँ छे के—

जं भासंतेणवि सज्जणेण, जं भासियं सुहे वयणं ।

तव्यणसाहणत्थं, सप्तपुरिसा हुंति उज्जमिया ॥

“ बोलतां बोलतां सज्जनो पोताने मुखे जे वचन बोलेछे ते वचन साधवाने—सत्य करवाने माटे सत्पुरुषो उच्चमवं होयछे. ” बळी सत्पुरुषो परोपकार करवामां पण कुशल होयछे. कहुँछे के—

मनसि वचसि काये पुण्यपीयूषपूर्णा-

स्त्रिभुवनसुपकारश्रेणिभिः प्रीणयन्तः ।

परगुणपस्माणून् पर्वतीकृत्य नित्यं

निजहृदिविकसन्तः सन्ति सन्तः कियन्तः ॥

“ मन वचन अने कायामां पुण्यस्पी अमृतथी भरेला, अनेक प्रकारना उपकारोथी आखा त्रिभुवनने प्रसन्न करनारा अने हमेशां अन्यना परमाणु जेवा अल्प गुणोने पण पर्वत जेवा मोटा करीने स्वहृदयमां आनंद पामता एवा कोइकज सत्पुरुषा होयछे. ” ए कारणथी हे काका ! कमलामेलानो मेलाप मने करावो. ’

आ प्रमाणे सांभळीने शांवकुमारे ते वात कतुल करी. पछी पोतानी विद्याना बलधी कमलामेलाना घर मुधी सुरंग देवरावीने ते सुरंगद्वाराए कमलामेलानु हरण कर्यु अने द्वारिका नगरीना उद्यानमां आणी. पछी नारद मुनिने बोलावीने तेनी साक्षीए खुभ मुहूर्ते सागरचन्द्रनी साधे तेने परणावी. अहीं ते कन्याना मातपिताए कन्यानु हरण हुँ छे एम जाणी सर्वत्र तपास करी तो ते वनमां माळम पडी; एटले तेमणे कृष्णनी

आगळ फरियाद करी के 'हे स्वामिन ! आप समर्थ नाथ छतां हुं अनाथ हो एम जाणी मारी कन्या कोइएक विद्याधरे हरण करीने वनमां मूकीछे.' ते सांभलीं सैन्य सहित देवकीपुत्र (कृष्ण) त्यां आव्या. तेने आवतां जोइ नारदनी साथे शां सन्मुख आवी पिताना पगमां पड्यो अने सर्व हकीकत जणावी. 'पोताना पुत्रुं अ कृत्य छे' एम जाणी कृष्ण मौन थइने उभा रहा. पछी सागरचंद्रे आवी नभसेन चरणमां पडी तेने खमाव्यो, पण नभसेने तेने खमाव्यो नहि.

हवे सागरचंद्रे कमलामेलानी साथे विषयसुख भोगवतां केटलोक काळ व्यतीत कर्यो पछी एक दिवस भगवान नेमि प्रभुनी देशना सांभलीने तेणे श्रावकनां बार व्रतो अंगीं कार कर्या. दररोज स्वव्रतत्तुं पालन करता सता एक वर्खत श्रावकनी पडिमातुं वर्ख करतां ते स्मशानभूमिमां जइने कायोत्सर्गे रहो. ते वर्खते नभसेन जे हमेशा तेमुं छब्ब शोधतो हतो ते सागरचंद्रने स्मशानमां कायोत्सर्गे रहेलो जोइने विचार करवा लायो के 'आजे वर्खत वरावर मळ्यो छे, तेथी मारी कमलामेलाना भोक्ता सागरचंद्रने आजे मृत्यु पमाङुं.' ए प्रमाणे विचारीने तेना माथा उपर माटीनी पाळ बांधीने तेमां धगध गता खेस्ना अंगारा भरी ते अन्यत्र चाल्यो गयो. अहीं तेनी वेदनाने सम्यग् भावे सहन करतो निश्चल मनवालो सागरचंद्र शुभध्यानथी मृत्यु पामीने स्वर्गे गयो.

आ प्रमाणे श्रावके पण आवा उपसर्गो सहन कर्याछे तो साधुए तो विशेषे करी सहन करवा जोइए, एवो आ कथानो उपदेश छे.

"देवेहिं कामदेवो, गिंहीवि नवि चाँलिओ तवयुणेहिं।

मत्तगर्यदं भुयंगम, रख्खसघोरदृहासेहिं ॥ १२१ ॥

अर्थ—“ कामदेव नामना गृहस्थ श्रावकने पण तप गुणथी मदोन्मत्त हस्ती सर्प अने राक्षसना भयंकर अदृहास विगरेथी देवता चलावी शक्यो नहि.” अर्थात् देवकृत भयंकर उपसर्गथी कामदेव श्रावक छतां पण चब्यो नहि तो मुनि तो शेनाज चले ? आ दृष्टां वीजा मुनि अने श्रावकोए ग्रहण करवुं. अहीं कामदेव श्रावकनो सर्वंध ज्ञाणवो. ३७

कामदेव श्रावकनुं वृत्तांत.

चंपा नामनी मोटी नगरीमां जितशत्रु नामे राजा राज्य करतो हतो. ते नगरीमां कामदेव नामे गाथापति (व्यापारी) वसतो हतो, ते वहु धनधान्यथी समुद्धिवान हतो. तेने भद्रा नामे खीं हती. तेणे एक दिवस महावीर स्वामीनी देशना सांभली. भगवाने प्रथम समक्षितत्तुं स्वस्त्रप निरूपण कर्यु. तेमां जणाव्युं के दर्शन-

मोहनीय कर्मना उपशमादिकथी अरिहंते कहेला जीवादि तत्त्वोमां सम्यग् श्रद्धा न थवी ते सम्यक्त्व जाणवुँः अथवा आत्माना शुभ परिणाम एटले ज्ञान दर्शन चारित्र रूप त्रण तत्त्वोना अध्यवसाय ते सम्यक्त्व जाणवुँ. कहुँ छे के—

अरिहं देवो गुरुणो, सुसाहुणो जिणमयं महप्पमाणं ।
इच्चाइ सुहो भावो, सम्मतं विंति जगगुरुणो ॥

“ अरिहंत देव, सुसाहु गुरु अने जिनमत ए मारे प्रमाण छे, इत्यादि शुद्ध भावने जगत्गुरुओ समकित कहेछे. ” अहंतर्धर्मनुं मूळ समकित छे. कहुँ छे के ‘ श्राव-कना वार व्रतना तेरसें चोराशी क्रोड, वार लाख, सत्तावीश हजार, वसो ने बे भांगा थायछे; ए सर्व भांगाओंमा समकित पहेलो भांगो छे. समकित विना वीजा एक पण भांगानो संभव नयी. कहुँछे के—

मूलं दारं पङ्गठणं, आहारे भायणं निही ।
दुछक साविधम्मस्स सम्मतं परिकित्तियं ॥

“ दुछक केंद्र वार प्रकारना श्रावकधर्मनुं मूल, द्वार, प्रतिष्ठान, आधार, भाजन अने निधि सम्यक्त्व कहेलुँ छे. ”

सम्यक्त्वनुं फळ आ प्रमाणे—

अंतोमुहुत्तमित्तिंपि, फासिअं हुज जेहिं सम्मतं ।
तेसिं अवहृपुग्गल, परिअट्टो चेव संसारो ॥ १ ॥
जं सकइ तं कीरई, जं नसकइ तयंमि सद्दहणा ।
सद्दहमाणो जीवो, वचइ अयरामरं ठाणं ॥ २ ॥

“ अंतर्मुहूर्त मात्र पण जे जीवने समकित फरस्युँ होय तेने अर्ध युद्गळपरावर्तज संसार रहेछे—वधारे रहेतो नयी. व्रतादि जे कांड वनी शके ते कंखुं अने जे न वनी शके तेमां श्रद्धा राखवी. ए प्रमाणे सर्दैहनारो जीव पण अजरामर स्थानकने पामेछे. ” माटे समकित मूळ रूप व्रतो समकित सहित सारी रीते आराध्यां होय तो आलोकमां ने परलोकमां वहु फळदायी थायछे. ”

आ प्रमाणे भगवाननी देशना सांभर्णीने परम संवेग जेने प्राप्त थयेल छे एवो काम-देव शेठ समकितना उच्चार पूर्वक वार व्रतधारी थयो, अने जीवाजीवादि तत्त्वनो जाणथड़ गारी रीते श्रावकधर्मने पालवा लाग्यो.

आगळ फसियाद करी के 'हे स्वामिन् ! आप संपर्क नाथ छतां हुं अनाथ होइ एम जाणी मारी कन्या कोइएक विद्याधरे हरण करीने वनमां मूकीछे.' ते सांभळीने सैन्य सहित देवकीपुत्र (कृष्ण) त्यां आव्या. तेने आवतां जोइ नारदनी साथे शांव सन्मुख आवी पिताना पगमां पड्यो अने सर्व हकीकत जणावी. 'पोताना पुत्रुं आ कृत्य छे' एम जाणी कृष्ण मौन थइने उभा रहा. पछी सागरचंद्रे आवी नभसेनना चरणमां पटी तेने खमाव्यो, पण नभसेने तेने खमाव्यो नहि.

हवे सागरचंद्रे कमलामेलानी साथे विषयसुख भोगवतां केटलोक काळ व्यतीत कर्यों पछी एक दिवस भगवान नेमि प्रभुनी देशना सांभळीने तेणे श्रावकनां बार ब्रतो अंगी-कार कर्या. दररोज स्वव्रततुं पालन करता सता एक वरवत श्रावकनी पडिमातुं वहन करतां ते स्मशानभूमियां जइने कायोत्सर्गे रह्यो. ते वरवते नभसेन जे हमेशा तेँ छल शोधतो हतो ते सागरचंद्रने स्मशानमां कायोत्सर्गे रहेलो जोइने विचार करवा लायो के 'आजे वरवत वरावर मळ्यो छे, तेथी मारी कमलामेलाना भोक्ता सागरचंद्रने आजे मृत्यु पमाहुं.' ए प्रमाणे विचारीने तेना माथा उपर माटीनी पाळ वांधीने तेमां धार्थ गता खेरना अंगारा भरी ते अन्यत्र चाल्यो गयो. अहीं तेनी वेदनाने सम्यग् भावे सहन करतो निश्चल मनवालो सागरचंद्र शुभध्यानथी मृत्यु पारीने स्वर्गे गयो.

आ प्रमाणे श्रावके पण आवा उपसर्गे सहन कर्याछे तो साथुए तो विशेषे करी सहन करवा जोइए, एवो आ कथानो उपदेश छे.

'देवेहिं कामदेवो, गिहीवि नवि चाँलिओ तवयुणेहिं।

मत्तगर्यद भुयंगम, रख्खसघोरट्टहासेहिं ॥ १२१ ॥

अर्थ—“ कामदेव नामना गृहस्थ श्रावकने पण तप गुणथी मदोन्मत्त हस्ती सर्प ने राक्षसना भयंकर अट्टहास विग्रेथी देवता चलावी शक्यो नहि.” अर्थात् देवकृत यंकर उपसर्गथी कामदेव श्रावक छतां पण चब्यो नहि तो मुनि तो शेनाज चले ? आ घ्रांत वीजा मुनि अने श्रावकोए ग्रहण करवुं. अहीं कामदेव श्रावकनो संबंध ज्ञानवो. ३७

कामदेव श्रावकनुं वृत्तांत.

चंपा नामनी मोटी नगरीमां जितशानु नामे राजा राज्य करतो हतो. ते नग तेमां कामदेव नामे गाथापति (व्यापारी) वसतो हतो, ते वहु धनधान्यर्थी नमृद्धिवान हतो. तेने भद्रा नामे स्त्री हती. तेणे एक दिवस महावीर स्वामीनी देशना गांभळी. भगवाने प्रथम सपाक्रिततुं स्वरूप निरूपण कर्यु. तेमां ज्ञानव्यं के दर्शा-

मोहनीय कर्मना उपशमादिकथी अरिहंते कहेला जीवादि तत्त्वोमां सम्यग् श्रद्धा न थवी ते सम्यक्त्व जाणवुः अथवा आत्माना शुभ परिणाम एटले ज्ञान दर्शन चारित्र रूप ब्रण तत्त्वोना अध्यवसाय ते सम्यक्त्व जाणवुः कहुँ छे के—

अरिहं देवो गुरुणो, सुसाहुणो जिणमयं महाप्पमाणं ।

इच्चाइ सुहो भावो, सम्मतं विंति जगयुरुणो ॥

“ अरिहंत देव, सुसाहु गुरु अने निनमत ए मारे प्रमाण छे, इत्यादि शुद्ध भावने जगत्गुरुओ समकित कहेछे. ” अहंतर्धर्मनुं मूळ समकित छे. कहुँ छे के ‘ श्राव-कना वार व्रतना तेरसें चोराची क्रोड, वार लाख, सत्तावीश हजार, वसो ने वे भांगा थायछे; ए सर्व भांगाओमा समकित पहेलो भांगो छे. समकित विना वीजा एक पण भांगानो संभव नथी. कहुँछे के—

मूलं दारं पङ्गाणं, आहारे भायणं निही ।

दुष्क क साविधमस्स सम्मतं परिकितियं ॥

“ दुष्क के० वार प्रकारना श्रावकधर्मनुं मूळ, द्वार, प्रतिष्ठान, आधार, भाजन अने निधि सम्यक्त्व कहेलुँ छे. ”

सम्यक्त्वनुं फळ आ प्रमाणे—

अंतोमुहुत्तमित्तंपि, फासिअं हुज जेहिं सम्मतं ।

तेसिं अवह्वपुग्गल, परिअद्वो चेव संसारो ॥ १ ॥

जं सकइ तं कीरई, जं नसकइ तयंमि सद्हणा ।

सद्हमाणो जीवो, वचइ अयरामरं ठाणं ॥ २ ॥

“ अंतमुहूर्त मात्र पण जे जीवने समकित फरस्युं होय तेने अर्थ युद्गळपरावर्तज संसार रहेछे—वथारे रहेतो नथी. व्रतादि जे कांड वनी शके ते कंरवुँ अने जे न वनी शके तेमां श्रद्धा राखवी. ए प्रमाणे सद्हनारो जीव पण अजरामर स्थानकने पामेछे. ” माटे समकित मूळ रूप व्रतो समकित सहित सारी रीते आराध्यां होय तो आलोकमां ने परलोकमां वहु फळदायी थायछे. ”

आ प्रमाणे भगवाननी देशना सांभर्लीने परम संबेग जेने प्राप्त थयेल छे एको काम-शेष समकितना उच्चार पूर्वक वार व्रतधारी थयो, अने जीवाजीवादि तत्त्वनो जाणथड री रीते श्रावकधर्मने पालवा लाग्यो.

एक दिवस सौधर्ष ईद्रे तेनां वखाण कर्या के ' कामदेव श्रावक दृढधर्मी हे. देवो पण तेने धर्मर्थी चलाववाने समर्थ नथी. अरे शुं तेतुं धैर्य हे !' ए प्रमाणे कामदेवनी वहु प्रशंसा साभर्णी कोइ एक मिथ्यादृष्टि देव देवेन्द्रनी वाणी अन्यथा करवाने माटे कामदेव पासे आव्यो. ते अवसरे कामदेव पोसह करी पौषधशाळामां कायोत्सर्गमुद्राए रहो हतो. पेलो देव मध्य रात्रिए भयंकर राक्षसतुं रूप ग्रहण करी हाथमां यमनी जिह्वा जेवुं खड्ड लङ्ग पादप्रहारथी भूमिने कंपावतो, मुख पहोलुं करी अहृहास करतो कामदेवनी पासे आव्यो अने बोल्यो के ' आ पञ्चखत्वाणने तुं छोडी दे अने आ कायोत्सर्गमुद्रानो त्याग कर, नहितो आ खड्डवडे तारा ढुकडे ढुकडा करी नाखीश, जेथी तुं आर्तध्यानथी अकाळे मृत्यु पार्मीश.' ए प्रमाणे वारंवार कहतां छतां कामदेव ध्यानथी चलित थयो नहि. पछी क्रोध उत्पन्न थवाथी ते देवे खड्डवडे कामदेवतुं शरीर छेद्युं, जेथी तेने घणी वेदना थवा लागी, पण ते ध्यानथी क्षोभ पाम्यो नहि. पछी देवे पर्वत जेवुं मोडुं हाथीतुं रूप विकुर्व्यु, अने शुंदने उछाळतो भयंकर हस्तीने रूपे कामदेव प्रत्ये बोल्यो के ' हे कामदेव ! आ व्रतोने छोडी दे अने आ कायोत्सर्गमुद्रानो त्याग कर, नहितो आ शुंद वडे तने उपाडी, भूमि उपर पछाडी दंतप्रहारथी तने हुंदी नाखीश.' आ प्रमाणे कहेतां छतां पण ते ध्यानथी चलित थयो नहि. त्यारे तेने शुंदवडे उच्चे उछाळीने पृथ्वी उपर पछाड्यो अने दंतप्रहारथी वींधी नाख्यो; छतां ते जरा पण क्षोभ पाम्यो नहि अने मनमां विचार करवा लाग्यो के-

सर्वेभ्योऽपि प्रियाः प्राणास्तेऽपि यांत्वधुनापि हि ।
न युनः स्वीकृतं धर्मं, संडयाम्यत्प्रमप्यहम् ॥

" सर्व वस्तु करतां प्राण वहाला होयले परंतु ते पण हमणा भले जाओ, पण स्वीकृत करेला धर्मने हुं अंशमात्र पण खंडित करीश नहि. " पछी ते देव त्रीजी वखत महा भयंकर, मुशळ जेवी जेनी काया हे, काजळ जेवो जेनो वर्ण हे, फणना आंडवरथी जे सूशोभित हे, जेनी वे जिह्वा लपलपायमान थइ रहेली हे अने जेना दर्शनमात्रथीज कायर मनुप्यना प्राण नाश पामेले-एवा तीव्र विषवाळा सर्पतुं रूप विकुर्वीं कामदेव प्रत्ये बोल्यो के ' तुं ग्रहण करेला व्रतनो त्याग कर, नहितो मारी दाढना विषबडे अकाळे मृत्यु पार्मीश.' ए प्रमाणे कदा छतां पण ते विलकुल भयाकुल थयो नहि अने मनमां विचार करवा लाग्यो के ' मारां व्रतोमां जरा पण अतीचार..मने लागो नहि. स्वल्प अतीचारथी पण मोटो दोप उद्भवे हे. कहुं हे के-

अत्यत्पादप्यतीचाराद्, धर्मस्यासारतैव हि ।
अंध्रिकंटकमात्रेण, पुमान्पंगूयते न किम् ॥

“ अतिअल्प अंतीचारथी पण धर्मनी निःसारता थइ जायछे. पगमां मात्र कांटो वागवाथी शुं पुरुष लंगडो थतो नथी ! ” थायछे. ए प्रमाणे निश्चय आत्मावाळो तेने जाणीने सर्परूप देव तेने डस्यो. अत्यंत दुःख उत्पन्न करनारा ते दंशथी कामदेवतुं शरीर कालज्वरथी जाणे पीडायलुं होय तेवुं थइ गयुं अने तेने घणी वेदना थवा लागी, पण ते ध्यानथी चलित थयो नहि. ते मनमां विचार करवा लाय्यो के—

खंडनायां तु धर्मस्यानंतैरपि भ्रैर्भ्रैः ।

दुःखांतो भविता नैव, उणस्तत्र च कश्चन ॥

“ धर्मतुं खंडन करवाथी अनंता भवो भमतां पण दुःखनो अंत आवतो नथी अने तेमां कोइ जातनो लाभ तो छेज नहि. ”

दुखं तु दुष्कृताज्ञातं, तस्यैव क्षयतः क्षयेत् ।

सुकृतात्तक्षयश्च स्यात्, तत्स्मिन् सुहृदो न कः ॥

“ दुःख दुःकृतथी उत्पन्न थायछे अने दुःकृतनो क्षय करवाथी तेनो क्षय थायछे; दुःकृतनो क्षय सुकृतथी थायछे, त्यारे ते सुकृतमां कोण प्राणी सुदृढ न होय ? ” ए प्रमाणे कामदेवने शुभध्यानपरायण जाणी देवे पोतातुं स्वरूप प्रगट कर्युं अने तेने सारी रीते खमाव्यो. पछी ते कहेवा लाय्यो के “ हे कामदेव ! तने धन्य छे, तुं पुण्यशाळी छे अने तें जीविततुं फल मेळब्युं छे. सौर्धर्म देवलोकमां इंद्रे तारी प्रशंसा करी. ते शब्दो उपर मने श्रद्धा न आववाथी हुं अहीं तारी परीक्षा करवाने माटे आव्यो हतो, परंतु जे प्रमाणे इंद्रे तारी प्रशंसा करी हती ते प्रमाणेज में मारी नजरे जोयुंछे. ” आ प्रमाणे कही स्तुति कर्निने ते देव पोताने स्थानके गयो.

प्रातःकाळे कायोत्सर्गने पारी कामदेव श्रावक समवसरणमां भगवानने वांदवा गयो. त्यां तेने भगवंते कह्युं के ‘ हे कामदेव ! आज मध्यरात्रिए कोइ देवे तने त्रण उपसर्ग कर्या ए वात खरी छे ? ’ कामदेवे कह्युं के ‘ हे स्वामी ! ते वात खरी छे. पछी भगवाने सर्व साधुओ अने साध्वीओने बोलावीने कह्युं के “ हे देवानुप्रियो ! ज्यारे आ कामदेव श्रावकधर्ममां रहेतो सतो पण देवोए कहेला उपसर्गोने सहन करेले तो श्रुतना जाण साधुओए तो ते म्यक् प्रकारे सहन करवाज जोइए. ” आ प्रमाणेलुं भगवानतुं वाक्य विनय पूर्वक घला साधु साध्वीए सांभव्ययुं अने अंगीकार कर्युं.

आ कामदेव धन्यात्मा छे के जे कामदेवनी भगवाने पोताना मुखे प्रशंसा करी,
कहुँ छे के-

**धण्णा ते जिअलोए, गुरवो निवसन्ति जस्स हिययंमि ।
धन्नाण वि सो धन्नो, गुरुणहियए वसई जो ऊ ॥**

“आ जीवलोकमां ते पुरुष धन्य छे के जेना हृदयमां गुरुमहाराज वसेछे, अने
ते तो धन्यमां पण धन्य छे के जे गुरुमहाराजना हृदयमां वसेछे.”

आ प्रमाणे लोकोथी स्तुति करातो कामदेव भगवानने बांदी पोताने घेर आव्यो.
पछी तेणे श्रावकोनी दर्शन आदि अग्यार प्रतिमाओने सारी रीते आराधी अने वीश
वर्ष सुधी श्रावकपर्याय पाठी छेवटे एक मासनी संलेखणावडे सारी रीते सर्व पापनी
आलोचना प्रतिक्रमणा करीने काळ मासे काळ करी सौधर्म नामना देवलोकमां अरु-
णाभ नामना विमानमां चार पल्योपमना आयुष्यवालो देव थयो. त्यांथी च्यबीने महा-
विदेहमां सिद्धिपदने पामशे.

जेवी रीते कामदेवे श्रावक छतां पण भयंकर उपसर्गो सहन कर्या तेवी रीते
मोक्षार्थीं सावृओए पण उपसर्गों सहन करवा, एवो आ कथानो उपदेश छे.

भोगे अँभुंजमाणावि, कैइ मोहाँ पैडंति अँहर गइ ।

कुंविओ औंहारथी, जंत्ताइजनणस्स दैंमगुव्व ॥ १२२ ॥

अर्थ—“केटलाक प्राणीओ भोगने भोगव्या विना तेनी इच्छा करता सता पण
मोह ने अज्ञान, तेथकी अधोगति-नरकतिर्यच गतिमा पडेछे. कोनी जेम ? यात्राए-उजाणी
अर्थे वनमां गयेला लोकोनी उपर (आहार न आपवार्थी) कोपायमान थयेला आहारना
अर्थी द्रुमक एट्ले भिक्षुकनी जेम.” १२२

मनवडे दुर्ध्यान चितववाथी जेम तेणे दुगार्तिरूप फळ प्राप्त कर्यु तेम वीजा पण
प्राप्त करेछे. अहीं ते द्रुमकनो संवंध जाणवो. ३८.

द्रुमकनुं दृष्टांत.

राजगृह नगरने विपे कोइ एक उत्सवमां सर्व लोको वैभारगिरि उपर उजाणीए
गया हता. ते वस्ते कोइ एक भिक्षुक भोजननी इच्छाधी नगरमां भमतां भोजन नाहि
मळवार्थी वनमां आव्यो. त्यां पण ते सर्वत्र भट्टक्यो, पण अंतराय कर्मना उद्ययी तेने
कोइए भिक्षा आपी नाहि; तेथी ते सर्वनी उपर गुस्से थइ विचारवा लाग्यो के “ अे !

आ नगरना लोको अति दुष्ट छे. कारणके तेओ खायछे, पीएछे, इच्छा मुजब भोजन करेछे, परंतु मने जरा पण खावानुं आपता नथी; तेथी हुं वैभारगिरि उपर चढी मोटी शिला गवडावीने आ सर्व दुष्टोने चूर्ण करी नांखुं.” ए प्रमाणे विचार करतो रौद्र ध्यानथी वैभारगिरि उपर चढ्यो अने त्यांथी एक मोटी शिला गवडावी. ते शिलाने पडती जोइ सर्वे लोको नासी दूर गया. परंतु तेज भिक्षुक दुर्भाग्यने लीधे ते गवडती शिलानी नीचे आवी गयो अने तेना भारथी दवाइ जइ तेनुं बाबुं शरीर चूर्ण थइ गयुं; जेथी ते रौद्र ध्यानवडे मृत्यु पासी सातमी नरके गयो. अहो ! मननो व्यापार केवो वलवान छे ! कहुं छे के-

मनोयोगोबलीयांश्च भाषितो भगवन्मते ।

यः सप्तमीं क्षणाद्देन नयेदा मोक्षमेव च ॥

“ सर्व योगोमां मननो योग वलवान छे, ए प्रमाणे भगवाने कहुं छे. कारणके ते मननो योग अर्ध क्षणमां सातमी नरके लइ जायछे अथवा मोक्षे पण लइ जायछे.” वर्णा—

मन एव मनुष्याणां, कारणं बंधमोक्षयोः ।

यथैवालिंग्यते भार्या, तथैवालिंग्यते स्वसा ॥

“ मनुष्योने वंध तथा मोक्षनुं कारण मनज छे. कारणके जेवी रीते भार्यानुं आळिंगन करायछे तेवीज रीते (मलती वखते) वेनने पण आळिंगन करायछे.” (परंतु तेमां मनना विचारनोज तफावत छे).

एवी रीते जेम ते भिक्षुके रौद्र ध्यानथी नरकनुं दुःख मेल्च्युं तेवीज रीते अन्य पण नरकनुं दुःख मेल्वेछे. माटे मनथी पण भोगनी इच्छा न करवी, एवो आ कथानो उपदेश छे.

भवसयसहैस्सदुलहे, जाइजरामरणं सागरुत्तारे ।

जिणवँयण्मि गुणांयर, खणांमवि माकाँहिसि पर्माँयं ॥ १२३ ॥

अर्थ—‘हे गुणाकर ! लाखो भवे पण पामवा दुर्लभ अने जन्म जरा मरण स्वप्न समुद्रथी पार उत्तारनार एवा जिन वचनने विषे क्षणमात्र पण प्रमाद न करीश.’ १२३. अर्थात् प्रमाद तजीने जिनवचन आराधवा योग्य छे.

जं नै लहैङ्ग सम्मत्तं, लद्धणौवि जं नै एङ्ग सर्वेंगं ।

विसर्यंसुहेसु यं रज्जइ, सौ॑१३ दोसो॑१५ रागदोसाणं ॥ १२४ ॥

अर्थ—“आ जीव जे सम्यक्तने पामतो नथी, सम्यक्त पाम्या छतां पण जे संवेगने पामतो नथी अने विषयसुख जे शब्दादि तेने विषे जे रक्त थायछे ते सर्वे रागद्रेष्णोज दोष छे.” १२४. तेथी दोषना हेतु एवा रागद्रेष्ण तजवा योग्य छे. अहीं संवेग ने वैराग्य-संसारथी उदासी भाव ने मोक्षनो अभिलाष समजवाब.

तौ बहुगुणनासाणं, सम्मत चरित्तं गुणविणासाणं ।

नै हुं वसै मागंतव्वं, रागदोसाणं पावाणं ॥ १२५ ॥

अर्थ—“ते माटे वहु गुणनो नाश करनार अने सम्यक्त ते शुद्ध श्रद्धान, चारित्र ते पंचाश्रवनिरोध अने गुण ते उत्तरगुण तेनो विनाश करनार एवा रागद्रेष्ण रूप जे पाप तेने वश निश्चे न आवतुं.” १२५.

नैवि तं कुण्ड आमित्तो, सुङ्कुवि सुंविराहिओ समथोवि^{१०} ।

जं दोऽवि अणिंग्गहिया, कर्त्तं रंगोअ दोसोऽमि ॥ १२६ ॥

अर्थ—“जेवो अनर्थ निग्रह नहि करेला—नहि रोकेला एवा राग अने द्वेष ए वने करेछे तेवो अनर्थ अतिशय सारी रीते विराधेलो अने समर्थ एवो पण अमित्र जे शत्रु ते करी शकतो नथी.” १२६. अर्थात् शत्रु तो विराध्यो सतो एक भवमां मरण आपे पण रागद्रेष्ण तो अनंता जन्ममरण आपे माटे रागद्रेष्ण तजवा योग्यछे.

इंहलोए औयासं अँजसं चै करंति गुणविणासं चै ।

पसंवंति पर्लोए सारीरमणोगए दुःख्वे ॥ १२७ ॥

अर्थ—“रागद्रेष्णनां फल कहेछे—आ लोकमां आयास कें० शरीर ने मन संवंधी क्षेत्र तथा अप्यश अने गुण ते ज्ञान दर्शन चारित्र तेनो विनाश करेछे अने परलोकमां शरीर संवंधी ने मन संवंधी दुःखो प्रसवेछे—आपेछे. अर्थात् रागद्रेष्ण नरकतिर्थंच गतिना आपनार होवायी तेमज अनर्थमूळक होवायी परलोकमां पण अनेक प्रकारनां दुःखो प्राप्त थायछे.” १२७

छिछ्दि अहो अँकज्जं, जं जाणंतोवि रँगदोसेहिं ।

फल मँउलं कडुअरसं, तंचेवं निसेवं जीवो^{११} ॥ १२८ ॥

अर्थ—“अहो महा आश्र्वकारी आ अकार्य छे ! धिक्कार छे, धिक्कार छे आ जीवने ! के जे आ रागद्रेष्णने (महा अनर्थकारी छे एम) जाणतो सतो अने तेनां फल

(विपाक) अतुल (विस्तीर्ण) अने अति कडवां छे एम पण जाणतो सतो तेनेज ते राग-द्रेष्टनेज अथवा तेना फळने जीव (अमृतरसनी बुद्धिए) फरी फरीने सेवे छे. ” १२८ तेथी आ संसारवासी जीवोने धिक्कार छे !

को हुरकं पाँविजा, कर्सवि सुख्खेहिं विहींओ हुंजा ।

को^{१९} नैवि लभिंश्च मुख्खं, रागदोसां जैङ्ग नै हुंजा ॥ १२९ ॥

अर्थ—“ जो रागद्रेष न होत तो कोण दुःख पामत ? कोने सुखे करीने विस्मय थात ? (के अहो आ महासुखी छे) अने कोण जीव मोक्ष न पामत ? अर्थात् सर्वे जीवो मोक्षे जात. ” १२९

माणी गुरुपीडेणीओ, अणध्थैभरिओ अमग्गचारिय ।

मौहं किलेसंजालं, सौ खाइ जहेवं गोसालं ॥ १३० ॥

अर्थ—“ जे शिष्य मानी (अहंकारी), गुरुनो प्रत्यनिक (गुरुना अपवाद-बोलनारो), पोताना अशुद्ध स्वभावथीज अनर्थनो भरेलो अने उत्सुत्र प्रसृपणास्त्रप उन्मार्गे—अमार्गे चालनारो होय ते शिष्य फोगट अनेक प्रकारना क्लेश (शिरोमुंडन संयमादि) समूहने भोगवेछे. अर्थात् निष्फल तप संयमादि कष्टने सहन करेछे. गोसाळानी जेम. ” १३०

भगवंतना शिष्याभास गोसाळे जेम फोगट तप संयमादि कष्ट भोगव्युं, उपर जणावेला दोषवालो होवाथी तेने तप संयमादितुं कांइ पण फळ प्राप्त थयुं नहीं, तेम समजवृं.

कलहैण कोहणसीलो, भंडणसीलो विवायसीलो यै ।

जीवो निच्छुज्जर्जलिओ, निरथ्थयं संर्यमं चरं ॥ १३१ ॥

अर्थ—“ जे जीव कळह करवाना स्वभाववालो होय, क्रोध करवाना स्वभाववालो होय, भंडन करवाना स्वभाववालो होय अने विवाद करवाना स्वभाववालो होय ते नित्य प्रज्वलित रहेछे तेथी ते निरथक चारित्रने आचेर छे. ” १३१ अर्थात् क्रोध थी चारित्रनो विनाश थायले अने आ वधा क्रोधनाज प्रकारछे, तेथी क्रोधने तजीने चारित्र पाळवृं तेज श्रेयकारी छे.

परस्पर राडो पाढ़ीने बोलवुं ते कळह समजवो. पारका गुणने सहन न करी शकवानो ते स्वभाव ते क्रोधनशील समजवो, यष्टि मुष्टि विगेरेथी युद्ध करवानो जे स्वभाव ते भंडनशील जाणवो अने वचनवडे वादविवाद करवो ते विवादशील जाणवो.

जैंह वणदेवो वैण, दवदवस्सै जलिओ खणेण निहहई ।

एँवं कसायर्परिणओ, जीवो तवं संजमं दहैँ ॥ १३२ ॥

अर्थ—“जेम वनमां लागेलो दावानंळ उतावळो उतावळो ज्वलित थइने क्षण मात्रमां आखा वनने वाळी नाखेछे तेम कपायपरिणत (कंघाय परिणामे वर्ततो) जीव तपसंयमने पण शीघ्र वाळे छे-नाश पमाडेछे. ” १३२. तेथी समताज चारित्र्यमनुमूळछे एम समजवुं.

परिणामैवसेण पुणो, अहिंओ ऊणयरुउ वँ हुज्जै ख्वओ ।

तह्विव ववहार्मित्तेण, भन्नैङ्ग इमं जहौँ थूलं ॥ १३३ ॥

अर्थ—“वळी परिणामने वशे एटले जेवा जेवा परिणाम थाय ते प्रमाणे अधिको अथवा ओळो तपसंयमनो क्षय थाय छे, तथापि व्यवहार मात्रे करीने आ कहेवायछे के जेम स्थूळ क्षय थायछे. ” १३३. परंतु ते व्यवहारनयनु वचन समजवुं. निश्चयनये तो कपायना तीव्रतर परिणामे करीने चारित्र्यनो तीव्रतर क्षय थायछे अने मंद परिणामे मंद क्षय थायछे. तेथी जेवा जेवा परिणाम ते अनुसारे क्षय थायछे एम जाणवुं.

फरुसवंयणेण दिण्तवं, अहिस्खवंतो हण्डै मासंतवं ।

वरिसंतवं सवमाणो, हण्डै हण्ठंतो अं सांमन्नं ॥ १३४ ॥

अर्थ—“कठण वचन कहेवाथी—गाळ देवा विगेरेथी ते दिवसना करेला तप संयमादि पुण्यने हणेछे (क्षय पमाडेछे), अधिकेप एटले अत्यंत क्रोध करीने जाति कुळ मर्मादि प्रकाशतो सतो महिनाना तपसंयमनो क्षय करेछे, ‘तारुं आयुं अश्रेय थशे’ एम शाप देतो सतो वर्ष पर्यंतना तपसंयमने हणेछे अने यष्टि खडगादि वडे परनो घात करतो सतो जन्म पर्यंतना श्रामण्यने (श्रमणपणाने) हणेछे. ” १३४.

आ वथा व्यवहारिक वचनो समजवां.

अह जीविअं निकिंतइ, हंतूण र्यं संजमं भंलं चिण्डै ।

जीवो पमायवहुलो, परिभैमइ जेणं संसारे ॥ १३५ ॥

अर्थ—“अथ एटले कषायनां फल कहांथी अनंतर प्रमादनां फल कहेछे—प्रमाद वहुल एटले वहु प्रमादवाळो (प्रमादपरवश) संसारी जीव संयम रूपी जीवितने हणेछे अने संयमने हणीने पापकर्म रूप मळने पुष्ट करेछे, जेणे करीने ते संसारमां परिभ्रमण करेछे.” १३५. तेथी प्रमादने परिहरवा—त्यजवा.

अहीं संयमना—पांच आश्रवनो त्याग, पांच इंद्रियोनो निग्रह, चार कषायनो जय अने त्रणदंडनी विरति रूप सत्तरभेद समजवा.

अकोसण तज्जण ताडणा, अवमाण हीलणाओ अं ।

मुणिणो मुणियंपरभवा, दृढप्रहाँरिव विसंहंति ॥ १३६ ॥

अर्थ—“जेमणे अग्रेतन—परभवतुं स्वरूप जाण्युं छे एवा मुनिओ आक्रोश, तर्जना, ताडना, अपमान अने हिलणा विगेरे दृढप्रहारीनी जेम सहन करेछे.” १३६

जेम दृढप्रहारीए सहन कर्युं तेम अन्य वीजाओए पण सहन करवूं. आक्रोश ते श्राप देवो, तर्जन ते भृकुटि भंगादिवडे निर्भर्त्सना करवी, ताडन ते लाकडी विगेरेथी कुटवा, अपमान ते अनादर अने हीलना ते जात्यादितुं उद्घाटन करीने निंदवा—ए प्रमाणे समजवूं. अर्थात् ए सर्व सहन करवूं एवो आ गाथानो उपदेश छे. अहीं दृढप्रहारीनुं उदाहरण समजवूं. ३९

दृढप्रहारीनुं वृत्तांतः

माकंदी नायनी मोटी नगरीमां ससुद्रदत्त नामे एक ब्राह्मण वसतो हो. तेने ससुद्रदत्ता नामे भार्या हती. एक दिवस तेणे एक पुत्रने जन्म आप्यो. ते प्रतिदिन वधतो सतो सेंकडो अन्याय करेछे. युवावस्था प्राप्त थतां ते लोकोने मारेछे, खोडुं वोलेछे, चोरी करेछे, परस्तीसमागम करेछे, भक्ष्याभक्ष्यना विवेकने जाणतो नथी, कोइनी शिखामण मानतो नथी, मातापितानी अवज्ञा करेछे, ए प्रमाणे महा अन्यायाचरणमां चतुर एवो ते शहरमां भम्या करेछे. एक दिवस राजाए तेना संवंधी हकीकत सांभळीने आ अयोग्य छे. एम जाणी दुर्गपालने वोलावीने कहुं के ‘विरस वाजित्रो वगाडतां आ अधम ब्राह्मणने शहरनी वहार काढी मूको.’ लोकोए पण ए वावतमां अनुमोदन आण्युं. दुर्गपाले ते प्रमाणे कर्युं. ते ब्राह्मण पण मनमां अति द्रेप राखवी नगरमांथी नीकळी भिण्ठपळीमां गयो. त्यां ते भिण्ठपतिने मळ्यो.

ल्लिपतिए पण ‘अमारा काममां आ कुशल छे’ एवुं क्लक्षणोथी जाणी तेने स्वपुत्र रीके स्थापित कर्यो अने पोताना घरनी सघळी संपत्ति तेने स्वाधीन करी. ते प्रमारपणे विचरेछे. त्यां रहेतो सतो ते घणा जीवोने निर्दयपणे मारे छे तेथी लोकमां दृढप्रहारी ए नामथी ते प्रसिद्ध थयो.

एक दिवस ते मोडुं धाडुं लङ्ने कुशस्थल नगर लुंटवाने गयो. ते वरते ते नगरमां देवदार्मा नामनो एक दरिद्री ब्राह्मण वसतो हतो. ते दिवसे घणा मनोरथ पूर्वक तेणे पोताना घर आगळ क्षीरनुं भोजन रंधाच्युं हतुं, अने पोते स्त्रानार्थे नदीए गयो हतो. ते अवसरे कोइ एक चोरे ते ब्राह्मणना घरमां दाखल थइ. ते क्षीरनुं भाजन उपाडच्युं. ते जोइने रुदन करतां करतां ते ब्राह्मणनां बाळकोए नदीए जइ तेमना पिताने ते कहुं. क्षुधालुर थयेल ते ब्राह्मण पण जलदी घरे आवीं क्रोधित थइने मोर्दी भोगळ लङ्मारवाने माटे ते चोर पासे आव्यो. वन्ने परस्पर लडवा लाग्या. ते वरते पेला दृढप्रहारीए आवीने खड्डथी ब्राह्मणने मारी नांख्यो. तेने भूमिपर पडेलो जोइने क्रोधावेशयी परवश थइ पोतानुं पूछडुं उंचुं करी ते ब्राह्मणना घरनी गाय ते दृढप्रहारीने मारवाने माटे दोडी, परंतु दृढप्रहारीए भयंकर परिणाम पूर्वक ते गायने पण मारी नांखी. ते अवसरे पोताना पतिने मरेलो जोइने आंसु पाडती, विलाप करती अने गाठ स्वरे आक्रोश करती ते ब्राह्मणनी सगर्भा स्त्री त्यां आवी. तेने पण ते दृढप्रहारीए मारी नांखी. तेना पेट उपर प्रहार करवाथी तेनी कुक्षिमां रहेलो गर्भ नीकलीने पृथ्वी उपर पड्यो. ते गर्भने भूमि उपर तरफडतो जोइने ते निर्दय हतो छतां तेना मनमां दया उत्पन्न थइ. ते विचारवा लाग्यो के “अरेरे ! अति अधम कर्म करनार मने धिक्कार छे ! मैं निष्कारण आ अनाथ अने गर्भवती अवलाने मारी नांखी. मने चारे हत्या लागी. एक पण हत्याथी निश्चय नरकगति प्राप्त धायछे तो मैं आ चार हत्या करीछे तेथी मारी केवी गति थशे ? दुर्गति रूप कूवामां पडतां मने कोण शरणभूत थशे ? ” आ प्रमाणे विचार करी व्यग्र मने नगरमांथी नीकली वनमां गयो. त्यां तेणे एक साधुने जोया. तेमना चरणमां पडी पोताना पापनुं स्वरूप निवेदन कर्युं अने कहुं के ‘हे भगवन् ! आ हत्याओना पापमांथी हुं केवी रीते मुक्त थाउं ते कहो.’ साधुए कहुं के ‘शुद्ध चारित्र्यमने आराध्य शिवाय तुं ते पापथी मुकाइश नहि.’ ते साधुना वचनथी वैराग्य पामीने तेणे चारित्र ग्रहण कर्युं.

पछी तेणे एवो दृढ अभिग्रह कर्यो के ‘ज्यांसुधी आ चार हत्याओ मारा स्मरणमां आवे त्यांसुधी अन्न के पाणी मरे लेवुं नहि.’ एवो अभिग्रह लङ्म तेज नगरना एक दरवाजे कायोत्सर्ग करीने उभो रख्यो. पछी ते दरवाजे थइने आवता जता नगरना लोको ते हत्याओनुं वारंवार स्मरण करावीने ‘आ महा दुष्ट कर्मनो करनार छे’ ए प्रमाणे करी तेनी ताडना तर्जना करवा लाग्या. केटलाक लाकडीवडे मारेछे, केटलाक मुष्टिप्रहार करेछे, केटलाक गालो देढे, केटलाक पश्चरो फेंकेछे अने केटलाक दुर्वचनोथी तेनो तिरस्कार करेछे, परंतु ते जरा पण क्रोध करतो नयी. लोकोए मारेला पथरा

अने इंद्रोवडे ते गळा सुधी हँकाइ गयो. छेवटे पोतानो श्वास रुधायचे एम जाएर्यु त्यारे कायोत्सर्गने पारी ते वीजे द्रवाजे जइने काउसग करी उभो रहो. त्यां पण तेणे तेज प्रमाणे परीसहोने सहन कर्या. पछी वीजे द्रवाजे गयो. पछी चोथे द्रवाजे गयो. त्यां गाळ, मार अने प्रहार विगेरे सहन करतां जेणे चतुर्विध आहारतुं पचारखाण कर्युचे. एवा ते दृढप्रहारीने छ मास व्यतीकम्या, परंतु ते पोताना नियमर्थी जरा पण चलित थयो नहि. विशुद्ध ध्यानर्थी तेनुं अंतःकरण क्षमावडे निर्मळ थयुं अने घातिकर्मनो क्षय थवार्थी तेने केवळज्ञान उत्पन्न थयुं. पछी घणा जीवोने प्रतिवोध पमाडी दृढप्रहारी केवली मोक्षे गया.

ए प्रमाणे वीजा पण जेओ आक्रोश आदि अनेक प्रकारना उपसर्गोने सहन करेछे तेओ अनंत सुखना भोगवनारा थायचे, एवो आ कथानो उपदेश छे.

अहमाहओति नयै पडिहॄण्ठि, सत्त्विनैय पडिसंवंति ॥

मारिज्जंतावि जैइ, संहंति सहस्रं मल्लुव्व ॥ १३७ ॥

अर्थ—“मुनिओ आणे मने हण्योचे एम जाण्या छतां पण तेने हणता नथी, कोइए श्राप दीधा छतां पण तेने सामो श्राप देता नथी अने मार्या छतां पण ते सहन करेछे. सहस्रमल्लनी जेम.” १३७

अहीं हण्योचे एटले पीडा उपजावी छे-सामान्य प्रहारादि करेलचे एम समजवृं जेम सहस्रमल्ल साधुए प्रहारादि सहन कर्या तेम वीजाए पण सहन करवा. अत्र सहस्र-मल्लतुं दृष्टं जाणवृं. ४०

सहस्रमल्लनी कथा.

शंखपुर नगरमां कनकध्वज राजा राज्य करतो हतो. तेनी सभामां वीरसेन नामनो कोइ सुभट राजसेवा करतो हतो. राजाए तेने पांचसे गाम आपवा मांड्या छतां तेणे ते लीधां नहि. तेणे कहुं के ‘हे राजन्! मारे आपनी सेवा पगार पण लीधा वगर करवी जोइए. आप प्रसन्न थशो तो सघळुं सारुं थशो.’ ए प्रमाणे कही हंमेश राजानी सेवा करेछे. हवे ते वरवते कालसेन नामनो ते राजानो एक दुर्जय शब्द छे, ते कोइनाथी वश थतो नथी. अनेक गामो ने शहेरोने ते उपद्रव करेछे. एकदा सभामां वेठेला राजाए कहुं के ‘एवो कोइ वळवान छे के जे कालसेनने जीवतो पकडीने मारी पासे लावे?’ राजातुं ते वचन सांभळीने सघळा मौन रहा, कोइ वोल्युं नहि. एटले वीरसेन वोल्यो के ‘हे राजन्! आप वीजाओने शामाटे कहोछो? मने आज्ञा करो तो हुं एकलो जइ तेने वांधीने आपनी समक्ष लावूं.’ राजाए आज्ञा

आपी एट्ले उपर प्रमाणेनी राजा पासे प्रतिज्ञा करी तैयार थइने मात्र खड्ड लइ एक लोज कालसेननी सामे चाल्यो. कालसेन पण पोतानुं लक्षकर लइ सन्मुख आव्यो. मोठुं युद्ध थतां कालसेननुं सघळुं सैन्य नासी गयुं. एट्ले वीरसेन एकला रहेला कालसेनने वांधीने राजानी समीपे लाव्यो. राजा पण वीरसेननुं तेव्हुं बळ जोइने आश्र्ये पास्यो, अने 'जे लाखो माणसोथी जीती शकाय तेवो नहोतो तेने लीलामात्रमां आणे पराजित कर्यो' ए प्रमाणे कही सभाना लोको पण तेनी प्रशंसा करवा लाग्या. संतुष्ट थयेका राजाए तेने लक्ष्मद्रव्य आपी सहस्रमल्ल एवुं तेनुं नाम स्थापन कर्युं अने तेने एक देशनो राजा वनाव्यो. पछी कालसेन पासे पण पोतानी आज्ञा मनावी तेनुं राज्य तेने पाढ्युं सोऽप्युं.

सहस्रमल्लने पोताना देश उपर राज्य करतां केटल्याक दिवसो व्यतिक्रम्या. एकदा सुदर्शनाचार्ये कहेला धर्मना श्रवणथी तेने वैराग्य उत्पन्न थयो. तेथी तेणे राज्य तजी दइने चारित्र ग्रहण कर्युं. ते सामायिकथी मांडीने अगियार अंग भण्यो. अनुक्रमे चारित्र पाळतां तेणे जिनकल्पविहार अंगीकार कर्यो. ते प्रमाणे विहार करतां एकदा ते कालसेन राजाना नगरनी समीप भागमां कायोत्सर्ग मुद्राथी रह्या. कालसेने तेने जोइने ओळख्या; एट्ले 'आ पापीज मने जीवतो पकडीने कनकध्वज राजा पासे लइ गयो हतो' एम विचारी तेना पर रुप्रमान थइने ते दुष्ट कालसेने सहस्रमल्ल साधुने लाकडीओ, इंटो अने पापाणादिना प्रहारो करवा वडे अति कदर्थना करी; परंतु ते जरा पण क्षोभ पास्या नहि. क्षमा धारण करीने शुद्ध ध्यानमां तत्पर रह्या. अनुक्रमे ते कालसेने करेला उपसर्गांथी थयेल वेदनावडे मृत्यु पांगी सर्वार्थसिद्ध विमानमां देवपणे उत्पन्न थया.

आ प्रमाणे वीजा मुनिओए पण क्षमा करवी एवो आ कथानो उपदेश छे.

दुज्जणसुहकोदंडा, वयर्णसरा पुञ्चकम्मनिम्माया ।

साहूण ते न लैगां, खंतिफलयंवहंताणं ॥ १३८ ॥

अर्थ—“ क्षमारूपी फलक जे ढाल अथवा वर्खतर तेने वहन करता-धारण करता एवा साधुओने ते दुर्जनना मुख स्प धनुष्यमांथी नीकलेलां अने पूर्वकर्मयी निर्माण थयेलां एवां कटु वचन रूपी वाणो लागतां नथी. अर्यात् र्मनो भेद करे तेवां दुर्जननां वचनो मुनिओ समता-क्षमावडे सहन कराले.” १३८

पथ्यरेणौहओ कीवी, पथ्यैरं डँकु मिँच्छइ ।

मिंगांरिओ संरं पर्प, सरुर्पत्ति विर्मग्गइ ॥ १३९ ॥

अर्थ—“ पथ्थरथी हणायेलो कुतरो पथ्थरने करडवाने इच्छेछे अने सिंह वाणने पामीने अर्थात् पोताने वाण लागवाथी वाण तरफ न जोतां शरोत्पत्तिने एट्ले आ वाण क्यांथी आव्युंछे ते स्थानने अथवा वाण मुकनारने जुएछे-शोधेछे. ” १३९.

मुनि पण दुर्वेचन रूपी तीरने पामीने ते बोलनार तरफ द्रेष करता नथी पण आ वचन-प्रहार मारा पूर्वोपार्जित कर्मतुं फल छे एम विचार करी ते कमोने हणवा प्रयत्न करेछे.

तहैं पुंचिंव किं॑ नक॑यं, न ब॑ंहए जेण॑ मे॒ समर्थोवि ।

इंह॑ किं॒ कस॑वं कुपि॑-मु॒त्ति॑ धीरा॑ अणु॒पिच्छा॑ ॥ १४० ॥

अर्थ—“ धीर पुरुष एवी रीते विचार छे के-हे आत्मा ! तें पूर्वभवे शामाटे एवुं (सुकृत) न कर्यु के जेथी मने समर्थ एवो पुरुष पण वाधा करी न शके ? (जो शुभ कर्यु होत तो तने कोण वाधा करी शकत ?) हवे अत्यारे शामाटे कोइना उपर कोप कर्ह ? (कारणके पूर्वना अशुभ कर्मनो उदय थये सते पर उपर क्रोध करवो ते व्यर्थ छे). आम विचारीने ते कोइना पर क्रोध करता नथी. ” १४०.

अणुराण॑ जइस॑वि, सियाय॑पत्तं पियाँ॑ धर्व॑वेइ ।

तह॑विय खंदकुँमारो, नं॑ बंधुपर्स॑सेहिं॑ पडिंबंद्धो॑ ॥ १४१ ॥

अर्थ—“ यति थयेला एवा पण पोताना पुत्रना अनुरागे करीने तेना पिता तेना पर श्वेत छत्र (सेवको पासे) धरावेछे, ते छतां पण स्कंदकुमार नामना मुनि पितानो आवो स्नेह छतां बंधुवर्गना स्नेह रूप पासे करीने वंधाणा नहि. ” १४१. अहीं स्कंदकुमारनुं दृष्टांत जाणवुं. ४१

स्कंदकुमारनुं दृष्टांत.

श्रावस्ती नामे एक मोटी नगरी हती. त्यां तमाम शत्रुमंडलने धूमकेतु जेवो कनककेतु नामे राजा हतो. तेने देवांगना करतां पण अति सुंदर एवी मल्यसुंदरी नामे राणी हती. तेमने स्कंदकुमार नामे प्राणप्रिय ततुज (कुमार) हतो अने मनुष्योने आनंद आपनारी सुनंदा नामे पुत्री हती. रूप ने यौवनथी गर्वित वनेली तेने कांतिपुर नगरना राजा पुरुषसिंहने आपेली हती. एकदा श्रावस्ती नगरीए रोविजयसेन सूरि पथार्या. स्कंदकुमार परिवार सहित वांदवाने आव्यो. गुरुए देशना आपी के हे भव्य जीवो ! आ संसार अनित्य छे, आ शरीर नाशकंत छे, पत्तिओ जलतरंग जेवी चंचल छे, यौवन पर्वतमांथी नीकळती नदीना प्रवाह जेवुं

गाथा १४०—इन्हि । कस्सवि । कुप्पमुत्ति ।

गाथा १४१—सिभायवत्तं—सीतआतपत्रं—श्वेतघटनं ।

छे; माटे आ काळकूट विष जेवा विषयसुखना आस्वादथी शुं ! आगममां पण कहुं छे के—

संपदो जलतरंगविलोला, यौवनं त्रिचतुराणि दिनानि ।

शारदाभ्रमिव चंचलमायुः, किं धनैः कुरुत धर्ममनिद्यम् ॥

“ संपत्तिओ जलना तरंग जेबी चपल छे, यौवन मात्र त्रण चार दिवस रहेनारं छे अने आयुष्य शरदऋतुना मेघ जेवुं चंचल छे, तो धनथी शुं विशेष छे ? आनेद्य एवो धर्मज करो. ” बली—

सञ्चवं विलविधं गीयं, सञ्चवं नट्टुं विडंबणा ।

सञ्च्वे आभरणा भारा, सञ्च्वे कामा दुहावहा ॥

“ सर्व गीतो विलाप रूप छे, सर्व नृत्यो विडंबना रूप छे, सर्व प्रकारना आभरणो भार रूप छे अने सर्व प्रकारना कामो (विषयो) परिणामे दुःखना आपनारा छे. ”

इत्यादि गुरुनी देशना सांभलीने स्कंदकुमार प्रतिवोध पाम्यो अने धणा आग्रहीय मातापितानी आज्ञा लइ तेणे श्री विजयसेन सूरि पासे चारित्र ग्रहण कर्यु. ते दिवसथी आरंभाने राजाए पण स्नेहयी पोताना पुत्र उपर श्वेत छत्र धारण करायुं, अने सेवा करवाने माटे तेनी पासे सेवको राख्या. ते नोकरो मार्गमां कांटा विगरे पड्या होय ते आघा फेंकी देछे अने परम भक्तियी सेवा करेछे. अनुक्रमे ते सकल सिद्धांतो रूपी समुद्रना पारगामी थया. गुरुनी आज्ञा लइ जिनकल्पमार्गने ग्रहण करी एकला विहार करवा लाग्या. तेमने अति उग्र विहारी जाणीने सर्व सेवको पोतपोताने स्थानके गया.

एक दिवस विहार करतां कांतिपुरीए आव्या. त्यां महेलना झरुखामां पोताना पति साथे सोगठावाजी रमती सुनंदा नामनी तेमनी वहेने तेमने जोया. भाइना दर्शनयी तेने अत्यंत हर्ष थयो, आंखमां हर्षनां आंसु आव्यां, अने वृष्टियी हणायलां कदंब पुष्पोनी माफक तेनां रोमराय विकस्वर थयां. ते मनमां विचार करवा लागी के ‘आ मारो सहोदर हशे के नहि ?’ ए प्रमाणे वंयुप्रेमयी नेत्रमां हर्षअशु लावती सुनंदाने स्कंदमुनिए ओल्लखी, पण तेणे तेना उपर जरा पण स्नेह आण्यो नहि. राजाए ते देनेनुं स्वरूप जोइ भाइहेननो संवंध नहि. जाणतो होवायी मनमां विचार कर्यो के ‘आ सुनंदाने आ सावु साथे अत्यंत राग होय एम जणायछे.’ ए प्रमाणे विचारी दुर्मुद्धियी रात्रिए कायोत्सर्गमुद्वायी वनमां रेहला स्कंदकङ्गिने राजाए मारी नंखाव्या-

प्रातःकालमाँ लोहीयी लाल थयेली मुहपत्तीने कोइ पक्षीए चांचमाँ लड़ने राणीना महेलना आंगणामां नांखी. ते सुहपत्ती जोइने राणीने मनमाँ शंका पडी, एटले तरतज दासीने बोलावीने ते संवंधी पूछ्युं. दासीए कहुं के ‘आपे गइ काले जे साधुने जोया हता तेज साधुने कोइ पापीए मारी नांख्या होय तेम जणायचे. आ तेनीज मुहपत्ती देखायचे.’ ते सांभळीने राणी मूर्छित थड अने वज्रथी हणाइ होय तेम भूमि उपर पडी गइ. शीतळ उपचारोथी तेने सावध करी एटले रुदन करती सती ते बोलवा लागी के “कदाच ते मारो भाइ. हशे तो हुं शुं करीश ? कारणके मारा भाइए दीक्षा लीधीचे एवुं संभलायचे, अने ते साधुना दर्शनथी मने पण वंधुने जोवाथी जेवो आनंद थाय तेवो आनंद थयो हतो.” एवुं विचारी तेणे एक सेवकने पोताना पिताना घरे मोकली खवर मंगावी. ते उपरथी ‘पोते धारेल ते सघळुं खरुं छे’ एम जाणी तेनुं हृदय अति दुःखथी भराइ आव्युं. ते मोकळे कंठे रुदन करवा लागी के “हे वंधु ! हे भाइ ! हे सहोदर ! हे वीर ! तुं मने मारा प्राण करतां पण वधारे वहालो छे. तें आ शुं कर्यु ? ताहुं स्वरूप मने पण जणाव्युं नहि ? तें तो आ पृथ्वी विहार करीने तीर्थ रूप वनावीचे, पण हुं तो महा पाप करनारी छुं. कारणके तारा उपर मारी दृष्टि पडवाथी ते निमित्ते तारो घात थयोचे. माहुं शुं थशे ? हुं क्यां जाडं ? शुं करुं ?” ए प्रमाणे अनेक प्रकारे विलाप करती सुनंदाने मंत्रीओए अनेक प्रकारना अपूर्व नाटक विग्रे वतावीने लांबे वरते शोकरहित करी.

ए प्रमाणे वीजाओए पण स्कंदक मुनिनी पेटे निर्मोहपणुं धारण करखुं एवो आ कथानो उपदेश छे.

गुरुं गुरुतरै अद्गुरुं, पियमाइअवच्चंपियजणसिणेहो ।

चिंतिइङ्गमाण गुरिलो, चर्तो अइधम्मतिसिएहिं ॥ १४२ ॥

अर्थ—“गुरु के० घणो, गुरुतर के० तेथी वधारे, अतिगुरु के० तेथी पण वधारे एवो पितामाता पुत्रादि अने प्रियजन ते स्त्री तथा परिजनादि तेनो अनुक्रमे वधतो जे स्नेह ते विचार्यों सतो गुरिलो के० महा गहन छे—अनंत भवना हेतुभूत छे एम जाणीने धर्मना अति तृष्णित के० धर्मना अत्यंत इच्छक एवा प्राणीओए तेने तजी दीधोचे. कारण के ते धर्मना शत्रुभूत छे.” १४२. एम जाणीने वीजा पण धर्मना इच्छक ज्ञोए वंधुवर्गना स्लेहमां न सुंझाता तेने तजी देवो.

अमुणियपरमथथाणं, वंधुजनसिणेहैवइयरोहोइ ।

अवगयसंसारसहावै—निच्छयाणं संमं हियैयं ॥ १४३ ॥

गाथा १४२—गुरुतरोअ । पियमाय । चिंतिजमाण । अतिधर्मनृपित्तः ।

गाथा १४३—वंधुजन । निच्छयाण । व्यतिकरः—संवंधः ।

अर्थ—“नथी जाण्यो परमार्थ जेणे एवा प्राकृत प्राणीओने ज वंधुजनना स्तेहनो संवंध थायछे अने जेणे संसारना स्वभावनो निश्चय जाण्यो छे तेनुं हृदय तो समान होयछे.” १४३.

जेणे संसारनुं स्वरूप जाण्युं नथी एवा मंद बुद्धिओने वंधुजनोनो स्तेह प्रतिवंध करनार थाय छे, पण पंडित बुद्धिवाला के जेओए संसारनुं स्वरूप जाण्युं छे. अने सधालो संसारनो संवंध तजी दीधोछे तेमना हृदयमां तो शत्रुमित्रपर समान भाव होय छे तेथी तेमने वंधुजनो स्तेह प्रतिवंधकारक थतोज नथी.

मार्या पियाँ यै भाँया, भज्जा पुत्ता सुँहीय नियंगार्य ।

इँह चेवै बहुविहौङ्क, कैरंति भयवेमण्डस्साइ ॥ १४४ ॥

अर्थ—“माता, पिता, भ्राता (भाइ), भार्या (स्त्री), पुत्र, सुहृद् (मित्र) अने निजकाः पटले पोताना संबंधीओ ते सर्वे आ भवमांज वहु प्रकारना भय ते मरणादि अने वैमनस्य ते मन संबंधी दुःखो तेने उत्पन्न करेछे.” १४४.

तेज अनुक्रमे कहेछे—

माँया नियगमङ्गविगपियांमि, अंत्ये अपूरमाणांमि ।

पुत्तस्स कुण्डै वर्सणं, चुलणी र्जह वंभदत्तंस्स ॥ १४५ ॥

अर्थ—“पोतानी बुद्धिवडे विचारेला पोताना अर्थमां (कार्यमां) अपूर्यमाण कहेतां नहि पूरायेली अर्थात् पोतानुं धारेलुं कार्य परिपूर्ण जेने थयुं नथी एवी माता पोताना पुत्रने पण अनर्थ-कष्ट करेछे. जेम चुलणीए ब्रह्मदत्तने कर्युं तेम.” १४५.

अन्यराजा साथे विषयासक्त थयेली चुलणीए पोताना चक्रवर्ती थनार पुत्रने पण वच्चेथी फांस काढी नाखवानी बुद्धियी प्राणांत कष्टमां नाख्यो. अहीं चुलणीनो संवंध जाण्यो. ४२

चुलणी राणीनुं दृष्टांत.

कांपिल्यपुर नगरमां ब्रह्म नामे राजा हतो. तेने चुलणी नामे राणी हती. तेनी कुशियी चौद वस्त्रवडे सूचित पुत्र जन्मयो. तेनुं ब्रह्मदत्त नाम पाडवामां आच्युं. हत्रे ब्रह्मराजाने वीजा चार राजाओ मित्र हता. पहेलो कणेरदत्त नामे चुल्देन नामो राजा, वीजो काशीदेशनो अथिपति कटकदत्त नामे राजा, वीजो कोशलपति दीर्घ नामे राजा अने चोयो अंगपति पुष्पचूल नामे राजा हतो. पांचमो पोते हतो. ए पांचने परस्पर अतिगाढ मित्रता हती. तेओ धणमात्र पण एक वीजानो वियोग सहन

गाया १४४-सुहिय । बहुविहौङ्क । वैमनस्साइ । गुह्दो-मित्राणि । निजकाः-संवंधिनः ।

गाया १४५-निजस्त्रमाणा विशिष्टते । व्यस्तम-अनर्थ-कष्ट ।

करी शकता नहोता, ते पांचे जणा प्रतिवर्ष अनुक्रमे एक एकना शहरमां जइने एकठा रहेता हता।

ए प्रमाणे एक वर्खत पांचे राजाओ कांपिल्यपुरमां एकठा मल्या हता, ते वर्षे व्रसं राजा मस्तकना व्याधिथी परलोकवासी थया, ते वर्खते ब्रह्मदत्त कुमार वारवर्षनी लघुवयनो हतो तेथी चारे मित्रोए विचार्यु के 'आपणा प्रीतिपात्रं परममित्रं ब्रह्मराजा पंचत्वं पाम्या छे अने तेनो पुत्र नानो छे, माटे आपणामांथी एकेकं जेणे दरवर्षे आ राज्यनी रक्षा करवा माटे अहीं रहेवुं।' ए प्रमाणे विचार करी दीर्घ राजाने त्यां मूकी वीजा त्रण राजाओ पोतपोताने नगरे गया, दीर्घ राजाए त्यां रहेता सता ब्रह्मराजाना कोठार अने अंतःपुरमां जतां आवतां एक दिवसे चुल्णी राणीने नवयौवना जोइ, तेथी ते कामरागथी पराधीन थयो, चुल्णी पण दीर्घ राजाने जोइने रागवती थइ, वनेने परस्पर वातचाति थतां महान कामराग उत्पन्न थयो, तेथी ते वनेने परस्पर शरीरसंबंध थयो, अनुक्रमे दीर्घ राजा पोतानी स्त्रीनी माफक चुल्णी राणीनी साथे भोग भोगवता लाग्यो, तेणे कोइनो भय गण्यो नहिं, लोकापवादनो डर पण तजी दीधो, धनु नामना दृद्ध मंत्रीए आ वधी हकीकत जाणी, तेथी ते मनमां विचारवा लाग्यो के 'अरेरे ! आ दुष्ट दीर्घ राजाए बहुज अविचारी कार्य कर्युं, अन्य त्रण मित्रोए पण शो विचार करीने अने राज्यनो अधिकार सोंप्यो ? एमणे पण विपरीत कार्य कर्युं, आ दीर्घ राजा पोताना मित्रनी स्त्रीनी साथे व्यभिचार करतां लज्जा पण पामतो नथी।' ए प्रमाणे विचारी घेर आवी पोताना पुत्र वरधनुने आ हकीकत जणावी, तेणे जइने ब्रह्मदत्तने आ खवर कही, ते सांभळी ब्रह्मदत्त अति क्रोधित थइ रक्त नेत्रवालो थयो, पछी दीर्घ राजा सभामां वेठो छे ते वर्खते सभामां जइने कोकिला ने कागडानो संगम करावी ते कहेवा लाग्यो के 'अरे दुष्ट काग ! तु कोकिलनी स्त्री साथे संगम करेछे ए अति अयुक्त छे, आ तारु अग्रोग्य आचरण हुं सहन करीश नहि, ' एम कही कागने हाथमां पकडी मारी नांख्यो अने लोकसमझ कहुं के 'जे कोइ आवुं दुष्ट कार्य मारा नगरमां करे छे अर्थवा करशे तेने हुं सहन करीश नहि, ' ए सांभळीने दीर्घ राजाए चुल्णी राणीने कुमारनी ते हकीकत जणावी, त्योरे चुल्णीए कहुं के 'ए तो बालकीडा छे, तेनाथी शुं वीओ छो ? माटे स्वस्य थाओ, ' ए प्रमाणे केउलाक दिवसो व्यतीत थतां फरीथी ब्रह्मदत्ते दीर्घ राजानी समझ हंसी ने बगळानो समागम करावी पूर्ववत् जनसमूहनी आगल कहुं, भययी आकुल थयेला दीर्घ राजाए चुल्णी राणीने कहुं के 'तारा पुत्रे आपणा बेना संबंधनी ऐकीकत जाणी छे, तेथी आपणो निःशंक समागम हवे केवी रीते धइ शके ? माटे तुं

तेने मारी नाख; जेथी आपणे निर्भयपणे विषयरसनो आस्वाद अनुभवीए । चुलणीए विचार्युं के ' हुं आवुं अकार्य केवी रीते करुं ? पोताना हाथे पोताना पुत्रने मारी नांखबो ए तदन अयोग्य छे. ' कहुं छे के विषवृक्षोऽपि संबद्ध्ये स्वयं छेत्तुमसांप्रतम् " झेरतुं वृक्ष पण मोटुं करी पोते कापी नांखबुं ए अयुक्त छे. ' दीर्घ राजाए फरीयी राणीने कहुं के ' कुमारने मारी नांख, नहि तो तारी साथेना संबंधथी सर्यु. ' ए सांभळीने राणीए विचार कर्यो के ' विषयसुखमां विन्न करनार आ पुत्र शा कामनो माटे तेने अवश्य मारी नांखबो जोइए. ' अहो आ विषयविलासने धिक्कार छे ! कहुं छे के-

दिवा पश्यति नो वृक्षः, काको नक्तं न पश्यति ।

अपूर्वः कोऽपि कामांधो, दिवा नक्तं न पश्यति ॥

" शुब्द दिवसे जोइ शकतो नथी, काग रात्रिए जोइ शकतो नथी, पण कामांध पुरुप तो कोइ अपूर्व अंध छे के जे दिवसे तेमज रात्रिए—वेने वरखते जोइ शकतो नथी पछी चुलणीए विचार कर्यो के ' आ पुत्रने पण मारबो अने यशनी पण रक्षा करवी माटे पुत्रने मोटा महोत्सवथी परणावी एक लाक्षागृह करावी तेनी अंदर मुतेला तेने वार्जी नाखुं, जेथी लोकमां मारो अपयश न थाय. ' ए प्रमाणे विचार करी तेणे लाक्षागृह कराव्य अने तेने चुनाथी धोलाव्युं. पछी पुष्पचूल राजानी पुत्री साथे मोटा महोत्सवथी तेने परणाव्यो तेण सघद्धुं धनु मंत्रीए जाण्युं अने मनमां विचार कर्यो के ' आ पापिणीए पुत्रने मारवाने उपाय कर्योछे, पण हुं तेनी रक्षा करवानो उपाय करुं. ' ए प्रमाणे विचार करी तेण दीर्घ राजानी पासे जड्ने कहुं के ' हे राजन् ! हुं हवे दृद्ध थयोद्धुं, तेथी जो आप-आइ आपो तो हुं तीर्थयात्राए जाउं अने मारो पुत्र वरधनु आपनी सेवा करशे. ' ए सांभ लीने दीर्घ राजाए विचार कर्यो के ' आ मंत्री दूर रखो सतो कंइक पण विपरीत करशे, माटे तेने तो पासेज राख्यो सारो. ' ए प्रमाणे मनमां विचार करी दीर्घ राजाए कहुं के ' तीर्थगमन करवानुं शुं कारण छे ? अहंआंज तीर्थ स्वप गंगा छे, तेथी गंगाने किनारे दानशालामां रही दानपुण्य करो, अन्यत्र जवाथी शुं विशेष छे ? ' धनु मंत्रीए ए वात कहुल करी. पछी गंगाने किनारे दानशालामां रहीने तेणे लाक्षागृहथी वे गाँड मुर्ही मुरंग खोदावी, अने वरधनु मारफत पुष्पचूल राजाने जणाव्युं के ' आज शयनभुवनमा तपारी पुत्रीने घड्ले सर्व अलंकारोथी अलंकृत करीने कोइ स्वपती दासीने मोकलजो. ' तेथी पुष्पचूल राजाए दासीने मोकली. ब्रह्मदत्त पोताना प्राणप्रिय मित्र वरधनु साथे शयनगृहमां आओ. दासी पण त्यां आवी. ब्रह्मदत्त तो जाणेछे के ' आ मारी प्राणवृहभा रहो. ' दासीनुं स्वस्वप तेजाणतो नथी. तेवरखते वरधनुए शुंगार उपर कथा करेवानुं शर कर्यु. तेसांभळवाना रतमां मग्न थवाथी ब्रह्मदत्तने पण निन्दा आवी न-

हवे मध्य रात्रिए सर्व लोको सुइ जतां चुलणी राणीए आवीने काक्षागृहने आग लगाई, ते लाक्षागृहने चोतरफथी बळतुं जोइने ब्रह्मदत्ते कहुं के 'हे मित्र ! हवे शुं करवुं ?' त्यारे वरधन्तुए कहुं के 'मित्र ! चिंता शामाटे करोछो ? आ जग्या उपर पगनो प्रहार करो.' पछी ब्रह्मदत्ते पगना प्रहारथी सुरंगतुं बारण उघाड़युं, बंने जण पेली खीने त्यांज इहेवा दइने ते मार्गे नासी गया. सुरंगने छेडे मंत्रीए पवनब्रेगी बे घोडा तैयार राख्या हता, बंने जण ते बे घोडा उपर स्वारी करीने भाग्या. पचास भोजन गया त्यां बंने घोडा अत्यंत श्रमित थइ जवाथी मरी गया. तेथी ते बंने जणा पगे चालीने कोष्टक नगरे गया, त्यां कोइ ब्राह्मणने घेर भोजन लीधुं अने ते ब्राह्मणनी पुत्री साथे ब्रह्मदत्त परण्यो. पवी घणां शहरो अने घणां गामोमां कोइ टेकाणे गुस रीते अने कोइ टेकाणे प्रगटपणे फरतां फरतां ते ब्रह्मदत्त अनेक खीओ परण्यो. ए प्रमाणे एकसो वर्ष भम्या, अनुक्रमे कांपिल्यपुरमां आवी दीर्घ राजाने मारी नांखीने पोतानुं राज्य लीधुं. पछी छ खंड साधीने ते बारमो चक्री थयो.

एक दिवसे राज्यनुं पालन करतां पुष्पनो गुच्छ जोइने ब्रह्मदत्तने जातिस्मरणज्ञान युं पूर्व भवनो भाइ चित्रनो जीव प्रतिबोध पमाडवाने त्यां आव्यो, परंतु ते प्रतिबोध प्रयो नहि. सोल वर्षनुं आयुष्य वाकी रहेतां कोइ गोवालीआए तेना आंखना ढोला गढी लीथा, अर्थात् आंखो फोडी नाखी. 'आ बधुं एक ब्राह्मणनुं चात्रिं छे' एम आणी ब्राह्मणोना नेत्रो कढावतो सतो रौद्र ध्यानवडे घणां अशुभ कमोने मेलवी, गातसो वर्षनुं आयुष्य पूर्ण करी सातमी नरकमां अप्रतिष्ठान नरकावासामां उत्कृष्ट स्थितिए उत्पन्न थयो.

आ सघळो संबंध वधारे विस्तारथी उवएस सहस्रेहिं वीति ए गाथाना विवरणथी नाणवो. अहीं तो आ प्रमाणे मातानो स्नेह कुत्रिम छे, एवो आ गाथानो उपदेश छे.

सवंगोवंगविंगत्तणाओ, जगडेण विहेडणाओ अै ॥

कासीर्य रजतीसिओ, पुत्तार्ण पियाँ कणयकेउ ॥ १४६ ॥

अर्थ—“राज्यनो तरश्यो एवो कनककेतु नामनो पिता पोताना पुत्रोने सर्व अंगोपांग छेदवे करीने कदर्धना अने विविध म्रकारनी यातना जे पीडा ते करतो ह्यो. माटे पितानो संबंध पण कुत्रिम छे.” १४६

कनककेतु राजा राज्यना कोभयी तेमां अंघ थइ जवाथी पोताने जे पुत्र थाय तेना

अंगोपांग छेदवावडे राज्यने अयोग्य करतो हतो. तेनुं विशेष चरित्र तेनी कथापी जाणी लेवूँ .४४.

कनककेतु राजानी कथा।

तेतकीपुर नगरमां कनककेतु नामे राजा हतो. तेने पदावतीं नामे पद्मराणी दती अने तेतलीपुत्र नामे मंत्री हतो. ते कारभारीने पोटिला नामे अति बहाली स्त्री हती. राज्यमुख भोगवतां वर्नवेतुने घेर पुत्रनो जन्म थयो. ते वर्खते राजा विचार करवा लाग्यो के 'आ पुत्र मोटो थतां मारुं राज्य लइ केशो.' एवा भयंधी तेणे तेना हाथ वापी नांख्या. वीजो छोकरो धयो तेना पण कापी नांख्या. ए प्रमाणे अनुक्रमे छोकरा उत्पन्न थतां कोइनो अंगछेद कर्यो, कोइनी आंगळी कापी नांखी, कोइनुं नाक कापी नांख्युं, कोइना कान कापी नांख्या अने कोइनी आंख काढी नांखी. आ प्रमाणे सर्व पुत्रोने खंडित अंगवाला कर्या. ए प्रमाणे घणो काळ व्यतीत थतां फरीधी पाडो पदावतीए सुस्वमर्थी सूचित गर्भ धारण कर्यो. ते वर्खते मंत्रीनी स्त्री पोटिलाए पण गर्भ धारण कर्यो, तेथी मंत्रीने वोलावी राणीए कहुं के 'सुस्वप्नथी सूचित में गर्भ धारण कर्यो छे, माटे तेना जन्म वर्खते आपे लइ जइने गुप्त रीते तेनुं रक्षण कर्खुं के जेथी ते राज्याधिकारी धाय अने तमने पण आधारभूत धाय.' मंत्रीए कबुल कर्युं, योग समये पुत्र प्रसव्यो. मंत्रीए गुप्त रीते ते पुत्रने पोतानी स्त्री पोटिलाने सौंप्यो अने ते वर्खते पोटिलाए प्रसवेकी पुत्री राणीने आपी. पछी दासीए राजाने जणाव्युं के 'राणीने पुत्री जन्मी छे.'

अहीं मंत्रीने घेर राजपुत्र मोटो थतां तेनुं कनकध्वज नाम पाठ्युं. अनुक्रमे ते यौवनवयने प्राप्त थयो. ए अवसरे कनककेतु राजा मृत्यु पाम्यो. तेथी सर्व मांडलिक राजा चिंता करवा लाग्यो के 'ह्वे राज्य कोने सौंपवूँ ?' ते वर्खते मंत्रीए राणीनी वधी हकीकत जणावी. तेथी कनकध्वज राजानो पुत्र छे एम जाणी सघला घणा खुशी धया अने तेने मोटा आटवरथी राज्यगादीए वेसाड्यो.

कनकध्वज राजा 'आ मंत्रीए मास उपर मोटो उपकार कर्यो छे ?' एम जाणी तेनुं पाणुं सम्मान करवा लाग्यो. घणा आनंदथी राज्यनुं पालन करतां केटलोक वर्खत व्यतीत थयो. अन्यदा मंत्रीनी स्त्री पोटिला जे पटेक्का मंत्रीने प्राण करतां पण अधिक मिय दती ते कोइ कर्मना दोपरी अप्रिय भइ पठी. तेथी मंत्रीए तेनी शश्या जुदी करावी, जेथी पोटिलाना मनमां याणुं दुःख थवा लाग्युं. कहांछे बे-

आज्ञाभंगो नरेन्द्राणां गुरुणां मानमर्दनम् ।

प्रथक् शश्या च नारीणामशस्ववध उच्यते ॥

“राजाओनी आज्ञानो भंग करवो, गुरुओना माननुं मर्दन करवुं अने स्त्रीओनी जुदी शश्या करवी—ए शस्त्र वगरनो वध छे.”

भर्तारना अपमानथी पीडित थयेली पोटिला विशेष प्रकारे दान विगेरे धर्मकृत्यो करवा लागी. ते समये तेने घेर एक सुव्रता नामना सांख्यी आहारने माटे आव्या. तेनी सन्मुख जइ, शुद्ध आहार वहोरावी, हाथ जोडीने पोटिलाए कहुं के “हे भगवती ! तेवुं कांइक करो के जेथी मारो भर्तार मारे वश थाय. परोपकार एज मोडुं पुण्य छे. कहुं छे केन-

दोपुरिसे धरइ धरा, अहवा दोहिं वि धारिया धरणी ।

उवयारे जस्त मई, उवयारे जं न वीसरइ ॥

“वे पुरुष उपर आ पृथ्वी धारण करायेली छे अथवा वे पुरुषोए आ पृथ्वीने धारण करीछे. (ते वे पुरुष कोण ?) एक तो जेनी उपकार करवामा बुद्धि वर्तेछे—उपकार करवामा जे तत्पर छे, अने वीजो जे उपकारने विसरतो नथी—कोइए उपकार कर्यो होय तो ते भूली जतो नथी”

ए प्रमाणे पोटिलानुं कहेवुं सांभळीने सुव्रता सांख्यीए कहुं के—“आ तुं शुं बोली ? उत्तम स्त्रीए आवी प्रवृत्ति करवी योग्य नथी. कारणके मंत्र विगेरेथी पतिने वश करवो ए मोटो दोष छे, अने अमे तो सर्वविरति ग्रहण करेलाई; तेथी कामण विगेरे करवां ए अपने तो उचितज नथी. तुं जे भोगो भोगववाने माटे वशीकरण करवा इच्छेछे ते भोगो सांसारिक दुःखोना कारणभूत छे. विषयो किंपाक फलनी पेटे प्रारंभमां रम्य लागेछे पण परिणामे अति दारुण छे. लांबो वर्खत तेनुं सेवन करीए तो पण तेनाथी तृसि थती नथी. तेथी आ विषयनी अभिलापाने तजी दइने जिनोदित शुद्ध धर्म आचर के जेथी तने सर्व प्रकारनी सिद्धि प्राप्त थशे,” पोटिलाए ते वात कबुल करी अने पोताना भर्तार्नी आज्ञा कइने तेणे चारित्र ग्रहण कर्युं. भर्तारे पण कोधरहित धइने कहुं के “तने धन्य छे के तें आवो उत्तम धर्म ग्रहण कर्यो, हवे तुं देवी स्त्रप थशे, माटे देवी धइने तारे मने प्रतिबोध पमाडवाने माटे जस्तर आवुं.” तेणे ते कबुल कर्युं, ते पोटिला पृथ्वी उपर विहार करवा लागी, अने चिरकाल सुधी निर्देष चारित्र पाळी देवलोकमां उत्पन्न थइ.

पछी अवधिज्ञनथी पोतानो पूर्व भव जाणी पूर्व भवना भर्तारने प्रतिबोध करवा माने ने पोटिलादेव मंत्री पासे आव्यो. तेणे घणो उपदेश कर्यो, पण तेतकीपुनर्म प्रधानन-

प्रतिवोध पाम्यो नहि. तेथी देवे विचार्यु के 'आ राज्यमोहर्थी प्रतिवोध पामतो नर्थी. पछी ते देवे राजानुं चित्त प्रधान उपरथी फेरवी नांख्युं. एटले मंत्री ज्यारे सभामां आव्यो त्यारे राजा पराइमुख थइने बेठो, मंत्रीने दर्शन आप्युं नहि. तेथी ते-तलीपुत्रे विचार्यु के "राजा मारा उपर रुष्टमान थया छे. कोइ दुष्ट मारुं छिद्र तेमने कहेलुं जणाय छे. आमां खवर पडती नर्थी के राजा मने शुं करशे? अथवा कया प्रकारना मरणथी मने मारशे? तेथी आत्मधात करीने मरवुं एज. वधारे सारुं छे." ए. प्रमाणे विचार करी घरे आवीने तेणे गळामां फांसो नांख्यो. देवना माहात्म्यथी ते पाश त्रुटी गयो; एटले विष स्वावुं ते पण अमृत जेवुं थइ गयुं. त्यारे तरवारथी पोतानुं मस्तक कापवानो आरंभ कर्या. देवे खडगनी धार वाँधी लीधी. वळी अग्निमां प्रवेश करवा तैयार थयो. ते अग्नि जन्मरूप थड गयो. ए प्रमाणे तेणे लीधेला मरणना सर्व उपायो ते देवे व्यर्थ कर्या. पछी प्रगट थइने पोटिलादेव वोल्यो के 'आ सघळुं में कर्युछे, तुं शामाटे आत्मधात करेछे? चारित्र ग्रहण कर.' ते सांभलीने तेतलीपुत्र प्रधाने चारित्र ग्रहण कर्यु. राजा आवीने तेना पगामां पड्यो. घणो काळ पृथ्वीपर विहार करी, चौद पूर्वनो अभ्यास करी, धातिकर्मनो क्षय थवाथी केवलज्ञान पामी, तेतलीपुत्र मुनि माले गया.

विसयसुहरागवसओ, घोरो भाँयावि भाँयरं हण्डि ।

आहंविओ वर्हथं, जहं वाहुर्बलिस्स भर्हवर्दि ॥ १४७ ॥

अर्थ—"विषयसुखनो जे राग तेना वशपणाथी घोर के० (शत्रादि ग्रहण करेला होवाथी) भयंकर एवो भाइ पृण भाइने हणे छे. जेम भरतपति (भरत चक्रवर्ती) वाहुवलीना वथने माटे दोङ्या दता तेम." १४७ आ दृष्टांत प्रथम आवी गयेल छे.

भजाँवि इंदियविगार—दोसनडिया करेहैं पैइपावं ।

जहं सौं पएसिंराया, सूर्यिकंताइ तहं वहिओं ॥ १४८ ॥

अर्थ—"इंद्रियोना विकार संवंधी दोषयी विडंवित धयेली भार्या पण पतिरिंसास-प-पनिने पारी नाखवा स्वप पापने करे छे. जेम ते प्रदेशी राजाने तेनी सूरिकांता नापनी राणीए. विष देवा विगेरे वटे पारी नाख्यो तेम समजवुं." १४८ आ संबंध पण पूर्व आवी गयेल छे.

पाप—भावरं । भाविभिं गपार्य । याहुयदम्य ।

पाप—गपार्य । परिपार्य—परितिंशास्यं कर्य ।

सासयसुख्खतरसी, नियअंगसमुभवेण पिर्यपुत्तो ।
जहै सौ सेणिंयराया, कोणिंयरन्ना खयं निंओ ॥ १४९ ॥

अर्थ—“हवे पुत्रना स्नेहनुं पण व्यर्थपणुं वतावे छे. जेम शाश्वत सुख मेलववाने उत्पुक एवो ते श्रोणिक राजा भगवंतनां वचनमां रक्त अने क्षायक समकितधारी तेने पोताना अंगथीज उत्पन्न थेयला अने प्रिय-वहाला एवा पुत्रे कोणिक राजाए क्षय पमाद्यो—विनाश पमाड्यो तेम. ” १४७ अर्थात् पुत्रनो स्नेह पण एवो व्यर्थ समजवो. अहीं कोणिकराजानु दृष्टांत जाणावु.

कोणिक राजानु दृष्टांतः

शोभायमान घरोथी भरपूर अने नगरमां प्रसिद्ध एवा इभ्यजनोनी श्रेणीथीं पूर्ण एवुं राजगृह नामे एक शहेर हतुं. त्यां जिनेभक्तिमां रक्तचित्तवाळों श्रोणिक नामे राजा राज्य करतो हतो. ते श्रोणिक राजाने उत्तमशील अने लावण्यथीं भरपूर, सुंदर रूपवाळी, अत्यंत प्रीतिवाळी अने निर्मल गौर वर्णवाळी चिल्हणा नामे पद्मराणी हती. श्रोणिक राजा साथे पूर्व जन्ममां जेणे वैर वांध्युं छे अने जेणे पुष्कल तप कर्युं छे एवो कोइ जीव छीपनी अंदर जेम मोती उत्पन्न थाय तेम चिल्हणाना गर्भमां उत्पन्न थयो. पछी चिल्हणाने गर्भना प्रभावथी ब्रीजे महिने पोताना प्राणनाथना हृदयनुं मांस खावा रूप अशुभ दोहद उत्पन्न थयो, तेथी ते घणी दुर्वल थती गइ. राजाए राणीने दुर्वलता संबंधी आग्रहपूर्वक पूछयुं, त्यारे तेणे पोतानो दुष्ट विचार जणाव्यो. ते सांभली कामरागवडे राजाए तेने कर्णु के ‘हे कमलाक्षी ! तुं जरा स्वस्थ था.’ पछी राजाए ते वात अभय कुमारने करी. तेणे राजाना हृदय उपर अन्य प्राणीनुं मांस वांधी, छरीथी तेने कापीने राणीनो दोहद प्रपञ्चथी पूर्ण कर्यो. ते कृशांगीए क्रमे करी पुत्रने जन्म आप्यो अने ते जीवता पुत्रने अशोकवाढीमां कोइ दृक्षना मूळमां मूळयो. ते वात दासीमुखथीं सांभलीने राजाए स्नेह-वशे ते पुत्रने लह आवी पाछो राणीने सोंप्यो. राजाए हर्षथी प्रथम ते पुत्रनुं नाम प्रशोकचन्द्र पाडयुं. परंतु कुकडाए तेनी आंगलीने दंश कर्यो हतो तेथी ते वालक रक्त दंशने लीथे कोणिक नामथी ओळखावा लाग्यो. ते आंगलीनी वेदनाथी ते वालक गोटेथी रुदवा लाग्यो. तेथी राजाए ते आंगली पोताना मुखमां राखीने तेने समाधिवाळो फ्यो. वाल्यावस्था व्यतीत थतां तेणे अन्य राजपुत्रीनी साथे पाणिग्रहण कर्युं अने तेनी साथे विषयसुख भोगववा लाग्यो.

कोणिकने देवसद्वा हल्ल अने विहल्ल नामना वे-नाना भाइओ थया हता-
थ्रेणिक राजाए कुंडल, हार अने हस्ती रूप दिव्य वस्तुओ पोताना नाना पुत्र हल्ल
विहल्लने आपी. तेथी इर्पा उत्पन्न थवाने लीधे कोणिके पोताना पिताने काष्ठना पिंजरामां
नांगऱ्यो अने पोते राजा थयो. पछी ते दररोज कोरडाना मारथी पिताने प्रहार करवा
लाग्यो. अन्यदा कोणिक राजानी पत्नी पञ्चवतीए एक सुंदर पुत्रने जन्म आप्यो. ते
पुत्र वे वर्षनों थयो त्यारे कोणिक राजा तेने पोताना खोलामां वेसाडी पुत्रना मुक्रथी
मिथ्र अन्न खावा लाग्यो. पुत्रना मोहने लीधे तेने जरा पण जुगुप्सा उत्पन्न थइ नहि. पछी
तेणे पोतानी मातानी पासे जड ते वात कहीने पृछचुं के 'हे माता ! मने आ पुत्र केवो मिय
छे ?' ते सांभळीने माताए कल्युं के 'हे क्रूरमते ! आ तारो ते शो स्नेह हे ? तारा पिता-
नो स्नेह प्रथम तारा उपर आ करतां पण अत्यंत विशेष हतो.' आ प्रमाणे पोतानुं पूर्व
दृक्षांत पोतानी माताना मुखथी सांभळीने पोताना पिताने कारागृहमां नांखवा रूप पोताना
निंय क्रमने निंदतो सतो ते कुहाडो लड्हने जलदी पांजराने भांगवा माटे चाल्यो. पोताना
पुत्रने एवी रीते आवतो जोइ भयभ्रान्त बनेला थ्रेणिक राजा तालपुट विपना प्रयोग-
थी पोताना आयुप्यने पूर्ण करी समाकितना लाभथी अगाड वांधेली पहेली नरक पृथ्वीने
प्राप्त थया, अर्थात् पहेली नरके गया. कोणिक राजा पोताना पिताने मृत्यु पामेला जोइ
अन्यंत रुदन करवा लाग्यो. तेणे प्रेतविधि करी. त्यार पछी तेना मुख्य सामंतोए अनेक
ग्रकारना प्रयोगोयी कोणिक राजाने शोकथी निवृत्त कयों.

पछी पोतानी प्रियाथी प्रेरित थयेला कोणिक राजाए पेळी त्रणे दिव्य वस्तुनी
हल्ल विहल्लनी पासे मागणी करी. एठले हल्ल ने विहल्ल ते वस्तुओ तथा अन्य सारभूत पदा-
र्थो लड्हने पोतानी माताना पिता चेढा राजा पासे गया. वलयी उद्धत थयेला अने अति
अभिमानी कोणिक राजा घणां युद्धो करी पापथी कराता अनेक आरंभोमां रक्त थइ
आयुप्य पूर्ण करीन छट्टी नरके गयो.

ए प्रमाणे पुत्रनो स्नेह पण कुत्रिम छे, एवो आ कथानो उपदेश छे.

त्रुद्धा सकज्जुरिआ, सुहिंणोवि विसंवैयंति कयकज्जा ।

जहं चंद्रगुत्तंगुरुणा, पञ्चर्यओ धायंओ राया ॥ १५० ॥

अर्थ- " दुर्घ, पोतानुं कार्य करवामां त्वरित अने करी लीऱ्युं छे पोतानुं कार्य
केंगे एता न्यजनो-मित्रो पण विपरीत चोले छे-विपरीत करे पण छे. जेप चंद्रगुप्त राजाना

गुह-चाणाक्य नामना मंत्रीए (पोतानुं कार्यं थइ गया पछी राज्यलुभ्यपणाथी पोताना मित्र एवा) पर्वत-नामना राजानो धात कर्यो ॥ १५०. अर्हं चाणाक्यनो संवेद जाणवो । ४६,

चाणाक्यनु वृत्तांतः

चणक नामना गाममां चणी नामे ब्राह्मण वसतो हतो. तेने चणेश्वरी नामे ही हती. वेने जैन हता अने जिनभक्तिमां भ्रातिवाळा हता. एक दिवस तेमने दांत साथे पुत्र जन्म्यो. तेनुं नाम चाणाक्य पाढ्यु. ए समये तेमने घेर साधुओ आव्या. एटले तें वाळकने साधु महाराजना चरणमां मूर्कीने चणी भटे पूछ्यु के ‘हे भगवन् ! मारे घेर आ पुत्र दांत सहित जन्म्यो छे तेनुं शुं कारण ? तेनुं महात्म्य शुं हशे ?’ साधु मुनिराजे कह्युं के ‘ते राजा थशे.’ त्यारे मातापिताए विचार कर्यो के ‘आ छोकरो लंबा वखत सुधी राज्यमां आसक्तिवाळो थवाथी जस्तर नरके जशे.’ एवुं जाणी तेओए पुत्रना दांत घसी नाख्या. पछी फरीने मुनिने पूछ्यां मुनिराजे कह्युं के ‘दांत घसवाथी ते कोइ राजानो मंत्री थशे अने कोइने अग्रेसर करीने पोते राज्यपालन करशो.’ पछी चाणाक्य केटलेक काळे मोटो थवाथी, सर्वे विद्यामां कुशल थयो. यौवनावस्था प्राप्त थतां उत्तम द्विजपुत्रीनी साथे पाणिग्रहण करी सांसारिक सुख भोगववा लायो. एक दिवस चाणाक्यनी पत्नी पोताना भाइना लग्यप्रसंगे पिताने घेर गइ, परंतु सामान्य वेष्वाळी ने धनरहित होवाथी पिताने घेर पण तेने योग्य सन्मान मब्युं नहि. तेनी वीजी वहेनो त्यां आवेली हती. तेओए घणां घरेणां अने सुंदर कपडां धारण करेलां होवाथी भाइए तेमने वहु सन्मान आप्युं. ‘अहो ! आ जगतनुं मूळ कारण धनज छे.’ कह्युं छे के—

जातिर्यातु रसातलं गुणगणस्तस्याप्यधो गच्छतां

शीलं शैलतटात्पतत्वभिजनः संदह्यतां वहिना ।

शौर्ये वैरिणि वज्रमाशु निपतत्वर्थोऽस्तु नः केवलं

येनैकेन विना गुणास्तृणलवप्रायाः समस्ता इमे ॥

“ जाति रसातलमां जाओ अने गुणसमूह तेथी पण नीचे जाओ, शील पर्वतना शिखर उपरथी नीचे पडो, सगांवहालां अझिथी वळी जाओ, शूरवीरपणा उपर जल्दी वज्र पडो, परंतु अमने मात्र धन मळो; केमके एक धन विना आ समग्र गुणो तृणलव अवा छे.”

वीजी वेनोने तेनो भाइ सघलां कार्यो विगोरेमां पण पूछेछे, परंतु चाणाक्यनी ती जे पोतानी वेन तेनी तो सामुं पण जोतो नयी; तेथी ते खेद करती सती

परने खुणे वेसीने विचारे छे के 'मारा धनरहित जीवनने धिकार छे !' कारण के सगा भाइए पण ते कारणयी पंक्तिभेद कर्यो.' पछी विवाहतुं कार्य समाप्त थये रिवत्र मने ते पोताने घेर आवी. चाणाक्ये पृछतुं के 'तुं उद्गेग मनवाली केम जणाय छे ?' एटले तेणे सवलुं भ्रातृस्वरूप निवेदन कर्यु. ते सांभली चाणाक्ये मनमां विचार कर्यो के 'निर्धन एवी मारी खीने तेना सगा भाइए पण आदर आप्यो नहिं तेथी हुं धन मेळवीन मारी खीनो मनोरथ पूर्ण करीश.' एम चितवी ते परदेश चाल्यो. फरतां फरतां पाटलीपुर नगरमां नंद राजाने याचवा माटे गयो. त्यां राजसभामां राजातुं मुख्य आसन हतुं तेना उपर जड्ने वेषो. दासीए कहुं के 'हे ब्राह्मण ! आ राजातुं भद्रासन छोडीने अन्य आसन उपर वेसो.' त्यारे चाणाक्ये कहुं के 'ते अन्य आसन उपर मारुं कमङ्डल रहेश.' ए प्रमाणे कही तेणे तेना उपर पोतानुं कमङ्डल मूकयुं. पछी दासीए त्रिजुं आसन बताव्युं. त्यारे चाणाक्ये कहुं के 'ते आसन उपर मारो दंड रहेश.' एम कही त्यां दंड मूक्यो. त्यारे दासीए चोशुं आसन बताव्युं. त्यां तेणे माला मुकी त्यारे दासी ए पांचमुं आसन बताव्युं. त्यां तेणे यज्ञोपवीत मूकयुं. ए प्रमाणे तेणे पांच आसनो रोक्यां, त्यारे कोपित थयेली दासीए कहुं के 'अरे ! तुं कोइ मोटो धृष्ट देखाय छे. कारण के प्रथमतुं भद्रासन तुं छोडतो नथी ने नवां नवां आसनो रोके छे.' पक्की दासीए तेने पादप्रहार कर्यो. तेथी पादप्रहार करायेला सर्पनी माफक क्रोधथी उभो थड्ने ते घोल्यो के 'हे दुष्ट चाकरडी ! तुं अत्यारे मारी अवगणना करे छे, परंतु ज्यारे परंपराथी आवेला नंदना राज्यने उखेडी नांखी आ स्थाने नवीन राजाने वेसाहु त्यारेन मारुं नाम चाणाक्य खरुं.' ए प्रमाणे कही नगरनी बहार नीकली मनमां विचार करवा लायो के 'प्रथम साहु मुनिराजे मारी वावतमां कहुं छे के 'आ वालक विचांतरित राजा यशे.' माटे हुं राजा यशा लायक कोइ पुरुपने शोधी काहुं.' ए प्रमाणे विचारी यणां गायो ने नगरो जोतो जोतो नंद राजाना मयूरपालकना गायमां आव्यो, अने सन्यासीना वेपे भिक्षा अर्थं फरवा लायो. त्यां मयूरपालकनी खीने गर्भना पाहात्म्ययी त्रीजे महिने चंद्रपान करवानो दोहद थयो छे. ते दोहद कोइ पण उपाययी पूर्ण यवातुं अशक्य थारी ते पोताना भर्तारने कहेती नथी, अने दिवसे दिवसे दुर्वल गर्भी जाय छे. पक्की तेना भर्तारि तेने आग्रह्यी पृछतुं एटले तेणे यथार्थी दोहदन नगरायी. मयूरपालक पण चाणाक्यने जोइ दोहदने पूर्ण करवानो उगाय तेने पृछत्या आयो. त्यारे चाणाक्ये नेने कहुं के 'जां ए गर्भमां रेह्यो पुत्र मने आपो

गर्भनो—वेनेनो विनाशं थशे।' ए प्रमाणे सांभली पंचनी समक्ष पुत्र आपवानु कबुल्क कर्युः एटके चाणाक्ये एक घासतुं घर बनाव्युः अने तेना उपर एक छिद्र राख्युः एक माणसने क्रमेक्रमे छिद्र हांकवा माटे एक हांकणुं आपी ते घर उपर राख्यो अने घरनी अंदर गर्भवती स्त्रीने राखी। पछी ज्यारे पूर्णिमानो चंद्र अर्ध रात्रिए आकाशना मध्य भागमां आव्यो त्यारे दृधनी भेरेली थाली लइ ते स्त्रीनी आगळ मूकी, अने ते थालीमां चंद्रनुं प्रतिविव पड्युः त्यारे चाणाक्ये कहुँ के 'हे भाग्यवती ! तारा भाग्यथी आ चंद्र अत्र आव्यो छे, तेथी हर्षित थइ तेनुं पान कर.' ए प्रमाणे कहेतां तेणे चंद्रनुं पान करवानी शरुआत करी। जेम जेम ते दुधनुं पान करती हती तेम तेम छापरा उपर रहेलो माणस पेला हांकणवती छिद्रने हांकतो हतो। थालीनी अंदर रहेला प्रतिविवित चंद्रनुं संपूर्ण पान थयुः एटले पेलु छिद्र पण पूर्ण ढंकाइ गयुः तेनो दोहद पूर्ण थयो कारणके ते समजी के 'मैं चंद्रनुं पान कर्युः' ए प्रमाणे तेनो दोहद पूर्ण करी 'आ गर्भ राज्यनो अधिपति थशे' एम निश्चय करी चाणाक्य धातुविद्या शिखवाने माटे देशांतर गयो।

देशाटन करतां केटलेक काळे चाणाक्ये स्वर्णसिद्धि मेल्वी। अहीं पेली वाइ पुत्र प्रसव्यो, तेनुं चंद्रगुप्त नाम पाड्युः अनुक्रमे ते आठ वर्षनो थयो, ते गाममां सरखी वयना वाल्को साथे क्रीडा करेछे; तेमां पोते राजा थायेहे अने कोइने गाम आपेहे, कोइने देश आपेहे अने कोइने किल्लानुं अधिपतिपणुं आपेहे, तेवा वखतमां चाणाक्ये पण त्यां आवीने ते जोयुः, अने तेनो पासे याचना करी के 'हे राजन ! सवल्लाओने ज्यारे तुं मनवांछित आपेहे त्यारे मने पण कांइक वांछित आप.' त्यारे चंद्रगुप्त वोल्यो के 'आ सघली गायो हुं तने आपुंछुं ते तुं ग्रहण कर.' ए प्रमाणे सांभलीने चाणाक्य वोल्यो के 'आ वधी पारकी गायो छे ते माराथी केम लइ शकाय ?' त्यारे चंद्रगुप्त कहुँ के 'जे समर्थ होय तेनीज आ पृथ्वी छे.' त्यारे चाणाक्ये छोकराओने पूछ्युः के 'आ वाल्क कोनो छे ?' वाल्कोए कहुँ के 'एक परिवाजकने आपेलो अने चंद्रपानना दोहदथी उत्पन्न थेयेलो चंद्रगुप्त नामनो आ वाल्क छे.' ए सांभलीने चाणाक्ये चंद्रगुप्तने कहुँ के 'हे वत्स ! जो तारे राज्यनी इच्छा होय तो मारी साथे चाल, हुं तने राज्य मेल्वी आपीश.' ए प्रमाणे कही चंद्रगुप्तने साथे लइ चाल्यो, अनुक्रमे धातु विद्यावडे धन उत्पन्न करी थोडुं सैन्य मेल्वी पाठलीपुरने वेरो वाल्यो, नंदराजाए पोताना मोटा सैन्यथी ते सैन्यने पराजित कर्युः, तेथी चाणाक्य चंद्रगुप्तने लइने नासी गयो, नंदराजाए तेने पकडवाने पाठल सैन्य मोकल्युः, तेमांनो एक स्वार नजीक आवी पदोन्न्यो, त्यारे चंद्रगुप्तने सरोवरमां राखीने चाणाक्य पोते ध्यान धरी योगी धड्ने वेगो, ते वखते ते स्वारे आवीने पूल्युः के 'हे योगीभर ! नंदराजाना वैरी चंद्रगुप्तने जतां तमे

जोयो छे ?' चाणाक्ये आँगलीनी संज्ञार्थी सरोवरमा रहेला चंद्रगुप्तने बताव्यो. तेने पक्ष डब्बाने माटे घोडा उपरथी उतरीने ते स्वार लूगडां ने शत्रो उतारी जळमां प्रवेश करेहे तेवामां चाणाक्ये उठीने ते स्वारतुं मस्तक तेनाज खड्गार्थी छेदी नांख्युं. पछी चंद्रगुप्तने बोलावी तेना घोडा उपर वेसाईने तेओ आगळ चाल्या. मार्गमां चाणाक्ये चंद्रगुप्तने पूछ्युं के 'हे बत्स ! मैं ज्यारे तने अंगुलिसंज्ञार्थी बताव्यो त्यारे तने शो विचार आव्यो ?' चंद्रगुप्त कर्णु के 'हे तात ! मैं विचार्यु के आपे जे कर्यु हशे ते व्याजबीज कर्यु हशे.' ए प्रमाणे सांभलीने चाणाक्ये चिंतव्युं के 'आ चंद्रगुप्त सुशिष्यनी ऐ आजांकित थशे.'

चाणाक्य अने चंद्रगुप्त ए प्रमाणे बातचित करतां चाल्या जता हता, तेवामां एक वीजो स्वार तेओनी पाल्ल आव्यो. फरीर्थी पण चंद्रगुप्तने सरोवरमां राखीने लूगडां धोता धोवाने भय देखाई नसाई मुकीने चाणाक्य पोते धोवी बनी लूगडां धोवा लाव्यो. ए बखते घोडेस्वारे आवीने पूछ्युं के 'चंद्रगुप्त क्यां छे ?' त्यारे चाणाक्ये पूर्ववत् अंगुलिसंज्ञार्थी तेने तलावमां बताव्यो अने प्रथम प्रमाणे तेनुं पण माझुं कापी नांख्युं. पछी वेने जण वेड घोडा उपर स्वार थइ आगळ चाल्या. मध्याहे चंद्रगुप्तने भूख लागी. त्यारे चंद्रगुप्तने गामनी बहार राखी चाणाक्य गाममां आव्यो, ते बखते तेनी सामो दर्हांभात खाइने आवतो व्रायण मल्यो. चाणाक्ये पूछ्युं के 'अरे भट्ठी ! आपे कुं भोजन कीर्थुं छे ?' तेणे कर्णु के 'मैं दर्हांभात खाधा छे.' पछी चाणाक्ये विचार कर्यो के 'गाममां भिजाने माटे फरतां मने घणी वार ल्यागशे, तेथी नंद राजाना पाल्ल आवता योद्धाओ बखते चंद्रगुप्तने पकडीने मारी नांखे; माटे आ व्रायणतुं पेट चीरी दर्हांभातनो पर्यायो भरीने लइ जाउं.' एम विचारी ते प्रमाणे करी ते करंवावडे चंद्रगुप्तने जमाईने संव्यासमये कोइक गाये पद्मोच्या. त्यां भिजा अर्थं भिज्ञुकवेषे कोइ एक शुद्ध गीने घेर गया. ते अवसरे ते शुद्धाप पोतानां वाल्ककोने उनी राव पीरसेली हंती, नेमांथी एक वाल्क थार्लिना मध्य भागयां हाय नांख्यार्थी वल्लयो ने रड्या ल्यायो. न्यारे शुद्धाप कर्णु के 'तनं धिल्लर छे ! तुं पण चाणाक्ययनी पेटे शामाटे मूर्ख भागले ?' ते वचनो सांभलीने चाणाक्ये ते वाइने पूछ्युं के 'हे माना ! चाणाक्य केही ईनि भाग गयो ते वात कडो.' तेणे कर्णु के सांभल— 'आगळनां, पाल्लनां ने पट्टवे आपेक्षा गामो ने तगरोने गाल्या विवाय चाणाक्य पट्टनोन पाट्टनीपुत्र गयो पट्टने ते दायां ने भागी ज्यां पट्टयुं. तेथी गीने आ मार्गे पुत्र गय वाजुमां, मर्ट्टी ठंडी रावने झोटीने पर्यायों रहेई उनी रावमां हाय नांख्यार्थी दाश्यो, नेमी ज्ये छे.' पछी ते शुद्धाप आपेक्ष दुर्दण घनमो याद गर्नीने चाणाक्य दिलाउन तरफ गयो. त्यां तेणे पर्यंत नामना ग

जानी साथे मैत्री करी. केटलाक दिवस गया पछी पर्वत राजाने अर्द्धं राज्य आपवुं कबुल करी मोटुं सैन्य मेलवी आसपासना अनेक देशोने साधीने पछी चाणाक्य पाटलीपुत्र आव्यो. नंदराजानी साथे मोटुं युद्ध थयुं. तेमां नंदराजा हायों. तेथी तेणे धर्मद्वार मार्गी कीयुं, एटले पोताने नीकली जवानो रस्तो आपवानी याचना करी. चाणाक्ये ते बात स्वीकारी तेथी ते रथमां वेसी पोतानी त्वी, पुत्री अने थोडुं सारभूत द्रव्य लह नगर बहार नीकली गयो.

ते वर्खते रथमां बेठेली नंदराजानी पुत्री नगरमां प्रवेश करता चंद्रगुप्ततुं लावण्य जोइ मोह पामी. नंदराजाए ते जाण्युं, एटले चंद्रगुप्त उपर पुत्रीनो स्नेह जोइ नंदराजाए तेने पोताना रथमांथी उतारी मूकी. ते तरतज चंद्रगुप्तना रथ उपर चढी गइ. ते वर्खते रथना नव आरा भांगी गया. ते जोइ चंद्रगुप्ते चाणाक्यने कहुं के 'हे पिताजी ! नगरप्रवेश वर्खते आ अपशुकन थायछे.' चाणाक्ये कहुं के 'हे वत्स ! आ शुभ शुकन छे, कारणके रथना नव आरा भांग्याछे तेथी तारुं राज्य नव पुरुष सुधी (नव पेढी सुधी) स्थिर थये.' पछी नगरमां आवी चंद्रगुप्ते नंदराजानी पुत्री साथे पाणिग्रहण कर्युं.

नंदराजा राज्यमहेलनी अंदर एक रुपवती विषकन्या मूकी गयो हतो. तेने चाणाक्ये अनुमानथी दोपवडे दूषित जाणीने पर्वत राजानी साथे परणावी. तेना अंगना स्पर्शथी पर्वत राजानुं शरीर विषव्याप्त थइ गयुं. ते वर्खते चंद्रगुप्ते कहुं के 'आ पर्वत राजानी सहायथी आपणे राज्य मेलच्युं छे अने आ मित्र मरी जायछे, माटे तेनी चिकित्सा करवी जोइए.' चाणाक्ये कहुं के 'चिकित्सा करवाथी सर्युं, औषध विना व्याधि जायछे.' आ प्रमाणे कार्य साधी मरता मित्र प्रत्ये तदन वेदरकारी वतावी. तेथी मित्रस्नेह पण कृत्रिम छे, ऐसो आ कथानो उपदेश छे.

निययावि निययकज्जो, विसंवैयंतंमि हुंति खरफँरसा ।

जहं राम सुभूमकओ, वंभ खत्तस्स आंसि खंओ ॥ १५१ ॥

अर्थ—“पोताना स्वजनो पण पोतानुं कार्य विघटमान थये सते अर्थात् धार्या प्रमाणे सिद्ध नहि थये सते खर के० रौद्र कर्मना करनारा अने फरस के० कर्कश वचनो बोलनारा थायछे. जेम राम ते फरसुराम अने सुभूम चक्रवर्तीनो करेलो ब्राह्मणो अने क्षत्रियोनो क्षय थयो तेम.” १५१. परशुरामे सात वर्खत निःक्षत्री पृथ्वी करी, ने सुभूमे एकवीथ वर्खत अब्राह्मणी पृथ्वी करी. पोताना कार्यनी सिद्धिने माटे आं प्रमाणे मोटो क्षय कर्यो, जेमां पोताना स्वजनोनो पण क्षय थइ गयो. माटे स्वजनस्नेह पण व्यर्थ छे, अर्हं परशुराम ने सुभूमनो संवंध जाणवो. ४६

परशुराम अने सुभूमनी कथा ॥

मुर्धमा नामना देवलोकमां विश्वानर अने धन्वंतरि नामना वे मित्रदेवो हता। पदेलो जैन हतो अने वीजो तापसभक्त हतो, तेओ परस्पर धर्मवार्ता करता सता पोतपोताना धर्मने बखाणता, तेनो निर्णय करवा माटे धर्मनी परीक्षा करवाना हेतुथी तेओ मृत्युलोकमां आव्या, ते समये मिथिका नगरीनो राजा पद्मरथ राज्य छोडीने श्रीबासु-पूज्य मुनिनी पासे चारित्र ग्रहण करवाने जतो हतो, नवीन भावचारित्रिवाला तेने जोइने जैनदेवे काणुं के 'प्रथम आपणे आनी परीक्षा करीए, पछी तमारा तापसनी परीक्षा करीणुं,' पछी भिक्षाने माटे अटन करता ते नवीन भावचारित्रिने अनेक प्रकारनी उत्तम रसवती बतावी, पण ते भावसाधु सच्चथी चलित थया नहि, पछी वीजी शेरीमां जतां तेना मार्गमां चारे तरफ देइकीओ विकुर्वी अने वीजे रस्ते कांटा वेर्या, पद्मरथ भावमुनि मंड़कीवालो मार्ग तजी दइ कांटावाला रस्ते चाल्या, ते बखते कांटा पगमां गोंकावायी लोहीनी धारा बहेवा लागी अने अत्यंत वेदना थवा लागी, परंतु तेओ जरा पण खिन्न थया नहि, तेमज ईर्यासमितिथी चालतां लेशमात्र पण क्षोभ पाम्या नहि, पछी वीजी चार देवे निमित्तियो थइ हाथ जोडी विनय पूर्वक काणुं के "हे भगवन ! तमे दीक्षा लेवाने जाओयोछो, पण हुं निमित्तना प्रभावथी जाणुन्छुं के नमारं आयुष्य हजु लांचुं छे अने तपने युवावस्था भास थइछे तो हमणा राज्यमां रही विविध प्रकारना भोग भोगवो, पछी वृद्धावस्थामां चारित्र ग्रहण करजो; कारणके ते वधारे सारु छे, वली आ सरस विषयोनो स्वाद क्यां अने रेतीना कोलीआ जेवो आ विरस योगमार्ग क्यां ?" त्यारे भावसाधुए काणुं के 'हे भव्य ! जो मारुं आयुष्य छांचुं होय तो वधारे सारु, हुं घणा दिवस मुवी चारित्र पाळीश, जेथी मने मोटो लाभ भये, वली धर्म संवर्धी उग्रम तो युवावस्थामांज करवो जोइण, आगममां पण काणुन्छे के-

जरा जावं न पीडेर्ड, वाही जाव न वद्वेर्ड ।

जाविंदिआ न हायंति, ताव सेयं समायरे ॥

" ज्यांमुखी जरा पीता करे जहि, ज्यांमुखी कोइ प्रकारनो व्याधि थाय नहि, अने ज्यांमुखी ईद्रियो जानि पांम नहि त्यांमुखीमां धर्म आचरवो. ", वृद्धावस्थामां ग्रस्त थंयलो मनुष्य ईद्रियो निर्वल थवार्थी धर्मकरणीमां उग्रम केवी रिते करी शके ? " काणुं छे के-

दंतैस्त्रज्जलितं धिया तगलितं पाण्यंत्रिणा कंपितं

दृग्भ्यां कुड्डलितं बलेन द्वलितं दृपथिया प्रोपितम् ।

प्रासाद्या यमभूपतेरिहमहाधाट्या जरायाभियं तृष्णा केवलभेककैव सुभट्टी हृत्पत्तने नृत्यति ॥

“ यम राजानी मोटी धाढ़रूप आ वृद्धावस्था प्राप्त थतां दांत हालेछे, बुद्धि नष्ट थायछे, हाथपग कंपेछे, नजर क्षीण थायछे, बळ जतुं रहेछे अने रूप तथा क्लावण्य चाल्युं जायछे, मात्र तृष्णा एकलीज सुभट्टुं आचरण करती सती हृदयरूपी नगरमा नृत्य करी रहेछे. ”

आ प्रमाणे ते भावसुनिनी दृढ़ता जोइ वने देव खुशी थया अने प्रशंसा करवा लाया. पछी जैनदेवे तापसदेवने कहुं के ‘जैनोतुं स्वरूप जोयुं ? हवे आपणे तापसनी परीक्षा करीए.’ ए प्रमाणे कही तेओ वनमां गया. त्यां तेओए एक जटाधारी, वृद्ध, तीव्र तप करतो अने ध्यानमां आरूढ थयेलो यमदग्नि नामनो तापस जोयो. तेनी परीक्षा करवा भाटे ते देवो चकला चकलीतुं रूप धारण करी तेनी दाढीनी अंदर मालो बांधीने रहा. पछी चकलो मनुष्यवार्णीयो वोल्यो के ‘हे वाला ! तुं अत्र सुखव्यथी रहे, हुं हिमालय पर्वते जइने आवृद्धुं.’ त्यारे चकलीए कहुं के ‘हे प्राणनाथ ! हुं तमने जवा दइश नहि; कारण के तमे पुरुषो ज्यां जाओछो त्यां लुब्ध थइ जाओछो. जो तमे पाढा न आवो तो मारी शी गति थाय ? हुं अवळा एकली अहीं केम रही शकुं ? तमारो वियगे माराठी केवी रीते सहन थइ शके ?’ ते सांभळी चकलाए कहुं के ‘हे वाला ! तुं शामाटे कदाग्रह करेछे ? हुं जलदी आवीश. जो हुं आवृं नहि तो मने ब्रात्यणनी, त्वीनी, वाळ-कनी ने गायनी हत्यातुं पाप लागे.’ त्यारे चकलीए कहुं के ‘हुं सोगनो मानती नथी. पण जो तमे न आवो तो यमदग्नि तापसर्तुं पाप मस्तक उपर धारण करो तो हुं तमने जवा दुर्चं.’ त्यारे चकलो वोल्यो के ‘तुं एम वोल नहि. एनुं पाप कोण अंगीकार करे? ए वचनो सांभळीने यमदग्नि ध्यानयी चलित थयो अने क्रोधवश थइ चकला चकलीने पकडी कहेवा काग्यो के ‘मारूं शुं एटलुं वधुं पाप छे?’ चकलीए कहुं के ‘हे मुनि ! क्रोध करो नहि. आपनां धर्मशास्त्र जुओ. कारण के—

अपुत्रस्य गतिर्नास्ति, स्वर्गे नैव च नैव च ।

तस्मात् पुत्रसुखं दृष्टा, स्वर्गे गच्छन्ति मानवाः ॥

“ पुत्र विनाना माणसनी सद्गति थती नथी, अने स्वर्गमां तो तेनी गति ढेज हि. तेथी माणसो पुत्रतुं मुख जोइने स्वर्गमां जायले.”

तमे पुत्ररहित छो तो तमारी शुभ गति केवी रीते थाय ? तेथी तमारे पातक

मोटुं छे. ' ए प्रमाणे कही परीक्षा करीने देवो पोताने स्थाने गया, अने मिथ्याद्यष्टि देव हतो ते पण परम जैन थयो.

तेमना गया पछी यमदग्नि पण पक्षिना मुखनां बचनो सांभळीं विचार करवा लायो के ' एमणे कही ते वावत खरी छे, तेथी कोइ स्त्रीनी साये पाणिग्रहण करी पुत्र उत्पन्न कर्ह तो मारी शुभ गति थाय. ' ए प्रमाणे विचार करी कोष्ठक नगरना राजा जिनशान्तु समीपे जइ एक कन्या मारी. त्यारे राजाए कलुं के ' मारे सो पुत्रीओ छे, तेओमांयी जे तमने पसंद करे ते कन्या तमे ग्रहण करो. ' ते सांभळीने यमदग्नि अंतः पुरमां आव्यो. त्यां रहेली सर्वे कन्याओए जटाघारी, दुर्वल, मलथी मलीन गात्रवाला अने विपरीत स्वपवाला यमदग्निने जोइने शुशुकार कर्यो (शुंकी). तेथी तेणे क्रोधवश थड्ने ते सर्व कन्याओने कुञ्जा करी नांखी. पाढ्या वलतां तेणे महेलना आंगणामां धूलमां रमती एक राजपुत्रीने जोइ, तेने तेणे वीजोरुं वतान्युं; एटले ते लेवाने तेणे लांबो हाथ कर्यो, तेथी तापसे राजा पासे जइने कलुं के ' आ कन्या मने इच्छेछे. ' एम कहीने तेने ग्रहण करी. भय पामेला राजाए हजार गायो ने केटलाक दासदासीओ सहित ते पुत्री तेने आपी; तेथी प्रसन्न थयेला त्रिपिए शेप रहेला पोताना तपनी शक्तियी पेली सर्व कुञ्जा राजपुत्रीओने सारी करी. ए प्रमाणे सर्व तपने खपावी रेणुका वालाने लइने ते वनमां आव्यो. त्यां एक झुंपटी बनावीने तेओ रहा.

अनुक्रमे रेणुका यौवनवती थह, एटले तेनी साये तेणे पाणिग्रहण कर्युं प्रथम कलुकाले यमदग्निए रेणुकाने कलुं के ' हे मुलोचना ! सांभळ, तारे माटे एक चरु मंत्रीने तने आपुंदृं, ते खावायी तने एक मुंदर पुत्र थशे. ' त्यारे रेणुकाए कलुं के ' हे स्वामिन् ! वे चरु मंत्री आपो के जेमांना एक चरुयी व्रात्यणपुत्र थाय अने वीजायी क्षत्रियपुत्र थाय, मुंद्र क्षत्रियचरु हुं खादश. ' ए प्रमाणे रेणुकाना कहेवायी यमदग्निए वे चरु मंत्री पोतानी स्त्रीने आप्या, पछी रेणुकाए विचार कर्यो के ' मारो पुत्र शुरुवीर थाय तो सारं. ' एम निजारी तेणे क्षत्रियचरुं भक्षण कर्युं अने व्रात्यणचरु तेनी वेन अनंगसेनाने मोकल्यो. नेणे ते खायो, तेने एक पुत्र थयो तेनुं नाम कीर्तिवीर्य पाठ्युं, रेणुकाने पुत्र थयो नेनुं नाम राम पाठ्यामां आच्युं.

गम युक्त थयो एवामां अनिसास्ता रोगी पिटिज एक विषाधर ते आथ्रमर्म आप्यां, राम तेनो सन्तार कर्यां अने औपयना प्रयोगयी तेने स्वत्य कर्यां, तेथी ने विशाधरं प्रमद्य गमने गमने परशुविग्रा आपी. तेणे परशुविग्रा सारी, तेथी ने परशुरामना नाम-

थीं प्रसिद्ध थयो. पछी देवताथी अधिष्ठित थयेली परशु (कुहाड़ी) ने लड़ने अजय्य एवो ते ज्यां त्यां फरवा लाग्यो.

अन्यदा परशुरामनी माता रेणुका हस्तीनापुरमां पोतानी बेनने मळवा अर्थे गइ. त्यां पोतानी बेनना पति अनंतवीर्यनी साथे संवंध थवाथी तेने गर्भ रहो. अनुक्रमे तेने पुत्र थयो. पछी पुत्र सहित रेणुकाने यमदग्निए पोताना आश्रममां आणी. परशुरामे मातानुं दुष्चरित जाणी पोतानी पुत्रवती माताने मारी नांखी. आ खवर अनंतवीर्यने पेढवाथी तेणे त्यां आवी यमदग्निना आश्रमने भांगी नांख्यो. तेथी क्रोधित थयेला परशुरामे परशुर्थी अनंतवीर्यनुं मस्तक छेदी नांख्युं. पछी तेनो पुत्र कीर्तिवीर्य राज्याधिकारी थयो. तेणे पितानुं वेर वाळवा माटे परशुरामना पिता यमदग्निने मारी नांख्यो. तेथी परशुरामे त्यां जइ परशुरामा प्रभावथी कीर्तिवीर्यने हणी हस्तीनापुरतुं राज्य लड़ लीदुं. ते वरवते चौद श्वमथी सूचित गर्भ जेणे धारण कर्यो छे एवी कीर्तिवीर्य राजानी तारा नामनी स्त्री पोताना पतिना भरण समये नासी गइ. ते वनमां तापसोना आश्रमे पहांची. त्यां जइ तेणे तापसोने पोतानुं सर्व स्वरूप (वृत्तांत) कहुं. दयाथी अर्द्ध चित्तवाळा तापसोए तेने गुप्तरीते भोयरामां राखी. अनुक्रमे तेने त्यां पुत्र थयो. तेनुं सुभूम नाम पाड़युं. अनुक्रमे ते मोटो थवा लाग्यो. परशुरामे क्षत्रियो उपर क्रोध करीने सात वार नक्षत्री पृथ्वी करी अने मारेला क्षत्रियोनी दाढोने एकठी करीने एक थाळ भरी मूकयो.

एक दिवस फरतो फरतो परशुराम पेला तापसोनी हुंपडीए आव्यो, त्यारे परशुर्नी अंदरथी ज्वाला नीकलवा लागी. तेथी परशुरामे तापसोने पूछ्युं के ‘खर्ह वोलो, कोइ पण क्षत्रिय अहीं छे ? कारणके मारी परशुरामांथी अंगारा वर्षे छे.’ त्यारे तापसोए कहुं के ‘अमे क्षत्रियो छीए. परशुरामे तपस्वीओ धारीने तेमने छोडी दीधा. ए प्रमाणे सर्व क्षत्रियोने मारीने ते निष्कंटकपणे हस्तीनापुरतुं राज्य भोगववा लाग्यो. एक दिवसे परशुरामे कोइ निमित्तियाने पूछ्युं के ‘मारू मृत्यु कोनाथी थशे ?’ निमित्तिके कहुं के ‘जेनी दृष्टिथी आ क्षत्रियोनी दाढो क्षीररूप थइ जशे अने तेनुं भोजन जे करशे ते तमने मारयो.’ ते सांभळीने परशुरामे पोताना मारनारने ओलखवा माटे एक दानशाला शी अने त्यां सिंहासन उपर दाढोनो थाळ मूकयो.

अहीं वैताड्यवासी मेघनाद नामना विद्याधरे निमित्तियाना कहेवांथी पोतानी नो वर सुभूम थशे एम जाणीने त्यां आवी सुभूमने पोतानी पुत्री अर्पण करी, अने तेनो सेवक थइ त्यां रहो. एक दिवस सुभूमे पोतानी माताने पूछ्युं के ‘हे माता ! शुभूमि आटलीज छे ?’ एवा पुत्रना शब्दो सांभळीने नेत्रपां अशु लावी गढ-

गदे स्वरपूर्वक तारा रणीए पूर्वनी सवंत्री हकीकत जणावीने कहुँ के हे पुत्र! तारा पिता अने पितामहने हणीने तथा सर्व क्षत्रियोनो नाश करीने परशुराम आपणु राज्य भोगेव हे, अने तेना भयवी नासीने आपणे आ तापसनो आथ्रय करी भोंयराम रथा दीए। ए प्रमाणे माताना मुख्यी सांभलीने सुभूम क्रोधित थइ एकदम भोंयरामांची बहार नीकल्यो, अने मेघनाद साथे हस्तीनापुर जड दानशाळाए आव्यो, ते वर्खते दाढोनो थाळ सुभूमनी दृष्टि पडतां ते दाढोनी क्षीर थइ गइ, एटले ते क्षीर सुभूम खावा लाग्यो, परशुरामे ते वात जाणी, एटले सन्नद्ध थइने जाज्वल्यमान परशु लड बहार नीकल्यां, परंतु परशुरामतुं ते हवियार मुभूमनी दृष्टि पडतांज तेना पूर्वना पुण्यथी निस्तेज थइ गयुं, पछी सुभूमे भोगन कर्या पछी उठीने ते थाळ परशुराम उपर फेंक्यो, एटले ने थाळतुं सहस्र देवताओए अधिष्ठित करेलुं चक्र वनी गयुं; अने ते चक्रे परशुरामतुं शिर कापी नांग्ययुं, ते वर्खते मुभूमने चक्रवर्तीपदनो उदय थयो, जय जय शब्दो वोल्यावा लाग्या, अने देवोए पुण्यनी दृष्टि करी, पछी परशुरामे मारेला क्षत्रियोना वैरंतुं स्मरण करीने तेण एकवीश वर्खत व्राक्षणरहित पृथ्वी करी.

चक्रना वल्यी आ भरतक्षेत्रना वर्खंड जीर्तीने विशेष लोभी वनी धातकीखंडमां आवेला भरतक्षेत्रने साथवा चाल्यो, अहतालीश गाड विस्तारवाला चर्मरत्न उपर पोताना गर्य गन्यने रथार्पांत लक्षणसमुद्रनी उपर थइने चाल्या जतां समकाळे चर्मरत्नना अधिष्ठितक दग्जार देवांए चर्मरत्न मुक्ती दीयुं, एटले चर्मरत्न ने सैन्यसहित जलपां डुवीने ते परण पाम्यो अने अतिशय पापकर्मना योगधी सातपी नरके गयो, ए प्रमाणे संवंधी औनो स्नेह पण कृत्रिम हे, एवो आ कथानो उपदेश हे.

कुल घर नियंत्र सुहेसुअ, सर्यणेय जैणंअ निंब मुणिवैसहा ।
विंहरंति अर्णिस्ताए, जैह अज्ञमहागिरि भयवं ॥ ३५२ ॥

अर्थ—“ मुनिशृणभां-ओषु मुनिवा (धर्मधुरंघर होवाधी) कुल ते कुलंव, घर, पोनाना संवंधीओ नथा ग्रामनगगादिभन्य मुख-तेने विं तेमन स्वजनमां अने सामान्य विचरणां निरंनर अनिश्चाए (कोऽना पण आन्दंवन विना) विचरेले, जेम आर्य महागिरि भगवं निथा विना विचर्या तेष् 。” २५२. अहीं आर्यपद्मागिरिनो संवंध जाणवो, ४७.

आर्यमहागिरि प्रवेश.

थीर्थांकमद्गगिरि आर्यमहागिरि ने आर्यमुद्भूती नामे वे गिर्यो हना, ते

वेमां मोटा श्रीआर्यमहागिरिसूरि आर्यसुहस्तीसूरिने गणशिक्षा (गच्छतुं शिक्षण अर्थात् गच्छ) सोंपीने पोते विशेष वैराग्यथी जिनकल्पनी तुलना करवाने माटे उद्युक्त थइ एकला विचरवा लाग्या. ते विशेषपणे क्रियामां उद्यमवंत रहे छे. ज्यारे आर्यसुहस्ती सूरि गामनी अंदर समवसरे छे त्यारे श्रीआर्यमहागिरि गामनी बहार रहेछे, एम गच्छनी निश्राए विहार करे छे.

एकदा श्रीसुहस्तीसूरि विहार करतां करतां पाटलीपुर पधार्या. त्यां आर्यमहागिरि क्षेत्रना छ विभाग करीने पांच पांच दिवस सुधी एक एक विभागप्रां भिक्षार्थे जायछे अने नीरस आहार ग्रहण करे छे. एक वर्षत श्रीआर्यसुहस्तीसूरि वसुभूति नामना श्रावकना कुटुंबने प्रतिवोध करवाने माटे तेने घेर गया हता अने धर्मदेशना आपता हता. ते समये श्रीआर्यमहागिरि अजाणतां वसुभूतिने घेर भिक्षार्थे आव्या. तेमने जोइ आर्य-सुहस्तीसूरिए उभा थइ विनयपूर्वक वंदन कर्यु. एटले आर्यमहागिरि भिक्षा ग्रहण कर्या शिवाय पाढा वळी गया. वसुभूति श्रावके आर्यसुहस्ती महाराजने पूछ्यु के ‘जेमनो आपे आटलो विनय कर्यो ए महामुनि कोण छे ?’ त्यारे आर्य-सुहस्तीसूरिए कहुं के ‘ ए अमारा मोटा गुरुभाइ छे अने महा अनुभाववाळी जिनकल्पनी तुलना करे छे.’ ते सांभळीने वसुभूति श्रावके वीजे दिवसे आखा नगरमां वधे उत्तम आहार कराव्यो. आर्यमहागिरिए तेने अकल्प्य जाणीने ग्रहण कर्यो नहि, पछी उपाश्रये आवीने तेमणे सुहस्तीसूरिने ओळंभो आप्यो के ‘ तमे वहु विशुद्ध आचरण कर्यु के वसुभूतिने घेर मारो अभ्युत्थानादि विनय कर्यो. तेम करवायी तमे सर्वत्र अशुद्ध आहार करी दीधोछे. माटे हवे आजर्यी मारे तमारी सथे एक क्षेत्रमां रहवू उचित नथी.’ ए प्रमाणे कही आर्यमहागिरिए जुदो विहार कर्यो अने गच्छनो आश्रय छोडी दड एकाकी तपसेयम पाळी स्वर्गे गया. ए प्रमाणे वीजाए पण प्रतिवंध करवो नहि, एवो आं कथानो उपदेश छे.

रुवेण जुव्वेण यै, कन्ना सुहेहिं वरसिंरीए यै ।

नंय लुंपभंति सुविहिया, निदैरसणं जंबूनामिति ॥ १५३ ॥

अर्थ—“ रुपे करीने, यौवने करीने, गुणवती कन्याओथी, सांसारिक सुखोथी तेमज श्रेष्ठ एवी लक्ष्मीथी सुविहितो—साधु पुरुषो—उत्तम जनो लोभाता नथी. अहीं जंबू नामे महा मुनिनुं निदैरसण कें दृष्टांत जाणवुं.” १५३. जंबूस्वामीनुं दृष्टांत पूर्वे खेलु छे तेथी अहीं लख्युं नथी.

उत्तमकुलपसूया, रायकुलवडिसंगावि सुणिवसहा ।

वहुजण्जईसंघटुं, मेहकुमाँसूव्य विसंहंति ॥ १५४ ॥

अर्थ—“ उत्तम कुलमां उत्पन्न थयेला, राजकुलमां मुगट समान एवा मुनिवृषभो—
मुनिश्रेष्ठो अनेक कुलमां उत्पन्न थयेला घणा मुनिजनोनो संघटं मेघकुमारनी जेम विशेष
प्रकारे सहन करेछे. ” १५४. अहीं मेघकुमारनुं दृष्टांत जाणवुं. ४८

मेघकुमारनुं दृष्टांत.

मगधदेशमां राजगृह नगरमां श्रेणिक राजा राज्य करतो हतो. तेनी धारिणी
नामे राणी हती. तेनी कुक्षिने विपे कोइ जीव उत्पन्न थयो. तेना प्रभावथी तेने अकाळे
मेघनो दोहद थयो. अभयकुमारे अट्टमभक्तथी कोइ देवने आराधीने तेनी सहायथी ते
दोहद पूर्ण कर्यो. उत्तम समये पुत्रनो प्रसव थयो. स्वमने अनुसारे तेनुं नाम मेघकुमार
पाढवुं. अनुक्रमे तेणे युवावस्था प्राप्त करी. श्रेणिक राजाए तेने स्वस्त्रपती आठ
कन्या एक लग्ने परणावी. ते स्त्रीओ साथे विपयसुख भोगवतो मेघकुमार अन्यदा
वीरप्रभु त्यां समवसरवाधी वांदवाने गयो. प्रभुनी देशना सांभळी तेणे वैराग्य
प्राप्त थवाथी चारित्र ग्रहण कर्यु. भगवंते तेमने शिक्षा ग्रहण करवा माटे स्थविर (इद्ध)
मुनि पासे मोक्ष्या. हवे रात्रिए पौरुषी भणाच्या पूछी संथारा करतां दृद्धलघुत्तमा
(नाना मोटाना) व्यवहारथी मेघमुनिनो संथारो सर्व साधुनी पछी उपाश्रयनी वहार
आव्यो. त्यां रात्रिए जता आवता साधुना चरणना प्रहारथी अने तेमना अथडावा विगे-
रेथी मेघमुनि वहु खिन्न थया. ते विचारवा लाग्या के “ अरे ! मारो सुखकारी आवास
क्यां ! मारी कोमळ पुष्पशश्या क्यां ! अंगनाना अंगसंगथी उत्पन्न थतुं सुख क्यां !
अने आ कठिन भूमिमां आलोटवुं क्यां ! आ साधुओ प्रथम तो मारा प्रति आदरवाळा
हता अने हवे तो तेज साधुओ मने पण विगेरेना संघट करेछे, तेथी जो आजनी रात्रि
सुखे सुखे जाय तो प्रातःकाळमां वीरप्रभुने पूछी रजोहरण आदि वेष पाढो सोंपीने हुं
मारे घेर चाल्यो जडशा.” ए प्रमाणे चिंतवी मेघमुनि प्रातःकाळे प्रसु पासे आव्या. भगवा-
ने मेघमुनिना बोल्या पहेलांज कहुं के ‘ हे मेघ ! तें आज रात्रिना चारे पहोर दुःख
अनुभव्युं छे अने घेर जवानो विचार करेलो छे. आ हकीकत खरी छे ? ’ मेघमुनिए
कहुं के ‘ ए हकीकत खरी छे.’ त्यारे भगवाने कहुं के “ हे मेघमुनि ! आ दुःख तो शुं
छे ! पण जें दुःख तें आ भवंथी त्रीजे भवे अनुभवेलुं छे ते सांभळ-तुं पूर्वे वैताढव्य पर्व-
तनी भूमिमां श्वेतवणीं, घणो उंचो अने एक हजार हाथणीना टोळानो अधिपति छ
दांतवाळो सुमेहुप्रभ नामनो हाथी हतो. एक दिवस वनमां दावानल लाग्यो. तेनाथी
भय-पापी तृष्णातुर थइ वनमां भटकतां थोडा पाणिवाळा ने घणा कीचडवाळा सरोवरमां
पेठो. त्यां तुं कीचडनी अंदर खुती गयो. तुं जळ सुधी पहङ्च्यो नहि एटले तने जळ प-

मब्युं नहि, अने वहार पण नीकली शक्यो नहीं। पछी घणा वैरी हाथीओए आवीने तने दंतमुशलना प्रहार कर्या। ए प्रमाणे सात दिवस सुधी पीडा अनुभवी सो वर्षतुं आयुष्य पूर्ण करी काळ करीने तुं विष्वभूमिमां चार दांतवालो, रक्त वर्णवालो ने सातसे हाथणीनो पति मेरुप्रभ नामे हाथी थयो। त्यां पण अग्नि लागेको जोइ जातिस्मरणथी तें तारो पूर्वभव दीठो। पछी दावानलथी भय पामीने तें एक योजनप्रमाण भूमिनी अंदरथी तृण काष्ठ आदि सर्व दूर फेंकी दीयुं, अने नवा उगेला तृण वल्ली अंकुरो विगेरेने शुंदवडे परिवारनी मददथी मूलमांथी उखेडी नांखवा लाग्यो। एक वखत फरीथी दावानल प्रकट्यो। ते वखते तुं परिवार सहित पेला एक योजन प्रमाणवाला मंडलमां आवी गयो। बीजां पण घणां बनचर प्राणीओ त्यां आव्यां। ते वखते तें शरीर खणवाने माटे एक पग उच्चो कर्यो, तेवामां एक ससलो कोइ जग्याए तेने स्थान नहि मलवाथी तारा पग नीचेनी जग्याए आवीने उभो रह्यो। पग नीचे मूकतां तें ससलाने जोयो; एटले तेना उपरनी दयाने लैधे ताहुं मन आर्द्र थवाथी तें तारो पग उच्चो ने उच्चो राख्यो। ए प्रमाणे अही दिवस सुधी एक पग उच्चो राखीने रह्यो। दावानल शांत थतां सर्व प्राणीओ पोतपोताने स्थाने गया। एटले पग नीचे मूकतां शरीर घणुं स्थूल होवाथी पर्वततुं शिखर त्रुटी पडे तेम तुं पडी गयो, अने घणी वेदना भोगवी, सो वर्षतुं आयुष्य पूरुं करी दयाना परिणामथी शुभ कर्म वांधी श्रेणिक राजानो पुत्र थयो। हवे तुं विचार कर के समकितनो पण लाभ मब्यो नहोतो ते वखतमां तिर्यचना भवमां थोडुं कष्ठ सहन करवाथी तें मनुप्पतुं आयुष्य वाध्युं, तो चारित्र ग्रहण कर्या पछी कष्ठ सहन करवाथी तो मोडुं फल मलेछे; अथवा आ जीवे घणी वार नरकादिनां घणां दुःखो भोगव्याछे, तो तुं आ साहुओना पादसंघट्यी उत्पन्न थयेला दुःखथी शामाटे दुभाय छे? साहुना चरणनी रज पण वंद्य छे, तेथी आ चारित्र तजी देवानो तारो मनोरथ योग्य नथी। अग्निमां प्रवेश करवो सारो, विष्वतुं भक्षण करवुं सारुं, पण ग्रहण करेला व्रतनो भंग करवो ए सारुं नहि।” इत्यादि भगवंतनां कहेलां वचनोथी मेघमुनिने जातिस्मरणज्ञान उत्पन्न थयुं, एटले सघलुं प्रभुना कहेवा प्रमाणे जोयुं। पछी भगवानने वांदीने मेघमुनि बोल्या के “हे भगवन्! भवकूपमां पडतां तमे मारो वचाव कर्योछे। आजथी मांडीने वे चक्षु शिवाय वीजा कोइ अंगनी मारे शुश्रूपा करवी नहि एवो हुं अभिग्रह कर्द्दुं।” आ प्रमाणेनो-अभिग्रह लइ, निर्दोष चारित्र पाली, गुणरत्न संवत्सरादि करी, निर्मल ध्यानवडे पोतानुं आयुष्य पूर्ण करी, समाधिथी मृत्यु पामीने विजय नामना अनुचर विमानने विपे देवपणे उत्पन्न थया। त्यांथी च्यवी महाविदेहसेत्रमां मनुप्य थड्ने मोक्षे जशे,

अवस्थपरं संवाहं, सुखं तुच्छं सरीरं पीडाय ।
सारैण वारैण चोयण, गुरुजण आयत्तया यं गंणे ॥ १५५ ॥

अर्थ—“गच्छमां वसवाथी परस्पर संवाध ते मलवापणुं थाय अनें स्वेच्छाए प्रवर्तवा रूप सुख अथवा इन्द्रियजन्य जे सुख ते तुच्छ के० स्वल्प थाय-तेनुं ओढ़ापणुं थाय, परीसहादिकवडे शरीरने पीडा थाय, कोइ पण कार्य न कर्यु होय तो तेनुं सारण के० संभारी देवुं थाय, कोइ पण कार्यमां प्रमाद करतां वारण के० वारवुं थाय, सारा कार्यमां चोयण के० मधुर के कर्कश वचनवडे पण प्रेरणा थाय अने गुरुजननी आयी नता थाय. एटला गुणो थाय; माटे अवश्य गच्छमांज वसेनुं, एकला न रहेवुं.” १५५.

इक्सस कंओ धम्मो, सच्छंदगई मझपयारस्स ।

किं वौं केरेउ इँको, परिहंरउ कंह मकंज्ज. वा ॥ १५६ ॥

अर्थ—“स्वच्छंद जे गति तेमां छे मतिनो प्रचार जेनो अर्थात् स्वच्छंदे वर्तवानी छे बुद्धि जेनी एवा एकला मुनिने धर्मज क्यार्थी होय? अपितु न होय. वली एकलो तपक्रिया विगेरे शुं करे? अथवा एकलो अकार्यने पण केम परिहरवा शक्तिमात थाय? अर्थात् न थाय. माटे गुरुकुलवासमांज रहेवुं.” १५६.

कंतो सुतथाँगम, पडिंपुच्छणा चोयणा चं इक्ससं ।

विँओ वेयावच्च, आराहैणया यं मरेणंते ॥ १५७ ॥

अर्थ—“एकला मुनिने सूत्रार्थनी प्राप्ति पण क्यार्थी थाय? प्रतिपृच्छा के० सं-दिग्धनुं पूछवुं ते कोनी पासे करे? चोयणा के० प्रमादमां पडेलाने शिक्षादान कोण आपे? एकलो विनय कोनो करे? वैयावच्च कोनी करे? अने मरणाते नमस्कार स्मरण, अणसणादि आराधना पण तेने कोण करावे? अर्थात् एटलां वानां (एटला लाभ) एने क्यार्थी प्राप्त थाय? न थाय.” १५७.

पिलिंजेसण मिंको, पइन्पैमयाजणाउ निच्चं भयं ।

काउं मणोवि अंकज्जं, नं तैरङ्काऊण बहुमङ्ग्ले ॥ १५८ ॥

अर्थ—“एकलो मुनि एषणा जे आहारनी शुद्धि तेनुं पण उल्लंघन करे छे, अर्थात् कदाचित् अशुद्ध आहार पण ग्रहण करे छे. वली प्रकीर्ण के० एकाकी एवो जे प्रमदा-

गाथा—१५५ अवस्थपर-परस्पर। गाथा—१५६ कओ-कुतः। कोइ। परिहंरउं।

गाथा—१५७ सुतथाँगम। पडिंपुच्छण। य। एक्सस। आगम। प्राप्ति:।

जन-स्त्रीजन तेनाथी तेने निरंतर भय रहा करे छे; अने वहु मुनिना मध्यमां तो अकार्य करवानुं मन पण करवानि शक्तिवान् थवातुं नथी तो अकार्य करे तो शेनोज ? माटे स्य-विरकल्पी मुनिओने एकाकी विहार युक्त नथी. ” १५८.

उच्चार पासवण वंत पित्त मुच्छाइ मोहिओ इँको ।

सहव भायण विहथ्यो, निर्खिंखवइ कुणइ उड्हाउँह ॥ १५९ ॥

अर्थ—“ उच्चार ते पुरीप, पासवण ते प्रश्रवण (लघुनीति), वांत ते ब्रह्मन अने पित्त मूर्ढा विगेरे-आदिशब्दथी वायुविकार विशुचिकादितुं ग्रहण करवुं. एवा व्याधियी-कष्टयी व्याकुल थयेलो एकलो साथु पाणी सहित जे भाजन तेनाथी व्यग्रहस्तवालो होतो सतो जो ते भाजन हाथमांथी मूर्ढी दे तो संयम विराधना-आत्मविराधना थाय, अने जो ते भाजन हाथमां रहेवा दइने उच्चार (वडी नीति) विगेरे करे तो शासननी उड्हाह (लघुता) थाय. तेथी मुनिने एकला रहेतुं कोइ रीते योग्य नथी.” १५९

एगदिवसेण वहुआ, सुहाँय असुहाँय जीवैपरिणामा ।

इँको असुहपरिणओ, चैज्ञ आलंबणं लँछुं ॥ १६० ॥

अर्थ—“ एक दिवसमां पण जीवना परिणाम शुभ अने अशुभ एवा वहु प्रकारना थायछे, तेथी एकलो मुनि अशुभ परिणामवालो थयो सतो कांश्क आलंबन-कारणने पामीने चारित्रने तजी देछे अथवा अनेक प्रकारना दोष लगाड्हेचे. ” १६०

सव्वजिंणपडिकुहुं, अणवैथथा थेस्कपैभेओआ ।

इँको अँ सुहावत्तोवि, हणइ तवर्संजमं अईरा ॥ १६१ ॥

अर्थ—“ एकाकीपणे विचरतुं सर्व जिनेश्वरोए निषेध करेलु छे. वली तेथी अनवस्था केऽमर्यादानो भंग थाय छे अने स्यविरोनो कल्प जे आचार तेनो भेद थायछे, तेथी एकाकी रहेतुं अयुक्त छे. वली एकलो शुभ आयुक्त केऽगाड आचारयुक्त होय तोपण थोडा काळमां तप अने संयमने हणी नांखेछे, अर्यात तेमां दोष लगाड्हेचे. ” १६१.

वेसं जुनकुमारिं, पउथर्थवइअं चै वालविहवं चै ।

पासंडरोह मसैइं, नवतर्हणिं थेरमंजं चै ॥ १६२ ॥

सविडंकु^५भडस्वा, दिद्धौ मोहे^६ जाँ मेण इ^७थी ।
आयहि^८यचितंता, दूर्यरेण परिहरंति ॥ १६३ ॥

अर्थ—वेश्या, शुद्ध कुमारिका एटले मोठी उम्रस्वाली कुमारिका, परदेश गेयेया पतिवाळी स्त्री, वाळ विभवा एटले जेनो पति वाल्यावस्थापांज परण पापेलो घे एवी अर्ति कामविहवल स्त्री, पाखंडवते करीने जेणे विषयनो रोध करेलो घे एवी स्त्री—तापसी प्रसुख, असती ते व्यभिचारिणी स्त्री, नवयोवना, शुद्ध भर्तार्गनी भार्या, यम अद्यवसायने दूर करी दे एवा उद्भट स्पष्टवाली अयवा विकार सहित मनोहर स्पष्टवाली, अंत देखवा मात्रथीज जे मनने मोहित करे एवी स्त्री—आटला प्रकारनी स्त्रीओने आत्महितने चितवनार पुरुष अति दूरथीज त्यजी दे छे ।' १६३. १६३.

सम्महिड्डीवि क्याँगमोवि, अइविसयरागसुहवसओ ।
भवेसंकडंमि पविसेइ, इँथ्यं तुह सञ्चईनायं ॥ १६४ ॥

अर्थ—“ सम्यग् दृष्टि छतां अने सिद्धांतनो जाण छतां अतिशय विषयराग संवंधी जे सुख तेना परवशपणार्थी भवसंकटने विषे प्रवेश करेले, अर्यात् वहु भवभ्रमण करेछे. ते संवंधमां हे शिष्य ! तरे सत्यकीनुं उदाहरण जाणवूँ । ” १६४. अहीं सत्यकी विद्याधरनो संवंध जाणवो. ४९

सत्यकी विद्याधरनी कथा.

विशाल लक्ष्मीवाळी विशाळा नगरीमां चेटक नामे राजा राज्य करतो हतो. तेने सुज्येष्टा अने चिल्लणा नामे वे पुत्रीओ हती. ते वंनेने अरस्परस घणोज स्नेह हतो. अभयकुमारनी सलाहथी ते वने कन्याओए श्रेणिक राजानो साये पाणिग्रहण करवानो अभिग्रह कर्यो हतो. पछी अभयकुमारे एक सुरंग खोदावी, अने ते सुरंगद्वारा श्रेणिक राजाए विशाळा नगरीए आवी वने कन्याओने लीधी. सुरंगना सुख आगळ आवतां चिल्लणाए विचार कर्यो के ‘ सुज्येष्टा रूपमां मारायी अति श्रेष्ठ छे, तेथी श्रेणिक राजा तेने वहु मान दइ पट्टराणी करशे. ’ ए प्रमाणे विचारी चिल्लणाए सुज्येष्टाने काणु के ‘ हे भगिनी ! तुं पाळी जइने मारो रही गेलो घरेणांतो डावलो जलदी लइ आव, ’ ए प्रमाणे कही सुज्येष्टाने पाळी मोकली. पछी चिल्लणाए श्रेणिक राजाने काणु के ‘ हे स्वामिन ! अहींथी जलदी चालो. जो कोइ जाणशे तो वहु विषरीत थशे. ’ ए प्रमाणे भय वतावीने तेओ सुरंगमांथी वंहार नीकली गया. त्यार पछी आवेली सुज्येष्टाए चितव्युं के “ प्राणायी पण वधारे प्रिय एवी मारी वेन चिल्लणाए मारा उपर आवुं कपट रच्युं,

माटे केवल स्वार्थमां रचीपनी रहेल कुटुंबवर्गथी सर्युं, अने सर्पनी फणा जेवा विषयोने पण धिक्कार छे. ” ए प्रमाणे वैराग्य थवाथी सुज्येष्ठाए पाणिग्रहण न करतां चंदनवाला साध्वी पासे जइने चारित्र ग्रहण कर्युं.

छठ अष्टम आदि अनेक प्रकारनां तप करती ते एक दिवस आतापना ग्रहण करीने रहेली छे. ऐसे समये पेढाल नामना विद्याधरे त्यांथी जतां तेने जोइ. एटले ते मनमां विचारवा लाग्यो के ‘आ सती ध्यानमां स्थित थइछे अने ते महा रूपवती छे, तेथी जो हुं आ साध्वीनी कुक्षिनी अंदर पुत्रने उत्पन्न कर्ह तो ते पुत्र मारी विद्यानुं पात्र थाय.’ ए प्रमाणे विचार करीने विद्याना वळथी अंधकार विकुर्वीं ते न जाणे एवी रीते अमरनुं रूप करी तेने भोगवीने तेनी योनिमां वीर्य मूक्युं. पछी तेनी कुक्षिने विषे उत्पन्न थयेलो जीव अनुक्रमे वथवा लाग्यो, तेथी सुज्येष्ठा साध्वीने मनमां संदेह उत्पन्न थयो. तेणे ते संवंधी ज्ञानीने पूछ्युं एटले ज्ञानीए तेनो संदेह भांगने कहुं के ‘एमां तारो दोष नथी, तुं तो सती छे. अनुक्रमे ते साध्वीने पुत्र थयो तेनुं नाम सत्यकी पाडवामां आच्युं. ते साध्वीना उपाश्रयमां मोटो थयो. त्यां साध्वीना मुखथी आगमोनुं श्रवण करतां तेने सर्व आगमो मुखपाठ थइ गया.

एक दिवस सुज्येष्ठा वीरभगवानने वांदवाने माटे समवसरणमां गइ. सत्यकी पण तेनी मानी साथे गयो. ते अवसरे कालसंदीपक नामना विद्याधरे भगवानने पूछ्युं के ‘हे भगवन् ! मने कोनाथी भय छे?’ भगवाने कहुं के ‘तने आ सत्यकी वाळकथी भय छे.’ ते सांभळीने कालसंदीपके सत्यकीनी अवज्ञा करीने तेने पोताना पगमां पाडी दीधो. तेथी सत्यकी तेना उपर क्रोधित थयो. पछी सत्यकीना पिता पेढाल विद्याधरे तेने रोहिणी विद्या आपी. ते विद्याने साधतां सत्यकीने कालसंदीपक विघ्न फुरवा लाग्यो. ते बखते रोहिणी विद्याएज कालसंदीपकने तेम करतां अटकाव्यो; कारण के सत्यकीना जीवे प्रथम पांच भवने विषे रोहिणी विद्याने साधतां मरण प्राप्त कर्युं हतुं. छें भवे रोहिणी विद्याने साधतां तेना आयुष्यमां छ मासज अयुरा रहेला होवाथी रोहिणी विद्याए प्रत्यक्ष थइने कहुं हतुं के ‘हे सत्यकी ! तारा आयुष्यमां मात्र छ मासज वाकी रहाछे, तेथी तुं जो कहेतो होय तो आ भवमां हुं सिद्ध थाउं, नहितो आवता भवमां हुं सिद्ध थइश, त्यारे सत्यकीना जीवे कहुं हतुं के ‘जो मारुं आयुष्य धोडुंकज वाकी होय तो आवता भवमां तुं सिद्ध थजे, आ प्रमाणे पूर्व भवमां कहुं हतुं तेथी रोहिणी विद्या आ भवमां थोडा काळमांज सिद्ध थइ, अने प्रत्यक्ष थइ सत्यकीने कहुं के तारा शरीरनो एक भाग मने बताव जेमां हुं प्रवेश कर्ह, त्यारे सत्यकीए पोतानुं भाल

(कपाळ) वताव्युं रोहिणी विद्या ललाटमार्गथी अंगमां पेठी, अने ललाटमां त्रीडुं लोचन उत्पन्न थयुं, पछी तेणे प्रथम पोताना पिता पेढालनेज साध्वीना व्रतनो भंग करनार जाणी विद्यावल्थी मायें. कालसंदीपक विद्याधर सत्यकीने विद्यावल्थी दुर्जय जाणीने मायाथी त्रिपुरासुररुं स्वरूप धारण करीने नासी गयो, अने लवणसमुद्रमां जइने पाताळकलशमां पेटो. लोकनी अंदर एवी सिद्धि थइ के 'आणे त्रिपुरासुरने पाताळमां पेसाडी दींधो, तेथी आ सत्यकी अग्यारमो रुद्र पेदा थयोछे.'

पछी सत्यकी विद्याधरे भगवाननी पासे समकित अंगीकार कर्युं, अने 'देवगुरुनो अत्यंत भक्त थयो. त्रणे संध्याए ते भगवाननी आगळ नृत्य करेछे. परंतु अत्यंत विषय-सुखमां लोलुप होवाथी राजानी, प्रधाननी के कोइ व्यापारी विग्रेनी रूपवती स्त्रीने ते जुए के तरतज तेने गाढ आलिंगन आपीने ते भोगवेछे, तेने वारवाने माटे कोइ शक्ति-मान थतुं नथी. एक दिवस महापुरी उज्जयिनीमां चंडप्रद्योत राजाना अंतःपुरमां प्रवेश करीने तेणे पश्चावती शिवाय वीजी तमाम राणीओने भोगवी. तेथी चंडप्रद्योत राजा क्रोधित थइ कहेवा लाग्यो के 'जे कोइ आ दुष्कर्मीं सत्यकीने मारी नांखशे तेने हं मनवांछित आपीका.' आ प्रमाणे पठह वगडावीने तेणे लोकोने जणाव्युं, ते वर्खते ते नगरमां रहेनारी एक उमा नामनी वेश्याए वीडुं झडप्युं. पछी एक दिवसे उमा पोताना घरना गोखर्मां वेडी दृती ते वर्खते तेणे सत्यकीने विमानमां वेसीने आकाशमार्गे जतो जोइ कर्युं के 'हे चतुरशिरोमणि ! हे सुरूपजनमां मुगुट रूप ! हे तेजथी सूर्यने जीत-नार ! तुं प्रतिदिवस सुग्धा (विषयरसनी अजाण) स्त्रीओने चाहेछे; परंतु अमारा जेवी कामकल्पामां कुशल स्त्री तरफ दृष्टि पण करतो नथी, माटे आजे तो मारूं आंगण कृतार्थ कर, अने एक वर्खत तुं अमारूं कामचातुर्य जो.' इत्यादि वचनोथी रंजित थयेलो अने कटाक्षविक्षेपथी जेनुं मन आकर्षयुं छे एवो सत्यकी विमानमार्थी उतरीने ते नायिकाना घरमां गयो. ते वेश्याए पण अनेक प्रकारना कामक्रीडाना विनोदथी तेहुं मन आधीन करी लीदुं. तेथी ते तेने छोडीने अन्य कोइ स्थाने जतो नथी; हमेशा त्यांज आवेछे. तेमनी वचे परस्पर घणीज प्रीति थइ गइ छे, आ प्रमाणे अत्यंत विश्वास पमाडीने तेणे एकवार सत्यकीने पूछयुं के 'हे स्वामिन् ! तमे स्वेच्छाए परस्तीओने भोगवो छो पण तमने मारवाने कोइ शक्तिमान थतुं नथी ते कोना वल्थी ?' त्यारं सत्यकीए कह्युं के 'हे सुंदर लोचनवाळी स्त्री ! मारी पासे विद्यानुं वळ छे, तेना प्रभावथी मने कोइ मारतुं नथी.' फरीथी वेश्याए पूछयुं के 'तमे ते विद्याने कोइ वर्खत दूर राखोछो के नहि ?' सत्यकीए कह्युं के 'ज्यारे हे विषयसेवन करुद्धुं त्यारे विद्याने दूर राखुद्धुं.' ते सांभळीने ते उमा वेश्याए जइ राज

क्षुणुं के 'सत्यकीने मारवानो एकज उपाय छे. परंतु जो तमे मारो बचाव करो तो तेने खुशीयी मारो.' ए प्रमाणे प्रस्तावना करीने तेणे सर्व हकीकत कही बतावी. पछी ते वेश्याना उदर उपर कमलपत्रो रखावी तेणे ते कमलपत्रोने छेदी नाख्या, परंतु वेश्याना शरीर उपर जरा पृष्ठ खड़ग लाग्युं नहि. एम करी 'आवी रीते तारो बचाव कराशुं' एवो विश्वास उत्पन्न करावीने तेने घेर मोकली. पछी राजाए रात्रिए पोताना सेवकोने बनेने मारी नाख्वानुं समजावी वेश्याने घेर मोकल्या. ते सेवकोने वेश्याए गुप्त रीते राख्या. तेवामां सत्यकी आव्यो अने उभा साथे विषयसेवन करवा लाग्यो. एटले गुप्त रहेला राजसेवकोए आवीने बनेना मस्तको छेदी नाख्यां.

सत्यकी विद्याधरना नंदीश्वर नामना गणे ते हकीकत सांभळी, एटले ते क्रोधित थइने त्यां आव्यो अने आकाशमां शिला विकुर्वीने कहेवा लाग्यो के 'तमे मारा विद्यागुरुने मार्या छे, तेथी जेवी स्थितिमां तेने मार्या छे तेवीज स्थितिमां तेनी मूर्ति बनावीने जो तमे सर्व नगरजनो पूजाशो तो तमने सघलाने छोडीश, नहितो आ शिलाधी सर्वने चूर्ण करी नाखीश.' एवुं सांभळीने भयभीत धयेला राजा आदि सर्व लोकोए तेवीज स्थितिवाली युग्मरूप मूर्ति करावीने एक मकाननी अंदर स्थापी, अने सर्व पूजा करवा लाग्या. सत्यकी काळे करीने नरकभूमिमां गयो. पछी केटलेक काळे तेवी लज्जा उत्पादक मूर्तिने जोइने ते काढी नांखी तेनी जग्याए लिंगनी स्थापना करी. माटे विषयमां अनुराग न करवो एवो आ कथानो उपदेश छे.

**सुतवस्तियाणं पूर्यां, पणाम सकाँर विणयकञ्जपरो ।
वद्धंपि कमममसुंहं, सिद्धिलैङ्ग दसारनेयावा ॥ १६५ ॥**

अर्थ—“ सुतपस्ती-भला चारित्री-महामुनिओनी पूजा ते वत्तादि आपवुं, प्रणाम ते मस्तकवडे वंदन करवुं, सत्कार ते तेमना गुणनुं वर्णन करवुं, अने विनय ते तेओ आवे एटले उभा धवुं—इत्यादि कार्यमां तत्पर एवो पुरुप, वांथेलुं—आत्म मदेशनी साथे शिष्ट करेलुं एवुं पृष्ठ अगुभ—मध्यम जे कर्म तेने शिवेक करे छे. कोनी जेम ? “दशारनेता जे दशारनां स्वामी कृष्ण तेनी जेम.” १६६. अर्ही कृष्णनो संज्ञेप्यी मंजुंग ल्पाणनो. ५०.

श्रीकृष्ण प्रवंध.

दा विदार करतां करतां श्रीनेमिनाथ भगवान द्वारिकामां सपवसर्या. तेमने ६५—पृथा । दशारनेयव्या । दशारनेता द्वा ।

वांदवाने माटे श्रीकृष्ण परिवार सहित आव्या. तेने पनपां एवी इच्छा थड़ के 'आज हुं आ अढार हजार साहुओमांना दरेकने द्वादशावर्त वंदनयी वांदुं.' ए प्रमाणे विचारी पोताना भक्त वीरा सालवीनी साथे सर्व साहुओने उपर प्रमाणे वंदन करवायी अपानुरथयेला कृष्ण, भगवान पासे आवी वोल्या के 'हे भगवन् ! आज हुं अढार हजार साहुओने वांदवायी आति श्रमित थयोहुं. मैं आज सुधीमां त्रणसे ने साउ युद्धो कर्या तेमां कोइ वरक्त हुं आटलो श्रमित थयो नहोतो.' ते वरक्ते भगवाने करुं के 'हे महानुभाव ! जेम वंदन करवायी तुं घणो श्रमित थयो छे तेम ते लाभ पण घणो मेलब्बोछे. कारणके वंदनदानयी तें क्षायिक समाकित मेलब्बुंछे अने तीर्थकरनामकर्म उपार्जन कर्युछे. वली संग्राम करीने सातमी नरकभूमिने योग्य जे कर्म वांध्युं हतुं तेने खपावीने व्रीजी नरकभूमि योग्य रहेवा दीवृं छे. एटलो लाभ तेने थयोछे.' ते सांभळीने कृष्ण करुं के 'फरीयी अढार हजार सुनिने वांदीने व्रीजी नरकभूमि योग्य कर्म पण खपावी दंड.' त्यारे भगवाने करुं के 'हे कृष्ण ! हवे तेवो भाव आवे नहि, कारणके हवे तेम लोभमा प्रवेश करेलो छे.' कृष्णे फरीयी पूछ्युं के 'मने ज्यारे आटलो वधो लाभ थयोछे, त्यारे मारा अनुयायी वीरा सालवीने केटलो लाभ थयोछे ?' भगवाने करुं के 'एने तो मात्र कायक्लेश थयोछे, कारण के तेणे तो मात्र तारी अनुदृत्तिर्थीज वंदन कर्युछे, तेथी भाव विना कांड फळ मळतुं नथी.' आ प्रमाणे वीजाओए साहुओनी पूजाभक्ति विग्रे भाव पूर्वक कर्वी.

अभिगमणं वंदणं नमसंस्णेण, पदिपुच्छ्लेण साहौणं ।

चिरसंचिंयंपि कैम्मं, खणेण विरल्लत्तण मुंवेइ ॥ १६६ ॥

अर्थ—"अभिगमन ते सन्मुख जवुं, वंदन ते वंदना करवी, नमस्ण के० सामान्ये नमस्कार करवो, अने पदिपुच्छण ते शरीरना निरावाधपणा विग्रेनी पृच्छा करवी, साधुने एटलां वानां करवायी. चिरसंचित के० घणा काळतुं वहुभवतुं उपार्जन करेलुं कर्म पण क्षणमात्रमां-थोडा काळमां विरल्पणाने पामेछे अर्धात् पापकर्मनो क्षय थायछे." १६६.

केइ सुसीला सुहमाइं सज्जणा, गुरुजणसस्वि सुसीसां ।

विर्तुलं जंणन्ति संच्छं, जहं सींसो चंडूहस्स ॥ १६७ ॥

अर्थ—"कोइक सुशीलके० निर्मल स्वभाववाला अने सुधर्मा के० अतिशय धर्मवाला अने सज्जन के० सर्वनी उपर मैत्रीभाववाला एवा सुशिष्यो, गुरुजननी-पोताना गुरुनी

ग. श्रद्धाने विस्तीर्ण करेहे, अर्थात् आस्तिक्य लक्षणवाक्य श्रद्धाने हृष करेहे कोनी-म? चंडरुद्र आचार्यना शिष्यनी जेम... चंडरुद्र आचार्यनी श्रद्धा तेना शिष्ये हृष री तेम.' १६७. अहीं चंडरुद्र आचार्य ने तेना शिष्यनो संवय जाणवो. ५?

चंडरुद्राचार्य कथा.

महापुरी उज्जयिनीमां अन्यदा चंडरुद्राचार्य समवसर्या ते अत्यंत ईर्षाङ्गु भने क्रोधी हता, तेथी ते पोतारुं आसन शिष्योरी दूर राखता हता, एक दिवस एक नवो परणेलो वणिकपुत्र पोताना मित्रोरी परिवृत थड्ने त्यां आव्यो अने तेणे सर्व साधु-ओने वांदा. पछी तेना वाळमित्रोए हासी करी के 'हे स्वामिन्! आने तमे शिष्य करो.' त्यारे मुनिओए कहुं के 'हे महालुभाव ! जो तेने दीक्षा ग्रहण करवानो मनोरथ होय तो पेला दूर वेठेला अमारा गुरुनी पासे जाओ.' तेथी ते वाळमित्रो वणिकपुत्र साहित गुरु पासे आव्या. त्यां पण गुरुने वांदीने तेओ हास्ययी वोल्या के 'महाराज ! आने दीक्षा आपो.' ते सांभळीने आचार्य मौन रहा. त्यारे वाळकोए फरीरी कहुं के 'हे स्वामिन् ! आ नवा परणेला अमारा मित्रने आप शिष्य करो.' छतां पण गुरु तो मौन रहा. त्यारे तेओए त्रीजीवार पण तेज प्रमाणे कहुं, एटले चंडरुद्राचार्यने क्रोध चढ्यो तेथी वलात्कारे ते नवा परणेला वाळकने पंकडी, वे पगनी वचे राखी तेना केशमो लोच करी नांख्यो. ते जोइने वीजा सर्वे वाळको त्यारी नासी गया, तेओ विचार करवा लाग्या के 'अे ! आ शुं घयुं !' ए प्रमाणे विलखा पडी तेओ जोवा पण उभा रहा नहि. पछी नवदीक्षित शिष्ये गुरुने कहुं के 'हे भगवन् ! हवे आपणे अहींरी अन्य स्थाने चाल्या जिए. कारणके मारां मातापिता तथा व्युत्पत्त विगेरे जो आ वात जाणशे तो तेओ अहीं आवी तमने मोटो उपद्रव करशे.' त्यारे गुरुए कहुं के 'हुं रात्रिए जवाने अशक्त छुं,' त्यारे ते नवदीक्षित शिष्य गुरुने पोतानी खांध उपर वेसाडी-ने त्यांरी चाल्यो. अंधारी रात्रिए चालतां तेना पग उंची नीची भूमिपर पडवायी चंडरुद्राचार्य क्रोधित थड्ने मस्तक उपर दङ्ननो प्रहार करवा लाग्या. तेथी तेना माध्यमांरी रुधिर नीकव्युं अने घणी वेदना थवा लागी; पण तेना मनमां लेश मात्र पण क्रोध उत्पन्न थयो नहि. ते तो तेमां पोतानोज वांक माने छे अने विचार करे छे के 'मने पापीने धिक्कार छे ! कारणके आ गुरु मारे लीघे कणे भेगावे छे. प्रथम तो गुरुमहाराज स्वाध्याय अने ध्यानमां स्थित थयेला हता, तेने में दुष्टे रात्रिए चलाव्या, आ अपराधी हुं केवी रीते मुक्त यद्दा ?' आ प्रमाणे शुभ भावनाने भावतां शुभ ध्यानरी धातिकर्मनो क्षय करीने ते केवळज्ञान पास्या. पछी तो सर्वत्र प्रकाश

थवाथी ते सारी रीते सरलताथी चालवा लाग्या. एट्ले गुरुए पृच्छयुं के ' द्वे तुं केम सारी रीते चालेछे ? संसारमां दंडप्रहार एज सार स्पष्ट जणाय चे दंडप्रहारने लीभेज तुं मार्गमां सरलताथी चालेले. ' त्यारे शिष्ये कर्णु के ' हे सरल गतिए चालुंदून ते आप्नोज प्रसाद छे. ' एट्ले गुरुए पृच्छयुं के ' तने कांड ज्ञान थयुं चे ? ' त्यारे शिष्ये कर्णु के ' हा, स्वामिन ! मने केवलज्ञान थयुंले. ' एवुं शिष्यतुं वाक्य सांभळी गुरुने अन्यंत पश्चात्ताप थयो के ' मैं अति विरुद्ध कर्म कर्यु. केवल्यीनी आशातना करनार एवा मने विकार छे ! एना प्रस्तकमां मैं दंडप्रहार करेला छे, तो आ मारूं पातक केवी रीत नष्ट थशे ? ' ए प्रमाणे पश्चात्ताप करतां गुरु, शिष्यना स्कंध उपर्यी उत्तरीने तेना पगमां पड्या अने पोतानो अपराध खमाववा लाग्या. ए प्रमाणे वारंवार पोतानो अपराध खमावतां विशुद्ध ध्यानयी तेमने पण केवलज्ञान उत्पन्न थयुं. वने जणा केवलीषणे कांवा वरवत सुधी विहार करीने मोक्षे गया. आ प्रमाणे मुशिष्य गुरुने पण विशेष धर्म पमाडेछे, एवो आ कथानो उपदेश छे.

अंगारंजीववहगो, कोइ कुरुंरु सुसीसपैरिवारो ।

सुमिणे जझौंहिं दिंद्वौ, कोलो गयकलैंहपरिकिन्नो ॥ १६८ ॥

अर्थ--“ अंगारा (कोयला) स्पष्ट जीवनो वय करनारो (अंजीवमां जीव संज्ञाने स्थापनारो) कोइ कुरुरु (कुवासनायुक्त गुरु) मुशिष्योयी परवरेलो तेने स्वप्नमां मुनिओए हाथीनां वचांओयी परवरेलो कोल के० शूकर छे, एवा स्वस्पैदीठो.”? ६८.

सौ उगगभैवसमुद्दे, सयंवरमुवागएहिं राएहिं ।

करहो वरखरभरिओ, दिंद्वौ पोराणसीसोहिं ॥ १६९ ॥

अर्थ--“ ते कुगुरुने उग्र एवा भवसमुद्रमां (परिभ्रमण करतां) भारथी भरेला उंटपणे पूर्वभवना शिष्यो अने भवांतरमां थयेला राजपुत्रो के जेओ स्वयंवरमां आव्या हता तेमणे दीठो, (एट्ले तेओए मूकाव्यो). ” १६९. एनी विशेष हकी-कत कथानकथी जाणवी.

अंगारमर्दकाचार्य कथा.

कोइ एक विजयसेन नामे सूरि हता, तेमना शिष्योए रात्रिए स्वप्नमां पांचसे हाथीओयी परिवृत्त थयेलो एक डुकर जोयो. प्रातःकाळमां तेओए गुरुनी आगळ स्वप्नस्वरूप

गाथा १६८—कुरुरु ।

गाथा १६९—वरखरभरिडे—भारेण भृतः ।

निवेदन कर्यु त्यारे गुरुए विचारीने कहुं के ' हे शिष्यो ! आजे कोइ अभव्य गुरु पांचसे शिष्योयी परिवृत्त थइ अहीं आवशे, ए प्रमाणे तमारुं स्वप्न फळित थशे, ' एटलामां तो रुद्रदेव नामे आचार्य पांचसे शिष्योयी परिवृत्त येयेला त्यां आव्या. पूर्वस्थित साधुओए तेमतुं आतिथ्य कर्यु. पछी वीजे दिवसे अभव्य गुरुनी परीक्षा करवाने माटे मात्रु करवा जवाना (पिशाव करवाना) स्थानके (रस्तामां) विजयसेन सूरिए पोताना शिष्यो पासे ते रुद्रदेव सूरि न जाणे एवी रीते कोयला पथराव्या. रात्रिए ते अभव्य गुरुना शिष्यो लघुशंका करवाने माटे उठव्या तो तेमने पगे कोयला दवाया, तेथी शब्द थतां तेओ ' आ कोयला छे' एवुं नहि जाणवायी पश्चात्ताप करवा लाग्या के ' अरे ! अरे ! अंधकारमां अमे अजाणतां कोइ जीवने चांपी नाख्या ' ए प्रमाणे कही पुनः पुनः मिथ्या दुष्कृत देवा लाग्या; अने पछी संथारामां जइने सुइ गया. एवामां रुद्रदेवाचार्य पोते लघुशंका करवाने उठ्या. तेना चरणयी पण कोयला दवाया. एटले तेनो शब्द सांभळी वथारे वथारे चांपवा लाग्या अने मुखेयी बोल्या के ' आ अहंतना जीवो दवायायी पोकार करे छे.' एवुं वचन विजयसेन सूरिए सांभळ्युं. तेथी तेणे प्रातःकाले रुद्रदेवना शिष्योने कहुं के ' आ तमारा गुरु अभव्य छे, माटे तमारे तेने छोडी देवा जोइए.' ते सांभळीने तेओए रुद्रदेवने गच्छनो धंहार कर्या. पछी ते पांचसे शिष्यो निरतिचार संयम पाळी प्रांते समाधियी मृत्यु पार्मीने देवपणे उत्पन्न थया.

स्यांयी च्यवीने तेओ वसंतपुर नगरमां दिल्लीप राजाने घेर पांचसे पुत्रो थया. अनुक्रमे तेओ युवावस्था पाम्या. एक वर्खत ते पांचसे राजपुत्रो गजपुर नगरमां कनकध्वज राजानी पुत्रीना स्वयंवरमां गया हता. ते वर्खते अंगारमर्दकाचार्यनो (रुद्रदेवनो) जीव संसारमां परिभ्रमण करतां उंटपणे उत्पन्न थयो हतो, ते पण त्यां आव्यो हतो. भारना आरोपण वर्खते अति तीव्र शब्द करता ते उंटने जोइने ते राजपुत्रोने दया आवी. तेथी तेओ बोल्या के ' अरे ! जुओ, आ विचारो उंट अत्यंत भारथी आक्रांत येलो होवायी मोटा वराडा पाडे छे. आणे पूर्व भवमां शुं अशुभ कर्म कर्यु हशे ?' आ प्रमाणे वारंवार चितवन करतां ते पांचसे राजपुत्रोने जातिस्मरण ज्ञान उत्पन्न थयुं. तेथी तेओए पोताना पूर्व भवतुं स्वरूप जोयुं, जेथी तेओ बोल्या के ' अरे ! आ अमारो पूर्व भवनो अभव्य गुरु उंटपणे उत्पन्न थयोछे. कर्मनी गति विचित्र छे. कारणके आणे पूर्व भवमां ज्ञान मेळच्युं हतुं, पण थ्रद्धा विनाहुं ते निष्फल थयुं. तेथी ते आवी अवस्थाने प्राप्त येयेलो छे, अने हजु ते अनंता जन्ममरण करशे. ' ए प्रमाणे कही ते उंटने तेना धणी पासेयी छोडाव्यो.

पछी ते पांचसे राजपुत्रो विचारवा लाग्या के ' आ संसार अनित्य छे. किंपाक्तना

फल जेवा अने चिरपरिचित एवा भोगथी सर्यु. हस्तीना कर्ण जेवी चंचल आ राज्यक-
क्षमीने धिक्कार छे ! ' आ प्रमाणे वैराग्यपरायण थड तेओए चारित्र ग्रहण कर्यु. प्रांते सर्वे
सद्गतिना भाजन थया.

आ प्रमाणे सुशिष्यो अन्य भवमां पण उपकारी थायछे. एवो आ स्थाने उपदेश छे.

संसारवंचेणा नैवि गैणांति, संसारसूअरा जीवाँ ।

सुमिणगएणावि केइँ, बुईङ्गांति पुष्पचूलावा ॥ १७० ॥

अर्थ—“ संसारने विषे आसक्त शूकर-भुँड जेवा जीवो संसारनी वंचनाने गणता
नयी (विषयासक्त जीवो विषयनेज सारभूत गणे छे); अने केटलाक (लयुकमां जीवो)
स्वप्न मध्ये देखवा मात्रथी पण पुष्पचूलानी जेम प्रतिवोध पामे छे. ” १७०. जेम
पुष्पचूला नामे राणी स्वममां नरकादि स्वस्पने जोइने प्रतिवोध पामी, एवा पण केट-
लाक जीवो होय छे. ५३

पुष्पचूलानी कथा.

पुष्पभद्र नामना नगरमां पुष्पकेतु नामे राजा ह्तो. तेने पुष्पवती नामे
पट्टराणी हती. एक दिवस तेणे वे वाल्को (पुत्रपुत्री रूप युग्म) ने जन्म आप्यो.
तेमां पुत्रनुं नाम पुष्पचूल पाड्युँ अने पुत्रीनुं नाम पुष्पचूला पाड्युँ. अनुक्रमे ते वंने
यौवनावस्था पाम्या अने सर्व कलामां कुशल थया. तेओने परस्पर अति स्नेह वंधायो,
तेथी एक वीजा विना तेओ एक क्षण पण रही शकता नहोता. ते जोइने एकदा तेना
पिताए विचार कर्यो के ‘ आ साथे जन्मेला पुत्रपुत्री परस्पर अत्यंत स्नेहवाला छे, तेथी
जो तेमांथी पुत्रीने वीजे परणावीश तो तेमना स्नेहनो भंग थरो; माटे ए वंनेनोज परस्पर
लग्भसंवंध थाय तो तेमनो वियोग न थाय. ’ ए प्रमाणे चिंतवी नागरिक लोकोने वोला-
वीने राजाए पूछ्युँ के ‘ अंतःपुरमां उत्पन्न थयेला रत्नने स्वेच्छाथी जोडवाने कोण
समर्थ छे ते कहो. ’ ते सांभळीने तेनो आशय नहि जाणनारा प्रधान पुरुषोए कल्युं के
‘ हे राजन् ! संसारमां जे जे रत्न उत्पन्न थाय छे तेने अन्यनी साथे जोडवाने राजा समर्थ
थाय छे, तो अंतःपुरमां उत्पन्न थयेलां रत्नने जोडवाने राजा समर्थ थाय तेमां तो शुं
कहेवुँ ! ’ ए प्रमाणे छलबडे तेओनी अनुज्ञा मेल्वीने अंतःपुरनी खीओए अटकाव्या
छतां पण राजाए ते वे भाइ वेननो लग्भसंवंध कर्यो. ए कार्य घाणुंज असमंजस (अयोग्य)
थयेलुँ जोइ तेनी माता पुष्पवतीए वैराग्यपरायण थइने दीक्षा ग्रहण करी. पछी ते तप तपी

काळ करीने देवपणे उत्पन्न थइ. पुष्पकेतु राजा पण अनुक्रमे परलोकमां गयो एटले पुष्पचूल कुमार राजा थयो. तेणे पोतानी परणेली वेन पुष्पचूलाने पट्टराणी करी अने तेनी साथे विषयसुख भोगवतो सतो धणो काळ व्यतीत कर्यो.

एक समये तेमनी मातानो जीव जे देव थयो छे तेणे अवधिज्ञानधी जोयुं, एटले तेने पूर्व भवना पुत्रपुत्री उपर भीति उत्पन्न थवाथी ते मनमां विचार करवा लाग्यो के ‘आ मारा पूर्व भवना पुत्र अने पुत्री आवा प्रकारतुं पापकर्म करी नरकमां जशे, तेथी हुं तेमने प्रतिबोध पमाहुं.’ एम विचारी तेणे पोतानी पुत्री पुष्पचूलाने रात्रिए स्वप्ननी अंदर नरकनां दुःखो देखाड्यां. तें जोइने ते भयभीत थइ गइ. सवारमां तेणे राजानी आगळ स्वप्ननी हकीकत कही. राजाए पण नरकतुं स्वरूप पूछ्याने माटे अन्यदर्शनी योगिओ विगरेने वोलाव्या अने नरकतुं स्वरूप पूछ्युं. त्यारे तेओए जणाव्युं के ‘हे राजन ! शोक, वियोग, रोग अने भोगमां पराधीनता विगरे नरकनां दुःखो जाणवां.’ त्यारे पुष्पचूला राणीए कहुं के ‘मैं जे दुःखो रात्रे स्वप्नमां जोयां छे ते तो भिन्न छे.’ पछी अर्णिकापुत्र आचार्यने वोलावीने राजाए पूछ्युं के ‘हे स्वामिन् ! नरकनां दुःखो केवां होयछे ?’ तेना उत्तरमां आचार्ये राणीए जेवां नरकनां दुःखो स्वप्नमां जोयां हतां तेवांज कही वताव्यां. ते सांभळीने आश्र्य पामेली राणीए पूछ्युं के ‘हे स्वामी ! आपे पण शुं एवुं स्वम जोयुं छे ? के जेथी मैं स्वप्नमां जेवां नरकनां दुःखो जोयां हतां तेवांज आपे कहां.’ आचार्ये कहुं के ‘अमे स्वप्नमां तो जोयां नथी, पण आगमना वचनथी ते जाणीए छीए.’ पछी राणीए पूछ्युं के ‘कया कर्मथी एवां दुःखो प्राप्त थायछे ?’ गुरुए कहुं के ‘पांच आश्रवना सेवनथी अने काम क्रोध विगरे पापाचरणथी माणीओने नरकनां दुःखो प्राप्त थायछे.’ इत्यादि कहीने गुरु पोताने स्थानके गया. फरीथी वीजे दिवसे पुष्पचूलानी मातानो जीव जे देव हतो तेणे राणीने स्वप्नमां देवताओनां सुख वताव्यां. प्रातःकाळे राणीए ते स्वप्ननी हकीकत राजाने कही. तेथी राजाए अन्य दर्शनीओने वोलावीने पूछ्युं के ‘स्वर्गनां सुख केवां होयछे ?’ तेओए कहुं के ‘हे राजन ! उत्तम प्रकारनां भोजन, श्रेष्ठ वस्त्रपरिधान, मियजनसंयोग, उत्तम अंगनाओं साथे विलास इत्यादि स्वर्गनां मुखो छे.’ त्यारे राणीए कहुं के ‘जे स्वर्गनां सुखो मैं स्वप्नमां जोयां छे तेमनी साथे सरखावतां तपे कहेलां मुखो असंख्यातपे भागे पण आवी शकतां नथी.’ पछी अर्णिकापुत्र आचार्यने वोलावीने स्वर्गगुरुखतुं स्वरूप पूछ्युं. तेणे राणीए स्वप्नमां जोयेलां मुखो जेवांज स्वर्गनां मुखो कही वताव्यां. राणीए पूछ्युं के ‘एवां मुखो केवी रीते मेलवाय ?’ गुरुए कहुं के ‘यतिर्थं पालन्तारी मेलवी शकाय.’ पछी धर्मतुं सर्व स्वरूप जाणवाथी पुष्पचूलाने वैराग्य उत्पन्न थयो, तेथी तेणे

चारित्र ग्रहण करवाने माटे पतिनी आज्ञा मारी. त्यारे राजाएँ करुं के 'तुं मन अनिष्टिष्ठ छे. माराथी तरो वियोग सहन थइ शक्षी नहि, तेथी हुं तने दीक्षा ग्रहण करवानी आज्ञा केवी रीते आपी शकुं?' राणीए वणा उपदेशवटे राजाने वाळ्यां, त्यारे राजाएँ करुं के 'जो दीक्षा ग्रहण करी अहंज रहे अने मारा घरनी भिक्षा ले तो हुं तने दीक्षा ग्रहण करवानी आज्ञा आपुं.' राणीए ए वावत कबुल करी अने अणिकापुत्र आचार्य पास दीक्षा लीधी. पछी ते त्यांज रहीने राजाने घेरथी दररोज शुद्ध भिक्षा लेले अने शुद्ध चारित्रधर्म पालेछे.

एक दिवस अणिकापुत्र आचार्य वार वर्षनो दुक्काल पठवानुं ज्ञानवडे जाणी सर्व यतिओने जुदी जुदी दिशाओमां मोकली दीधा, अने पोते नहि चाली शक्वाथी त्यांज रखा. पुष्पचूला साध्वी दररोज गुरुने आहार लावी आपेछे अने तेमनी पितानी माफक सेवा करेछे. ए प्रमाणे प्रतिदिन गुरुभक्तिपरायण रहेतां पुष्पचूलाने शुभ ध्यानना योगयी केवलज्ञान उत्पन्न थयुं, तोपण ते गुरुने आहार विंगरे लावीने आपेछे. एक वर्षत मेव वरसतो हतो, छतां पण पुष्पचूला भिक्षा लड्ने आवी. तेने गुरुए करुं के 'हे वत्से! तुं आ शुं करेछे? एक तो हुं एकस्यानवासी दुं, वीजुं हुं साक्षीनो आणेलो आहार ग्रहण करुंद्युं, वकी वरसाद वरसेले छतां पण तुं आहार लावीने मने आपेछे, ते शुं उचित करेछे?' त्यारे पुष्पचूलाए करुं के 'हे स्वामी! आ मेव अचित्त छे. 'गुरुए करुं के 'ते तो केवली होय तेज जाणे. त्यारे पुष्पचूलाए करुं के 'स्वामिन्! आपनी कृपायी ते ज्ञान मने पण छे.' ते सांभळीने आचार्य पश्चात्ताप करवा लाग्या के 'अरे! मने धिक्कार छे के में केवलीनी आशातना करी.' आ प्रमाणे खेद करीने तेणे मिथ्यादुपृक्त दीधो. पछी साध्वीए कहुं के 'हे स्वामिन्! तमे शामाटे खिन्न थाओ छो? तमे पण गंगा नदी उतरतां केवलज्ञान पामी मोक्षे जशो.' ते सांभळीने गुरु गंगाने काठे आवी नावनी अंदर वेडा, तेटलामां पूर्वभवना वैरी कोइ देवे आवीने जे वाजुए गुरु वेडेला छे ते भागने जळमां डुवाववा मांडयो, त्यारे गुरु नावना मध्य भागमां वेडा, एटले आखी नाव बुडवा लागी. ते जोइ अनार्य लोकोए जाण्युं के 'अरे! आ यतिने लीधे सघळाओतुं मरण धशे.' ए प्रमाणे चितवीं तेओए मळी. आचार्यने उपाहीने जळनी अंदर नांखी दीधा. ते समये पेला देवे आवीने तेनी नीचे विशूल धारण कर्यु अने ते बडे अणिकापुत्र आचार्यने वींधी लीधा. ते वरवते पोताना शरीरमांथी नीकळता रुधिरने जोइ आचार्य मनमां विचार करवा लाग्या के 'अरेरे! आ मारा रुधिरथी जळना जीवोनी विराधना थाय छे.' ए प्रमाणे अनित्य भावना भावतां घातिकर्मनो क्षय थवायी केवलज्ञानं पामीने मोक्षे गया. त्यां

देवोए आवीने तेनो महिमा कर्यो, तेथी लोकोए जाण्यु के 'जे गंगामां मरेछे ते मोक्षे जायछे.' पछी ते स्थाने प्रयाग नामना तीर्थनी लोकोए स्थापना करी.

जो अविकँलं तवसंज्ञमं च, सांहू करिञ्जं पञ्चांवि ।

अन्निर्यसुयव्व सोऽनियग्ं—मङ्गमचिरेण्ं सोहै ॥ १७१ ॥

अर्थ—“जे साहु अविकळ के० संपूर्ण एवं तप (वार प्रकारनो) अने संयम (सर्व जीवरक्षा रूप सत्तर प्रकारनु) पश्चात् एटले वृद्धावस्थामां पण करेछे—साधेछे ते (वृद्धावस्थामां धर्म करनार) अर्णिकापुत्र आचार्यनी जेम पोताना अर्थने एटले परलोकना साधनने अचिर के० थोडा काळमां पण धर्म करेछे ते आत्मानुं हित साधी शकेछे. अहीं उपरनी कथामां कहेतां अविशिष्ट रहेलो अर्णिकापुत्रनो प्रथमनो संबंध जाणी लेवो. ५४.

अर्णिकापुत्र संबंध.

उत्तरमथुरा नगरीमां कोइ व्यापारीना कामदेव अने देवदत्त नामना वे पुत्रो रहेता हता. ते वनेने परस्पर अति गाढ मित्रता हती. तेओ एकदा पोतानां मातापितानी आशा लड्ने व्यापारार्थे दक्षिणमथुराए गया. त्यां तेमने जयसिंह नामना एक वणिकपुत्र साथे मैत्री थइ. जयसिंहने अर्णिका नामे वेन हती. ते धणी रूपवती हती. एक दिवस जयसिंहे पोतानी वेन अर्णिकाने कहुं के 'आज सरस रसोइ वनाव, कारणके मारा वे मित्र कामेदेव ने देवदत्त आपणे त्यां भोजने करवाना छे. तेथी अर्णिकाए उत्तम रसोइ वनावी. पछी भोजनसमये ब्रणे मित्रो एक पात्रमां भेलां जमवा वेडा. अर्णिकाए भोजन पीरस्युं. पछी ते अर्णिका तेमनी पासे उभी रहीने पोताना वस्त्रना छेडावी वायु नाखवा लागी. ते वस्त्रते तेना हाधना कंकणनो रणत्कार, तेनां स्तन, उद्र ने कटिप्रदेश तथा नेत्र ने कद्दननो विलास जोइने देवदत्त अत्यंत कामातुर थयो. तेमज धीना पात्रनी अंदर प्रतिविवित थयेलुं तेनुं रूप जोइने ते अति कामरागथी परवश वनी गयो. तेने भोजन विप्रहृष्ट थयुं, तेथी तेणे कंइ पण खावुं नहि अने जलदी उठी गयो.

वीजे दिवसे तेणे पोतानो अभिप्राय कामदेवनी मारफत जयसिंहने जणाव्यो. त्यारे जयसिंहे कहुं के “हे मित्र ! मारी आ वेन मने अतिप्रिय छे अने तमे तो परदेशी छो, तेथी तेनो वियोग माराथी केवी रीते सहन थइ शके ? माटे जे कोइ आ अर्णिकातुं

पाणिग्रहण करने मारा घरमांज वास करशे तेने हुं मारी बेन परणावचानो छुं; तेम छतां जो देवदत्त एक पुत्रनी उत्पत्ति थतां सुधी पण अत्र निवास करे तो हुं अर्णिकाने तेनी साथे परणावुं.” देवदत्ते ए सघबुं कबुल कर्युं अने अर्णिकाने परण्यो. पछी तेनी साथे मनवांछित विषयसुख भोगवता तेणे त्यां घणो काळ व्यतीत कयों. तेवामां अर्णिका गर्भधती थइ.

अन्यदा उत्तरमथुराथी देवदत्तना पितानो पत्र आव्यो, तेमां लखयुं हर्तुं के ‘हे पुत्र! तने देशांतरमां गयाने घणो काळ थयो छे; तेथी हवे तारे अहीं सत्वर आवडुं, विलंब करवो नहि’ ए प्रमाणे पितानो पत्र वारंवार वांचीने सुखथी बोली न शकाय एवा पितापरना प्रेमभावने प्राप्त थयेलो देवदत्त मनमां विचार करवा लाग्यो के ‘मने धिक्कार हो के हुं विषयाभिलापने लीधे वच-नथी बंधाइ गयो अने वृद्धावस्थावालां मातापिताने तजीने अहीं रहो. ए प्रमाणे खेद करता पोताना पतिने जोइने अर्णिकाए पति पासेथी पत्र लइ लीधो, अने ते वांचीने तेणे अंदरनी बीना जाणी. पछी ससराने मळवाने उत्कंठित थयेली अर्णिकाए महा आग्रह पूर्वक भाइनी आज्ञा मेलवी अने पोताना भर्तार साथे सासरे जवा चाली; मार्गमां तेने पुत्रप्रसव थयो. पछी देवदत्ते कहुं के ‘आ पुत्रनुं नाम अर्णिक (अर्णिकानो पुत्र) पाडबुं. पछी मातापिता तेनुं जे नाम पाडशे ते प्रमाण कराणुं.’ अनुक्रमे तेओ घेर आव्या अने मातापिताना चरणमां पढ्या. पिताने घणो आनंद थयो. तेणे पूछयुं के ‘हे वत्स ! आटला वखत सुधी त्यां रहीने तें रुं मेलबुं ?’ त्यारे देवदत्ते अर्णिकाथी जन्मेलो पोतानो पुत्र पिताना खोलामां मूळ्यो, अने पोतानी वहु वतावीने कहुं के ‘आटलुं मेलवीने हुं आव्योद्धुं.’ ते वखते पौत्र अने पुत्रवृने जोइने मातापिता घणा खुशी थया अने पिताए पोताना पौत्रनुं उचित नाम पाडबुं, परंतु अर्णिकापुत्र एवुं नाम विशेषपणे लोकमां प्रसिद्ध थयुं.

अनुक्रमे अर्णिकापुत्र युवान थयो, परंतु विषयमां विरक्त होवाथी वैराग्यपरायण बनीने तेणे चारित्र ग्रहण कर्युं. तेणे आगमनुं रहस्य जाणी, घणा जीवोने प्रतिबोध पमाडी आचार्यपद मेलबुं पछी साधुसमुदायथी परिवृत्त थइ विहारकरता करता पुष्पभद्र नगरे पथार्या, त्यारपछी जे हकीकत बनी ते उपर कोहली पुष्पचूलानी कथाथी जाणी लेवी.

सुँहिओ नं चैयइ भोएै; चैयइ जंहा दुखिवओ त्ति अलिंयमिँैं ।
चिकैणकमोलित्तो, नं इमो नं इमो परिच्यई ॥ १७२ ॥

अर्थ—“जेम दुःखी माणस विषयभोगादिकनो त्याग करे छे तेम सुखी माणस भोगादिकनो त्याग करी शकतो नथी, एम लोको जे कहे छे. ते असत्य छे, नियत वाक्य नथी. केमके चीकणां कर्मथी उपलिस थयेलो सुखी के दुःखी कोइ पण भोगने तजतो नथी. १७२.” जो कर्मनी लघुता होय तोज भोगने तजी शके छे, ते सिवाय कोइ तजी शकतो नथी, एम सिद्ध थाय छे.

जैह चर्यइ चक्कवट्टी, पवित्र्यं तंत्रियं मुहुत्तेण ।

नं चर्यइ तंहा अहन्नो, दुंबुद्धी खंपरं दंमओ ॥ १७३ ॥

अर्थ—“जेम चक्रवर्ती एक क्षणवारमां तेवी विस्तारवाली राज्यलक्ष्मीने तजी दे छे, तेम अधन्य (अपुण्यशाळी) अने दुष्ट बुद्धिवालो द्रमक (भीखारी) गाढ कर्मथी अवलिस होवाथी मात्र एक खर्पर जे भिक्षा मागवानुं पात्र तेने पण तजी शकतो नथी.” १७३
देहो पिपीलियाहि, चिलाइपुत्तस्स चालणी व्वै क्कओ ।

तर्णुओ वि मण्पंउसो, नं चालिओ तेण तार्णुवरि ॥ १७४ ॥

अर्थ—“कीडीओए चिलातिपुत्रना देहने चालणीनी जेवो छिद्रवालो करी नांख्यो, तोपण तेणे ते कीडीओ पर थोडो पण मनमां द्वेष कर्यो (आण्यो) नहि.” १७४.

पाणैच्चए वि पाँवं, पिवीलियाए वि जे नं ईच्छंति ।

ते कैह जई अंपावा, पाँवाइं कंरंति अन्नस्स ॥ १७५ ॥

अर्थ—“जेओ प्राणनो नाश थाय तोपण कीडीओ जेवा जीवो पर पण पाप कर्म करवा इच्छता नथी, ते (तेवा) पापरहित मुनिओ वीजा जीवो पर पापकर्म तो क्यांथी ज करे ? अर्थात् वीजाओ पर तो प्रतिकूळ आचरण सर्वथा न ज करे.” १७५.
शरीरने चालणी प्राय करनार कीडीओनो विनाश पण जे न इच्छे ते अन्यनुं अहित तो करेज केम ? ए तात्पर्य समजवो.

जिणपंहअपंडियाणं, पाणहैराणं पि पहर्माणाणं ।

नं कंरंति यं पाँवाइं, पाँवस्स फैलं वियाणंता ॥ १७६ ॥

अर्थ—“बली जे पापनुं फल (नरकादिक छे एम) जाणेछे एवा मुनिओ जैन-मार्गने नहीं जाणनारा (अधम) लोको के जेओ खझादिकवडे प्रदार करीने प्राणोनो

गाथा १७३—पवित्र्यं=प्रविस्तरां विस्तरवर्तीं राज्यलक्ष्मी ।

गाथा १७४—पिपीलियाहि । चालियाहि ।

गाथा १७५—पाँवे । पिपीलियाए ।

नाश करेले, तेओोना पर पण पापकर्मा करता नयी. ” अर्थात् तेओना मरणनुं चिंतवन करवा रूप पापकर्म आचरता नयी, तेओनो द्रोह करता नयी. १७६.

वहैमारणअदभख्याणदाणपरधणविलोवणाईं ।

सैवजहन्नो उँदओ, दैसगुणिओ इक्सिक्याण ॥ १७७ ॥

अर्थ—“ एकवार करेला एवा वथ (लाकडी विगेरयी मारवुं), मारण (प्राण नो नाश करवो), अभ्याख्यान दान (अल्लता द्रोपनो आरोप करवो) अने पस्थननो विलोप करवो एटले चोरी करवी,आदि शब्दयी कीइना मर्म वोलवा, गुप्त वात प्रगट करवी विगेरे. आ सर्वे पापकर्मानो जन्मयणे उदय (ओळायां ओळ्ये उदय थाय तो) दृश्यगणो थाय छे. एटले के एकवार मारेलो जीव पोताना मारनारने दशवार मारनार थाय छे (हणे छे). आ सामान्य फल जाणवुं.” १७७.

तिव्ययरे उवैओसे, सैयगुणिओ सयैसहस्रस्कोडिगुणो ।

कोडीकोडिगुणो वाँ, हुज्जं विवांगो वहुतरो वाँ ॥ १७८ ॥

अर्थ—“ तीव्रतर द्वेष छते एटले अति क्रोधवडे वथादिक करवायी सेणणो वि पाक उदय आवे छे, तेथी पण अधिक तीव्रतर द्वेष छते सो हजार एटले लाखगणो विपाक उदय आवे छे अथवा करोडगणो उदय आवेले; अने तेथी तीव्रतम अतिशय क्रोधवडे वथादिक करनारने कोटाकोटि गणो विपाक उदय आवे छे, अथवा तेथी पण अधिक विपाक उदय आवे छे. एटले के जेवा कपायवडे कर्म वांश्युं होय तेवो विपाक उदय आवे छे.” १७८.

केै इत्थै कैरंतालंवणं, इैमं तिहैयणस्स अँच्छेरं ।

जर्ह निंयभाखवियंगी, भैरुदेवी भंगवई सिंद्धा ॥ १७९ ॥

अर्थ—“ केटलाएक पुरुषो आ (वथादिक विपाकरूप) अर्थने विषे त्रण जगतने आश्र्यकारक एवुं आ आलंवन ग्रहण करेले के जेम तप संयमादिक नियमोवडे जेनुं अंग क्षपित थयुं नयी, एटले पूर्वे जेणे धर्म प्राप्त कर्यो नयी एवी भगवती (पूज्य) मस्तुदेवी माता मोक्ष पाम्या छे, तेवी रीते अमे पण वथादिकना विपाकने अनुभव्या विना

गाथा १७७—विलोवणाईं ।

गाथा १७७—उपओसे । हुज्जु ।

गाथा १७८—कर्ति आलंवणं । नियमादभिरक्षपित अंग यस्याः सा ।

तपसंयमादिक धर्मानुष्ठान कर्या विना ज मोक्ष पामीशु, एवुं अवलंबन ग्रहण करे छे,
ग्रहण करवा लायक नथी।” १७९.

मरुदेवी मातानी कथा.

ज्यारे श्रीकृष्णभस्वामीए चारित्र ग्रहण कर्युं त्यारे भरत राजा राज्यना अधिकारी
थां. भरतने दररोज मरुदेवी माता उपालंभ आपता हता के “हे वत्स ! तु राज्य-
सुखपां मोह पाम्यो छे, तेथी मारा पुत्र क्रष्णभनी तुं कांइ सारसंभाल लेतो नथी; हुं
लोकोना मुख्यी एवुं सांभलुं छुं के तें मारो पुत्र एक वर्ष थयां अन्नजल विना भूख्यो
तरस्यो अने वत्ति विना एकाकी अरण्यमां विचरेछे, तापादिक सहन करे छे अने वहु दुःख-
ने अनुभवे छे, माटे एकवार तुं मारा पुत्रने अहीं लाव, तेने हुं भोजन आपुं अने एकवार
पुत्रतुं मुख जोडं।” ते सांभलीने भरते कहुं के “हे माजी ! तमे शोकन करो, अमे सो-
ए तमाराज पुत्रो छीए।” माता बोल्या—“हे वत्स ! तुं कहे छे ते खरुं, पण आम्रफलनी
इच्छावाला माणसने आंवलीना फलथी शी तुमि थायैमाटे ते क्रष्णभ पुत्र विना आ सर्व
संसार मारे मन तो शून्यज छे।” आ प्रमाणे दररोज उपालंभ आपता तथा पुत्रना वियोग-
थी रुदन करता मरुदेवी माताना नेत्रमां पडल आव्यां. एवी रीते एक हजार वर्ष व्यतीत
थयां एट्ले श्रीकृष्णभस्वामीने केवलज्ञान उत्पन्न थयुं. ते वर्खते चोसठ इन्द्रोए आवीने सम-
वसरण रच्युं वनपालके भरत राजाने तेनी वधामणी आपी. ते जाणीने भरत राजा
मरुदेवी माता पासे आवी ते दृत्तांत कहीने बोल्या के—“हे माता ! तमे मने हेमेशां उपा-
लंभ आपता हता, के मारो पुत्र टाढ तडका विगेरेनी पीडाने अनुभवे छे अने एकलोज
वनमां विचरे छे, तो आजे मारी साथे तमे चालो एट्ले तमारा पुत्रनो वैभव हुं तमने
वतावुं।” ते वचन सांभलीने पुत्रदर्शनमाटे अति उत्सुक थयेली मरुदेवी माताने हस्तीना
संघर वेसाडीने भरतराजा समवसरण तरफ चाल्या. समवसरण नजीक पहोचतां देवदुंदु-
भिनो शब्द सांभलीने मरुदेवी माताने हर्प थयो अने देव तथा देवीओना जय जय
शब्दो सांभलीने तेमने रोमोद्रूप थयो, नेत्रोमां हर्पनां अशु आव्यां. तेथी तरतज तेमनां
नेत्रपडल उघडी गयां, एट्ले समवसरणना त्रण प्राकार, अशोक दृक्ष तथा छत्र चापरा-
दिक सर्व तेमणे प्रस्त्यक्ष दीटुं. पछी उपमा रहित एवी प्रातिहार्यनी समृद्धि जोडने माता
मनमां विचार करवा लाग्या के “अहो ! आ संसारने विकार छे, अने मोहने पण
विकार छे. केमके हुं एम जाणती हती के मारो पुत्र एकलो वनमां भूख्यो तरस्यो भन-
कतो हशे, परंतु आ तो आटली वर्धी समृद्धि पाम्यो छे ते उतां पण तेणे मने कोइ
वस्त संदेशो सरखो पण मोकल्यो नहीं अने हुं तो तेनापरना मोहने लीपे हेमेशां

दुःखी थइ, तो कृत्तिम अने एकतरफी स्नेहने विकार छे ! पुत्र कोण अने माना पण कोण ? आ सर्व दुनिया स्वार्थीनीज सगी छे. वास्तविक कोइ कोइने वशालुं नयी. ” आरीत अनित्य भावनाने भावतां वातिकर्मनो क्षय यवार्थी केवलज्ञान पामी अंतर्मुहूर्त-मांज मोक्षपदने पाम्या. ‘ आ मरुदेवी माता प्रम सिद्ध या ’ एम कहीने देवोए तेमनो देह क्षीरसागरमां नार्ख्यो.

आ दृष्टांत लइने केठलाएक माणसो एम कहे छे के—“ तप संयम विगेरे अनुष्टान कर्या विना जेम मरुदेवी माता सिद्धिपद पाम्या, तेम अमे पण मोक्ष पामीशुं. ” एवं आलंबन ग्रहण करे छे, पण विवेकी पुरुषोए तेतुं आलंबन ग्रहण करवा लायक नयी.

किंपि कहिंपि कयाई, ऐगे लँझीहिं केहिवि निंभोहिं ।

पत्तेअंबुद्धलाभा, हर्वंति अच्छेयवभूया ॥ १८० ॥

अर्थ—“ केठलाएक (प्रत्येकबुद्ध) पुरुषो, कोइक वरवत, काँडक वस्तु जोइने, कोइक स्थानने विपे, आवरणकारी कर्मना क्षयोपशम रूप लघिवडे करीने, कोइक बृद्ध वृपभ (वळद) विगेरे वस्तु जोवा रूप निमित्तवडे प्रत्येकबुद्धपणे सम्यक दर्शन चारित्रादिकनो लाभ प्राप्त करे छे ते आथर्यभूत छे, एटले तेवां दृष्टांतो थोडांकज होय छे, माटे तेतुं आलंबन पण ग्रहण करवा योग्य नयी. ” १८०.

निंहिं संपत्त महेन्नो, पडिँच्छेतो जहं जणो निरुत्तंपो ।

इह नासई तंह पत्तेअंबुद्धलाङ्गि पैँडिच्छेतो ॥ १८१ ॥

अर्थ—“ जेम आ जगत्मां (निधिने) इच्छतो पण तेने लेवा माटे (वलिविधान रूप) उद्यमने नहीं करतो एवो अधन्य एटले अपुण्यशानी माणस ते प्राप्त थयेला (रत्नसुवर्णादिकथी भरेला) निधिने पण नाश पमाडे छे, तेम प्रत्येकबुद्धपणानी लक्ष्मीने वांछतो एवो पुरुष पण तप संयमादिक वलिविधान नहीं करवारी मोक्ष रूप निधानने नाश पमाडे छे. ” १८१.

सोऊण गँइ सुकुमालियाए, तंह ससंगभसगभयणीए ।

तर्वि नं विसंसीयव्वं, सेयंझीधमीओ जाँव ॥ १८२ ॥

अर्थ “ तथा ससक अने भसक नामना वे भाइओनी वहेन सुकुमालिकानी ”

गाथा १८०—कहेपि । कहव । अच्छेयभूया । केहिविनिभेहिं—कैश्चिदपि निमित्तैः ।

गाथा १८१—पत्तियो—पच्छिंतो । निरुत्तंपो निरुद्यमः ।

गाथा १८२—सुकुमालियाइ । सेयंझि धमिमओ ।

ગતિ—અવસ્થા સાંભળીને જ્યાંસુધી રુધિરમાંસથી રહિતપણાએ કરીને જેના અસ્થિ (હાઢકાં) શેત એટલે ઉજ્વલ થયેલાં છે એવો ધાર્મિક (ધર્મસ્વભાવ) થાય ત્યાંસુધી પણ વિષ-
યરાગાદિકનો વિશ્વાસ કરવો નહાં. અર્થાતું શરીરમાં રુધિર તથા માંસ શુષ્ક થઇ જાય
અને હાડકાં શેત થાય તો પણ ધર્મવાન् સાધુએ વિષયાદિકનો વિશ્વાસ કરવો નહાં.” ૧૮૨.
અહીં સુકુમાલિકાની કથા જાણવી. ૧૬

સુકુમાલિકાની કથા:

વસંતપુર નગરમાં સિંહસેન રાજા રાખ્ય કરતો હતો. તેને સિંહલાં નામની
રાણી હતી. તે રાણીની કુલિંગથી ઉત્પન્ન થયેલા સસક અને ભસક નામના તેને વે મુત્રો
હતા. તે વન્ને હજાર હજાર યોદ્ધાઓનો પરાજય કરે તેવા બેલવાન હતા. તે વન્નેને
સુકુમાલિકા નામે અતિ રૂપવાન એક વહેન હતી. એકદા કોઇ આચાર્ય પાસે
અનુપમ રસવાળી અમૃત સસરવી ધર્મદેશના સાંભળીને સસક અને ભસકે ચારિત્ર ગ્રહણ
કર્યું. તેઓ અનુક્રમે ગીતાર્થ મુનિ થથા, એટલે તેમણે આવીને પોતાની વહેન સુકુમાલિકાને
પ્રતિબોધ કર્યો; તેથી તેણે પણ ચારિત્ર ગ્રહણ કર્યું. પછી તે સાધ્વીઓની સમીપે રહીને
છટું અદ્ભુત વિગેરે આત્માપના સાહિત તપ કરતી સતી પોતાના સૌદર્યના દર્પને દંલન કરવા
કાગી; તોપણ તેના અનુપમ રૂપથી મોહ પામેલા અનેક કામી પુરુષો ત્યાં આવીને તેની
સન્મુખ વેસી રહેતા હતા, અને તેની સાથે વિપયની અભિલાષા કરતા હતા. એક રૂપણ
પણ તેના સંગને તેઓ મૂકતા નહાં. તે જાણીને બીજી સાધ્વીઓએ તેને ઉપાશ્રયમાં
જ રાખવા માંડી. તોપણ તેના રૂપથી મોહ પામેલાં કાંઈં પુરુષો ઉપાશ્રયના દ્વારે
આવીને વેસી રહેવા લાગ્યા, અને તેના મુખને જોવાની લાલસાથી ઉન્મત્તની જેમ
ભમવા લાગ્યા. તેથી કંદાળીને સાધ્વીઓએ જિંને આચાર્યને કહું કે “ હે સ્વામી ! આ
સુકુમાલિકાના ચારિત્રનું રક્ષણ અમારથી વનવું અશક્ય છે, કેમકે કામસેવાના અર્થી
ઘણા યુવાનો ઉપાશ્રયે આવીને ઉપદ્રવો કરે છે. તેઓને અમે શી રીતે નિવારી શકીએ ? ” ,
તે સાંભળીને સૂરીએ તે સુકુમાલિકાના ભાડાઓ સસક ભસકને બોલાવોને કહું કે—“ હે
વત્સો ! તમે સાધ્વીને ઉપાશ્રયે જાઓ, અને તમારી બેનની રક્ષા કરો. શીલપાલનમાં
તેને સહાય કરવાથી તમને મોટો લાભ છે. ” આ પ્રમાણે ગુરુનું વાક્ય સાંભળીને તે
એ ભાડાઓ ત્યાં જિંને વહેનની રક્ષા કરવા લાગ્યા. તેમાંથી એક જણ નિરંતર ઉપાશ્રયને
રણ વેસી રહે છે અને બીજો ગોચરી માટે જાય છે. એક વખત તો યુવાન કામી
જોની સાથે તેમને યુદ્ધ થયું. તે જોંને સુકુમાલિકાએ વિચાર્યું કે ‘ મારા રૂપને
જ ને ! કે જેથી મારા ભાડાઓ મારે માટે સ્વાધ્યાય, ધ્યાન, અધ્યયન વિગેરે મુકીને

लेश सहन करे छे; तो हवे हुं अनशन ग्रहण करीने जे शरीरमे माटे आ कामी पुरुषो ताप पामे छे ते शरीरनो त्याग करुं.” ए रीते विचारीने तेणे अनशन ग्रहण कर्युं. तेथी मालतीना पुष्पनी जेम ते थोडा दिवसमां करमाइ (सूकाइ) गइ, तेनुं शरीर क्षीण थयुं, अने एकवार तो श्वासनुं रुथन थवायी ते मूळी पापी. ते जोइने तेना भाइओ तेने मरेली. जाणी गाम बहार जड बननी भूगिमां परटनी आव्या. पछी ते बने गाममां आव्या. अहीं थोडी बारे अरण्यना शीतल बायुयी सुकुमालिकाने चेतना आवी. तेथी ते उभी थड्ने चोतरफ जोत्रा लागी. तेवामां त्यां कोइ सार्थवाह आव्यो. तेना सेवको जळ अने काष्ठ लेवा माटे बनमां भमता हता. तेमणे तेनुं बनदेवता समान स्वस्त्रप जोइने तेने लड जड सार्थवाहने सौंपा. ते सार्थवाहे पण तेने तैलमर्दनादि करावीने सज्ज करी, अने पथ्य भोजनादिक करावीने पाढी नवां यैवनवाळी करी. पछी तेना रूपयी मोह पामेला सार्थवाहे तेने काणुंके “हे सुंदरी! आ तारुं शरीर पुरुषना भोगव्या विना शोभतुं नयी. जो कृदाच विषयमुखमा स्वादमां तेने विमुखपणुं होय, तो तारुं आवुं अनुपम स्वस्त्रप विधिए शा माटे कर्यु? हे कमळसमान नेत्रवाळी ! तेने जोया पछी मने वीजी खी रुचती नयी. जेम कल्पवल्लीनी वांछावाळों भ्रमर वीजी वल्लीनो मनोरथ करतो नयी, तेम तारा रूपयी जेनुं मन मोह पामेणुं छे एवा मने वीजी खी गमती नयी. माटे मारापर कृपा कर अने कामदेवरूपी समुद्रमां डुधी गयेलो जे हुं तेनो उद्धार कर.” आ प्रमाणेनां सार्थवाहनां बचनो सांभलीने सुकुमालिकाए विचार्युके “आ संसारमां कर्मनी गति विचित्र छे. विधाताना विलासनी संभावना थइ शक्ती नयी. काणुंछे के-

अघटितघटितानि घट्यति, सुघटितघटितानि जर्जरीकुरुते ।
विधिरेव तानि घट्यति, यानि पुमान्नैव चिन्तयति ॥ १ ॥

“विधिज (विधाताज) अयोग्य संयोगवाळा पदार्थोने एकत्र करे छे, अने सारी रीते योग्यतायी संयोग पामेलाने जर्जरित (जूदा) करे छे. पुरुष जेने मनमां पण कोइ वर्खत चिंतवतो नयी तेने ते विधिज संयोगी करी दे छे.”

आ प्रमाणे जो विधातानोज विलास न होय तो मारा भाइओज मने मरेली धारी न शा माटे बनमां मूकी दे ? अने आ सार्थवाहनो संबंध पण शी रीते थाय ? तेथी धारुं छुंके हञ्ज मारे कांइक पण भोगकर्म भोगवतुं वाकी राहुं छे. वली आ सार्थ पण मारो मोडो उपकारी छे, तेथी मारा संगम माटेनो तेनो अभिलाप हुं पूर्ण करुं.

एम विचारीने सुकुमालिका सार्थवाहमा चरणमां पड़ीने हाथ जोड़ी बोली के “हे स्वामी आ मारी देहकता तमारे आधीन छे, माटे आ स्तनस्ती वे गुच्छने ग्रहण करो, अने तमारो मनोरथ पूर्ण करो.” ते सांभलीने हर्षित धयेलो सार्थवाह तेने पोताना नगरमां लड़ गयो, अने त्यां तेनी सधे निःशंकपणे विषयसुख अनुभवतां तेनो घणो काळ व्यतीत धयो.

आ अवसरे विहार करता करता ससक अने भसक मुनि तेज नगरमां आव्या. आहार लेवा माटे तेमणे नगरमां प्रवेश कर्यां; फरतां फरतां कर्मयोगे तेमणे सुकुमालिकाने ज धेर जइने धर्मकाभ आध्यो. तेमने जोड़ने सुकुमालिकाए तो पोताना भाइओने ओळख्या, पण भाइओए तेने वरावर ओळखी नहीं. तेथी तेंओ तेना सासुं जोवा लाग्या, एट्ले सुकुमालिकाए पृष्ठ्युं के “हे मुनिराज ! तमे मारी सन्मुख जोड़ने केम उभा छो ? ” तेंओ बोल्या के “तारा जेवी अमारे एक वेन पहेलां हती.” ते सांभलीने नेत्रोपर्यांथी अश्रुपात करती सुकुमालिकाए पूर्वतुं सर्व वृत्तांत भाइओने कहुं, पछी ते भाइओए सार्थवाहने प्रतिवोध पमाडीने तेने गृहवासधी छोडावी फरी दीक्षा आपी, ते शुद्ध (निरतिचार) चारित्रतुं आराधन करी अन्ते शुद्ध आलोचना पूर्वक मृत्यु पापीने स्वर्गे गड.

आ सुकुमालिकानी कथा सांभलीने धर्मवान पुरुषे विषयोनो विश्वास करवो नहीं; अने ‘हुं जरावस्थायी जीर्ण थयो हुं, माटे हवे मने विषयो हुं करवाना छे ? ’ एम कदी पण विचारतुं नहीं.

खरकरहतुरयवसहा, मत्तंगयंदा विं नाँम दैमंति ।

‘ इँको नर्वरि नै दैम्मइ, निरंकुसौ अंप्पणो अंप्पा ॥ १८३ ॥

अर्ध—“गयेडा, उंट, अब, वृप्तम (बळद) अने मदोन्मत्त गजेन्द्रो पण दृष्टी भ्रमाय छे—वश कराय छे; परंतु एक निरंकुश एवो पोतानो आत्मा वश करातो नयी” ? १८३

वरं मे अप्पां दत्ता, संजमेण त्वेण यै ।

मौं हं परेहिं दैमंतो, वंधेणहिं वंहेहि अै ॥ १८४ ॥

अर्ध—“मारो (पोतानो) आत्मा संयमवडे अने तपवडे दृष्टन करायेलो था, भेष छे, परंतु तुगतिमां गयेलो हुं वीजा पुरुषोपी शृंखला रज्जु विगरेना वंयनवडे लडी वीगरेना प्रदावडे दृष्टन करायेलो—ताप पमाटाणलो (वश करायेलो) थाउं पी, अर्थात् तेम न धाय तो दीक.” १८४.

अप्पाँ चैव दमेयवो, अप्पाँ हुँ खर्डु दुँहमो ।

अप्पा दंतो सुंही होइँ, अंसिंस लोएँ पैरत्थ ये ॥ १८५ ॥

अर्थ—“निथये करीने आत्मा दमन करवा योग्य छे—वश करवा योग्य छे. केमकै (एक) आत्मा ज दुर्दम (दुःखे करीने दमन थाय तेवो) छे. ते आत्मानुं दमन कर्य होय तो ते आलोकमां तथा परलोकमां मुख्यी थाय छे.” १८५.

निंचं दोसंसहगओ, जीवो आविरहिय मसुहपरिणामो ।

नवरं दिन्ने पँसरे, तो देहं पमायं मंयरेसु ॥ १८६ ॥

अर्थ—“नित्ये द्वेषनी साथे रहेलो एट्ले रागेद्वेषनो सहचारी धयेलो एवो आजीव निरंतर अशुभ परिणामवालो रहेछे. ते आत्माने जो प्रसार आप्यो होय एट्ले जो तेने मोक्षो (छूटो) मूक्षो होय तो ते आ संसारसागर मध्ये लोकविरुद्ध अने आगमविरुद्ध एवां कायोमां विषय कपायादिक प्रमादने आपे छे.” १८६.

अंचिय वंदियं पूँझअ, सङ्कारिय पण्मिओ महर्घविओ ।

तं तंह कंरेह जीवो, पँडेह जंह अप्पणो ठंणं ॥ १८७ ॥

अर्थ—“गंधादिकवडे अर्चन (पूजन) करेलो, अनेक लोकोए गुणस्तुतिवडे वंदना करेलो—स्तुति करेलो, वस्त्रादिकवडे पूजेलो, उभा ध्वं विगेरे विनयवडे सत्कार करेलो, मस्तकवडे प्रणाम करेलो अने आचार्यादिक पद आपीने महत्व पमाडेलो एवो जीव गविष्ट धैने ते प्रमादादिक अकायोने एवी रीते करेछे के जेथी ते जीव पोताना महत्ववाला स्थानने पाडी देछे, एट्ले आचार्यादिक महत्ववाला स्थानथी ते भ्रष्ट थाय छे.” १८७

सीलववयाइं जो बहुँफलाइं, हंर्तूणय सुखस महेलसह ।

धीइँदुब्बलो तैवस्सी, कोडीए कांगिणि किँणई ॥ १८८ ॥

अर्थ—“संतोषवडे दुर्बल—असमर्थ (संतोष विनानो—अवृत्त) एवो जे तपस्सी जेनाथी स्वर्गमोक्षादिक धणां फलो प्राप्त थायछे एवा शील ते सदाचार अने व्रत ते पंचमहाव्रत तेने हणीने—तेनो नाश करीने विषयसेवनरूप सुखनो अभिलाप करेछे ते कोटी द्रव्य आपीने रूपीआना ऐशीमा भागरूप काकिणीने खरीद करे छे.” १८८.

जीवो जहाँमणसियं, हियइच्छ्यपत्थिएहिं सुख्खेहिं ।

तोसेऊण न तीर्द्ध, जावज्जीवेण संवेण ॥ १८९ ॥

अर्थ—“ आ संसारी जीव मननी अभिलाषाने अनुकूल अथवा जे प्रमाणे मनमां चित्तब्द्यु होय ते प्रमाणेनां हितकारक, इच्छेलां अने प्रार्थना करेलां एवां ही विग्रेनां सुखोए करीने सर्व जीवन पर्यंत अनुभव कर्या छतां अर्थात् ते सुखो भोगव्यां छतां पण संतोष पामवाने समर्थ थतो नथी; एटके जावज्जीव निरंतर अनुभवेदा विषयसुखथै पण आ जीव संतोषने पामतो नथी. ” १८९.

सुमिणंतंगणुभूयं, सुखं समद्विथ्यं जहा नैति ।

ईवमिमं पि अईयं सुखं, सुमिणोवमं होई ॥ १९० ॥

अर्थ—“ जेम स्वप्न मध्ये अनुभवेलुं सुख जागृत थया पछी होतुं नथी, तेम आ (प्रत्यक्ष अनुभवेलुं विषयसुख) पण वर्तमानकाळतुं उल्लङ्घन थया पछी एटके भोगवी रथा पछी स्वप्ननी उपमावालुं एटके स्वप्न तुख्यज थाय छे, माटे ते विषयसुखमां आदर करवो नहीं. ” १९०.

पुरनिद्धमणे जंकखो, महुरा मंगू तेहेव सुयैनिहसो ।

बोहोई सुविंहियजणं, विसूरइ बैहुं च हियैंण ॥ १९१ ॥

अर्थ—“ तेमज श्रुतनी एटके सिद्धान्तनी परीक्षाना निकप एटके कसोटीना पापाण तुल्य अर्थात् वहुश्रुत एवा मंगू नामना आचार्य मधुरा नगरीमां नगरनी खाक पासे (यक्षप्रापादमां) यक्षपणे उत्पन्न थया; अने पछी ते सुविहित जन एटके साधु जनने (पोताना शिष्योने) बोध पमाडवा लाग्या अने हृदयमां घणो शोक करवा काग्या. एटके शिष्योने बोध करतां पोताना हृदयमां अत्यंत शोक करता हता. (ते वात द्वे पछीनी गाथामां कहेवामां आवशे). ” १९१. अहीं मंगू आचार्यनो संबंध जाणवो. ७७

मंगूसूरिनी कथा.

एकदा श्रुतस्त्री जळना सागरस्प युगप्रधान श्रीमंगू नामना आचार्य मधुरा नगरीमां पथार्या. ते नगरीमां घणा धनाढ्य श्रावको रहेता हता. तेओ साधुओनी अस्यंत भक्ति करनारा हता. तेथी तेओए ते आचार्यनी घणी सेवा करी. आचार्य पण त्यांज रहीने पठन, पाठन तथा व्याख्यान करवा काग्या. तेथी तेमणे श्रावकोनां चित्त अस्यंत आचरित कर्या, एटके तेओ मंगूसूरिपर अधिक भक्तिवाला थया. आचार्यनी सर्व रीत-

गाथा १९०—समद्विधं=समतीते जागरनामंतर ।

गाथा १९१—इसकेतमणे=नगरजटनिमंगममांग ।

भात उंचा प्रकारनी जोइने तेओ प्रम विचारवा लाग्या के “आ पुरिं आहार दिकनुं दान करवाई आपणे भवसागरनो पार पार्मीऱ्युंज.” प्रम जाणीने त्यांना श्रावको तेमने मिष्ट अने सरस आहार आपवा लाग्या. नेवो आहार भोगवतां आचार्यने रसलोल्युपता थड. एटले तेमणे विचार कर्या के “जुदे जुदे स्थाने विहार करतां आवो आहार कोइ पण स्थाने हुं पास्यो नथी, वली अर्हांना श्रावको पण विशेष प्रकारे भक्ति करेल; माटे आपणे तो अर्हींज स्थिरता करवी योग्य छे.” प्रम विचारीने ते आचार्य स्थानवासी-पणाए करीने (एक स्थानेज रहेवापणाए करीने) त्यांन राया. थीरे थीरे गृहस्थीओनी साये परिचय कधतो गयो. तेथी मिष्ट आहारना भोजनवडे, अति कोमळ शश्यामां शयन करवावडे अने युंदर उपाश्रयमां रहेवावडे ते आचार्य रसगृह थड गया, आवश्यकादिक नित्यक्रिया पण छोडी दीवी, अने मनमां अदंकार करवा लाग्या के ‘मने श्रावको केवो रसवाळो आहार आपेछे? ए प्रमाणे ते रसगौरव करवा लाग्या. अनुक्रमे त्रण गौरवमां निमग्न थडने सर्व जगतने तृण समान मानवा लाग्या. मूळ गुणमां पण कोइ कोइ वखत अतिचारादिक लगाडवावडे शिथिल थया. ए प्रमाणे चिरकाळ सुवी अतिचारादिकथी दूषित धयेला चारित्रनुं पालन करीने छेवडे तेनी आलोचना कर्या विना मृत्यु पार्मी तेज नगरना जलने नीकळवानी खाल पासेना यशालयमां यक्षणे उत्पन्न थया. त्यां तेणे विभंगज्ञानवडे पूर्वभव जोइने पश्चात्ताप कर्या के “हा, हा! मैं मूर्खाए जिहाना स्वादमां लंपट थडने आवी कुदेवनी गति प्राप्त करी.” पछी पोताना शिष्यो वहिर्भूमिए (स्थंडिल) जडने पाढा आवतां ते यक्षनी नजीक आव्या त्यारे तेमने उदेशीने ते यक्षे पोतानी जिहा मुखथी वहार काढीने देखाडी. ते जोइने ते सर्वे शिष्योए मन वृद्ध राखीने तेने पृष्ठ्युं के—“हे यक्ष ! तुं कोण छे ? अने शा माटे जिहाने वहार काढे छे ?” यक्ष वोल्यो के “हुं तमारो गुरु मंगू नामनो आचार्य जिहाना स्वादमां पराधीन थडने आवो अपवित्र देव थयो छुं. मैं यहनो त्याग करी चारित्र लडने पण जिनेव्हेर कहेला धर्मनी आराधना न करी अने त्रण गौरववडे आ आत्माने मलीन कर्यो; चारित्रनी शिथिलतामां समग्र आयुष्य गुमाव्युं. हवे अधन्य, पुण्यरहित अने विरति विनानो एवो हुं शुं करुं ? आ भवमां तो हुं विरति पालवाने समर्थ नथी; तेथी मारा आत्मानो हुं शोक करुं छुं. आ पापी जीव वीतरागना धर्मने पास्या छतां पण ते धर्मनुं सम्यक प्रकारे पालन नहीं करवाई घणो काळ संसारमां भटकशे. माटे हे साधुओ ! तमे श्रीजिनधर्मने पार्मीने रसलंपट थशो नाहिं. जो कदाच जिहाना स्वादमां लुब्ध थशो तो मांरी जेम पश्चात्ताप करवानो वखत : आवशे:” आ प्रमाणे पोताना पूर्वभवना शिष्योने उपदेश आपीने ते यक्ष अदृश्य थयो. पछी ते साधुओ शुद्ध चारित्रनुं पाळन

કરીને સદ્ગતિને પામ્યા. આ દૃષ્ટાંત સાંભળીને સર્વ કોઈએ જિદ્ધાના સ્વાદનો ત્યાગ કરવો. હવે તે યથે જે પ્રમાણે શોક કર્યો તે નીચેની ગાથામાં વતાવે છે.

નિર્ગમંતૂણ ધૈરાઓ, નું કંઈ ઓ ધ્યમો મેણ જિણેખખાઓ ।

ઇંદ્રિસસાયગુસ્યત્તણેણ, નું યું ચેંડેઓ અંપા ॥ ૧૯૨ ॥

અર્થ—“ મેં ગૃહથી વહાર નીકળીને પણ નિવાસસ્થાન, વહ્ન વિગેરેની ક્રદ્ધિથી ક્રદ્ધિગારવ, મિઠ આહારાદિકના રસથી રસગારવ અને કોમલ શય્યાદિકના સુखથી સાતગારવ—એમ એ ત્રણેને વિષે આદરપણાએ કરીને એટલે તેમનો આદર કરીને શ્રીજિનેથ્વે કહેલો ધર્મ કર્યો નહીં (પાછ્યો નહિં), અને મારા આત્માને મેં ચેતિત—સાવધાન કર્યો નહિં.” ૧૯૨.

ઓસેન્નવિહારેણ, હાઁ જાહ ઝીણંમિ ઔડએ સંઘે ।

કિં કાંહામિ અહનો, સંપદી સોયામિ અંપાણ ॥ ૧૯૩ ॥

અર્થ—“ અરે ! જે પ્રકારે ચારિત્રવિપયમાં શિયિલ વ્યવહાર કરવાન્ડે મારું સર્વ આયુષ્ય જીર્ણ-ક્ષીણ થયું, તો હવે અધન્ય-નિર્ભાગ્ય એવો હું શું કરું ? હવે તો માત્ર મારા આત્માના શોકજ કરું.” ૧૯૩.

હાઁ જીવિ પાપ મૈમિહિસિ, જાઈજોણીસયાં બંહુયાં ।

ભવ્યસયસહસરુલુંહં પિ, જિર્ણમય એરિસં લંઘું ॥ ૧૯૪ ॥

અર્થ—“ હે પાપી (દુરાત્મા) જીવ ! સો હજાર (લાખ) ભવોવંડે પણ દુર્લભ (દુષ્પ્રાપ્ય) અને આવો અચિલ્ય ચિંતાપણી સર્વશ શ્રીજિનમત (જિનકાથિત ધર્મ) પાર્યોને પણ (તેની આરાધના નહિં કરવાથી તું) એકેદ્રિયાદિક જાતિ અને શીતોપ્યાદિક યોનિ-ઓના ઘણા સેંકડાઓમાં ભર્કીશા. ” ૧૯૪.

પાવો પમાયવ્સઓ, જીવો સંસારકલસુજુત્તો ।

દુઃખેહિં નું નિવિનો, સુકલેહિં નું ચેર્વ પરિંદો ॥ ૧૯૫ ॥

पाम्यो नहीं (जेम जेम दुःख पामे छे तेम तेम पापकर्म वयोरे करेहे), अने मुखोवडं एट्ले सुखो भोगवतां पण परितुष्ट (संतुष्ट) थयो नहीं (केमके जेम जेम सुख मलेहे तेम तेम नवां सुखनी वांछा करेहे.)” १०५.

पंशितपिण्डेण तर्णुओ, साहारो जइ धैणं नै उञ्जमइ ।

सेणियर्यां तं तैह, पंशितपिण्ठो गंओ नैरयं ॥ १०६ ॥

अर्थ—“जो (तप-संयमादिकने विषे) घणो उद्यम न करे, तो (मात्र) परितापवडे एट्ले पापकर्मनी निदा, गही अने पश्चात्तापादिकवडे थोडोज आधार थाय हे, अर्थात् तेथी लघुकर्मोनो क्षय थइ शके छे, पण महाकर्मोनो क्षय थतो नयी. तेथी करीनेज श्रेणिक राजा तेवा प्रकारनो (हा इति खेदे! मे विरति न करी एवो) परिताप कर्या छतां पण नरके गयो. (अथवा आ श्लोकना पूर्वार्थनो एवो अर्थ करतो के) जो तप संयमादिकने विषे घणो उद्यम न करे तो मात्र परितापवडे कर्म लघु थतां नयी, एट्ले के मर्हादिकं करवार्थी शिंथिल कर्मनोज नाश थाय हे, पण वढ वांधेलां कर्मनो नाश-भय थतो नयी.)” १०६.

जीवेण जाणि विसज्जियाणि, जाईसएसु देहाणि ।

थोवेहिं तौओ संयलं पि, तिहुर्यं तुंज पडिहृत्थं ॥ १०७ ॥

अर्थ—“जीवे (प्राण धारण करनारे) एकेन्द्रियादि सेंकडो जातिओने विषे पूर्वे ग्रहण करी करीने जेटलां शरीरो त्याग कर्या छे तेमांथी थोडां पण शरीरोए करीने (सर्व शरीरवडे नहीं) सकल विभुवन (ब्रह्म जगत) पण संपूर्ण थाय एट्ले के त्रण सुवन भराइ जाय तेटलां शरीरो जीवे पूर्वे ग्रहण करीने मूक्यां छे, तो पण ते जीव संतोष पामतो नयी.” १०७.

नैहदंतमंसकेसडिएसु, जीवेण विषपुकेसु ।

तेसु विं हविज कैइलासमेसुगिरिसन्निभा कूडा ॥ १०८ ॥

अर्थ—“जीवे पूर्वभवोमां ग्रहण करी करीने मूकेलां (तजेलां) जे नख, दांत, मांस, केश अने अस्थियो, ते सर्वने विषे पण एट्ले ते सर्व नखादिकने एकत्र करीए तो कैलास (हिमवान), मेरु अने वीजा सामान्य पर्वतो जेवडा पुंज-ढगला थाय, माटे तेने विषे पण प्रतिवंध करतो नहीं.” १०८.

हिमवंतमलयमंदरदीबोदहिधरणिसरिसरासीओ ।

अहिअयरो आहारो, हुंहिएणाहाँरिओ होज्जा ॥ १९९ ॥

अर्थ—“क्षुथित धयेला (भूख्या) एवा आ जीवे द्विमवान पर्वत, दक्षिण दिशामां रहेलो मलयाचळ पर्वत, मंदर (मेरु) पर्वत, जंबूदीप विगेरे असंख्याता द्वीपो, लवणसमुद्रादिक असंख्य समुद्रो अने रत्नप्रभादिक सात पृथ्वीओ—तेमनी जेवडा पोटा ढगलाओर्यी पण (तेटला मोटा ढगला करीए तो तेथी पण) अति अधिक आदार (अशन विगेरे) भक्षण करेलो छेः अर्थात् एक जीवे अनंता पुढगळ द्रव्यो भक्षण कर्याचे, तोपण तेनी क्षुधा शांत घड नधी.” १९९.

जैनेन जलं पीयं, धम्मायवजगडिएण तं पि॒ ईहं ।

संवेसु वि॑ अंगडतलायन॒इसमुदेसु न॑ वि॒ हुंजा ॥ २०० ॥

अर्थ—“ धर्म—ग्रीष्म कङ्गुना आतपथी पीडा पामेला आ जीवे जे जळ पीयुं छे ते पूर्वे पीथेलुं जळ आ संसारमां एकत्र करीए तो तेटलुं जळ सर्वे कृता, तलाचो, गंगादिक नदीओ अने लवणादिक समुद्रोमां पण न होयः अर्थात् एक जीवे पूर्वे जे जळ पीयुं छे ते सर्वे जलाशयोना जळथी पण अनंतगणुं छे.” २००.

पीयं ईण्यच्छीरं, सागरसंलिलाओ होजं वहुअयरं ।

संसारंमि अैणंते, माऊणं अन्नमन्नाणं ॥ २०१ ॥

अर्थ—“ आ जीवे जेनो अंत नथी एवा अनंता संसारमां भिन्न भिन्न माताओतुं पीयेलुं स्तनतुं दृथ समुद्रना जळथी पण वहुतर (अनंतगणुं) होयः अर्थात् समुद्रना जळथी पण अनंतगणुं दृथ आ जीवे पूर्व भवोमां जूदी जूदी माताओतुं पीयुं छे.” २०१.

पत्तां यै कामभोगा, कालमैणंतं ईहं संउवभोगा ।

अंपुच्चंपि वै मैन्नई, तहीविय जीवो मैणे सुैकवं ॥ २०२ ॥

अर्थ—“ वली आ संसारमां अनंत काळ मुथी जीवे उपभोग (वारंवार भेगवी शक्यत तेचां पर, स्त्री, वस्त्र, अकंकारादिक) पदार्थो सहित कामभोगो प्राप्त करेल्य छे; तोपण आ जीव पोताना पतनां ते विषयादिक मृत्युने जाणे अपूर्व—नवीन ज होय तेप्र माने छे:

गाप १९९—दर्शी=दर्शार्दी=भर्ती । गुवनुगा ।

गाप २००—जेन=यदेन भरेन । जर्दिगळ=र्दिगेन । अगट्टमृगः । र्दमृदः । दोदः ।

गाप २०१—परम दृथ । मात्रांमात्रां पद्मर्म ।

अर्थात् जाणे पोते पूर्व कोइ वरवत ते मुख भोगचयुंज नथी—नवृज भोगचे छे एम गाने छे।” २०३।

जाणइ जहाँ भोगिहिसंपया सँव्यमेव धमफलं ।

तहँवि दृढमूढहियओ, पैंवे कैम्मे जंणो रमई ॥ २०३ ॥

अर्थ—“आ जीव जाणे छे के ‘भोग—इंट्रियोथी उत्पन्न थतां मुखो, कळ्डि—राज्यलक्ष्मी अने संपदा—धन धान्य विग्रे—ते सर्व धर्मनुं ज फल (कार्य) छे, अर्थात् धर्मसूप कारणथीज भोगादिक कार्य प्राप्त थाय छे। तोपण दृढमूढ के। अत्यंत मूढ—अजानथी व्याप छे हृदय जेतुं एवो आ जीव पापकर्मां रमेछे—क्रीडा करे छे (पाप कर्म करवा उत्सुक थाय छे; अर्थात् जाणता छतां पण अजाण्यानी जेम पापकर्मां प्रवर्तं छे)।” २०३।

जाणिजइ चिंतिजइ, जम्मैजरामरणसंभवं दुक्खं ।

नै य विसैएसु विरज्जई अहो सुंवद्धो कर्वडगंठी ॥ २०४ ॥

अर्थ—“जन्म, जरा अने मरणथी उत्पन्न थयला दुःखने आ जीव गुरुनो उपदेश सांभव्याथी जाणे छे तथा मनमां चितवे छे (विचारे छे), तोपण आ जीव विषयोने विषे विरक्त थतो नथी। अहो! कपटग्रंथि (मोहग्रंथि) केवी सुवद्ध (कोइथी पण शिथिल करवाने अशक्य) छे? ते मोहग्रंथिना वशवत्तिपणाथीज आ जीव विषयोमां आसक्त थाय छे।” २०४।

जाणइ यं जैह मैरिजइ, अमरंतं पि॒ जैरा विणासे॒ई ।

नै य उ॑विग्गो लौओ, अहो रहैसं सु॒निम्मायं ॥ २०५ ॥

अर्थ—“बळी लोको जाणे छे के ‘सर्व प्राणी पोतपोताना आयुष्यना क्षं मरवाना ज छे, अने जरा (घृदावस्था) नहीं मरेला (जीवता) प्राणीने पण नोः पमाडे छे।’ तोपण लोको उद्गेग एटले संसारथी वैराग्य पामता नथी। अहो! मोः आर्थ्य! आ रहस्य केवूँ गुमपणे निर्माण करायुं छे?” २०५।

दु॑प्यं चु॑प्यं बहु॑प्यं, च॑ अ॑प्यं समिद्धर्महणं वाँ ।

अण॑वक्रए वि॑ कैयंतो, है॑इ है॑यासो अ॑परितंतो ॥ २०६ ॥

अर्थ—“हणी छे आशाओ जेणे एवो कृतांत (मृत्यु) मनुष्यादिक वे पगवालाने

गाथा २०४—कपटग्रंठी—कपटग्रंथिमोहग्रंथिः।

गाथा २०५—उविग्गो—उद्विग्गः—संसारात् खिन्नः।

गाथा २०६—अण॑वक्रए—अनपकृतेपि—अपराधमत्तरेणापि। अ॑परितंतो—अ॑परिक्लिनोऽखिनः। दु॑प्यं चउपर

गाय भेंश विगेरे चार पगवालाने भ्रमर विगेरे घणा पगवालाने अने पग विनाना सर्पादिकने तथा धनाढ्यने अने अधन ते धनरहितने तेमज वा शब्दे पंडित, मूर्ख विगेरे सर्वेने अपराध विना पण अश्रांतपणे-थाक्या विना-खेदरहित थइने हणे छे-मारे छे; अर्थात् सर्व जीवोने हणवारमां ते मृत्युने किंचित्पण खेद एट्ले श्रम लागतो नथी.” २०६

न यं नज्जैङ्ग सो दियहो, मर्शियवं वौवसेण सर्वेण ।

आसापासपरछो, नै कैरहे य जं^{११} हियं^{१२} बंज्ञो ॥ २०७ ॥

अर्थ—“वली जीव ते (मरणनो) दिवस जाणतो नथी, अर्थात् कये दिवसे मरीश ते जाणतो नथी; पण सर्व जीवोए अवश्ये करीने मरवुं तो छेज (एम जाणे छे). तोपण आशा रूपी पाश्याथी वंधायेलो (पराधीन थेयेलो) अने वध्य एट्ले मृत्युना मुखमां रहेलो एवो आ जीव जे हितकारक धर्मातुष्टान छे ते करतो नथी.” २०७.

संझरागजलबुद्ध्वा ओवमे, जीविए अ॒ जल॑विंदुचंचले ।

जु॑वणे यं नैवेगसंनिभे, प॑वजीव किंमयं नैं बुज्ञैसि॥२०८॥

अर्थ—“वली जीवित संध्याकाळना राता पीळा रंगनी तथा जळना बुद्धुद (परपोटा) नी उपमावाङ्क (क्षणिक) छे, तेमज (दर्भना अग्रभाग पर रहेला) जळना विदुनी जेवुं चंचल छे; तथा युवावस्था नदीना वेग जेवी (थोडो काल रहेवाधाली) छे; तोपण हे पापी जीव ! ते सर्व जाणतां छतां पण तुं केम प्रतिवेध पामतो नथी?” २०८

जं जं नज्जैङ्ग असुैङ्ग, लज्जज्जैङ्ग कुच्छिणिज्ज मेयंति ।

तं तं मैग्गइ अंगं, नैवरमणंयुत्थ पडिकूलो ॥ २०९ ॥

अर्थ—“जे जे अंग अगुचि जणाय छे, जे अंग जोवायी लज्जा आवे छे, अने जे अंग जुगुप्सा करवा लायक छे—एवा स्त्रीओना जघन विगेरे—ते ते अंगोनी मृढ पुरुष अभिलापा करे छे. ते मात्र प्रतिकूल (शत्रुरूप) एवा कामदेवना कारणने लीधेजे छे; अर्थात् कामदेवना वश्यीज जीव निन्द्य एवा स्त्रीना अंगने पण अति रमणीय माने छे.” २०९.

सर्वंगहार्ण पैभवो, महाँगहो सर्वंदोसपायही ।

कामैग्गहो दुरप्या, जेणैं भिर्भैयं जंग सर्वं ॥ २१० ॥

अर्थ—“ सर्वे ग्रहोनुं (उन्मादोनुं) उन्यज्ञिस्यान्, महाग्रह (मोरा उन्मादक्षण) असे परस्तीगमनादिक सर्वे द्वोपोते प्रवर्तीवनार कापदेवन्हपी ग्रह पटल कापर्या उन्मा थयेलो चित्तभ्रष्ट महादुष्टे छे के जेणे आ आयुं जगत पराभव पमाठयुं छे-पोताने कर्त्तर्युं छे. माटे कामग्रह ज दुस्त्याज्य (महाकर्ष तर्जी शक्ताय तेवो) छे. ” २१०.

जौ सेवैङ्किं लैहइ, र्यामं हैरेइ दुर्बलो हैइ ।

पैविडे वेमैणससं, दुरकौणि अै अंत्तदोमेण ॥ २११ ॥

अर्थ—“ जे. पुरुष कामने (विषयने) सेवे छे ते शुं पामे छे ? ते कहे छे— ते. पुरुष पोताना ज दोपर्या वीर्यने हारे छे-गुमावे छे, दुर्वल थाय छे, अने वैपनस्य (चित्तनी उद्गेता) तथा सप्तरोगादिक दुःखोने पामे छे. ” २११.

जंह कच्छुल्लो कच्छुलुं, कंडुयमाणो दुँहं मुण्डि सुकरुं ।

मोहाउरा मण्डुस्सा, तंह कामेदुहं सुहं विंति ॥ २१२ ॥

अर्थ—“ जेम खसबाळो माणस खसने नखाये करीने खणतो छनो दुःखने मुख रूप माने छे, तेप मोहवडे आतुर-विद्वल थयेला मतुल्लो, जेनुं रुधिर विकृन यह गयुं छे-विकार पास्युं छे तेवा अंगवाळानी जेम विषयसेवनना दुःखने मुखरूप माने छे. ” २१२.

विसंयविसं हालाँहलं, विसंयविसं उँकडुं पियंताँण ।

विसंयविसाँन्नांपिव, विसंयविसविसूङ्या होई ॥ २१३ ॥

अर्थ—“ शब्दादिक विषयो रूपी विष (संयम रूप जीवितनो नाश करनार होवाथी) हालाहल तरतज मारी नांखनार विष समान छे, अने उज्ज्वल एवं काम-सेवनरूपी विष उत्कट के०कालकूद विष समान छे. ते विषतुं पान करनारा एटले सेवन करनारा प्राणीओने अति सेवन करेलो ते विषयरूपी विषयी, घणो आहार करनारी जेम अजीर्ण थाय तेप विषयरूपी विषनी पण विसूचिका (अजीर्ण) थाय छे; जेवी ते अनेता मरणने पामे छे. ” २१३.

ऐवं तुं पञ्चैहिं आसैवेहिं, रूय मायाँणितु अणुंसमयं ।

चर्दगङ्गुहपेरंतं, अणुंपरियद्वंति संसारे ॥ २१४ ॥

अर्थ—“बली ए प्रमाणे पांचे इंद्रियोवडे अथवा प्राणातिपातादिक् पांच आश्रव वडे करीने प्रतिसम्पर्ये (क्षणे क्षणे) पापकर्म रूप रजने ग्रहण करीने (आ जीव) नरकादिक चारे गतिनां दुःखोना पर्यंत सुधी (छेडा सुधी) आ संसारमां भटके छे.” २१४.

सर्वं गई पञ्चवडे, काहांति अैणंतए अकैयपुन्ना ।

जे यै नै सुणन्ति धूमं, सोऊण यै जे पमायंति ॥ २१५ ॥

अर्थ—“बली जेओए पुण्य कर्यु नयी एवा जे मनुष्यो, दुर्गतिमां पडता प्राणीने धारण करनार श्रीनिनप्रसूपित धर्मनुं श्रवण करता नयी, अते सांभलीने पण जेओ पंद्यादिक (मद्य, विषय, कपाय, निद्रा ने विकायासूप) प्रमादनुं आचरण करे छे तेओ आ अनन्त संसारमां सर्व गतिओने विषे भ्रमण करे छे: अर्थात् अनंतीवार चतुर्गतिमा परिभ्रमण करे छे.” २१५.

अर्णुसिद्धा य बहुविंहं, मिच्छैदिद्धी यै जे नरा अहमा ।

बद्धनिकाईयकमा, सुंणन्ति धूमं नै यै कंरंति ॥ २१६ ॥

अर्थ—“मिथ्याहाटि एट्ले सम्यक्ज्ञान रहित अने अधम तथा जेओए निकाचित एट्ले उद्वर्तनादिक करणोमांयी कोइ पण करणवडे क्षीण न थाय एवां ज्ञानावरणीयादिक कर्मो वांयेलां छे एवा जे मनुष्यो छे तेओ कदाच घणे प्रकारे धर्मोपदेशादिकवडे स्वजनोए प्रेर्या होय तो धर्मनुं श्रवण करे छे, परंतु सम्यक् रीते ते धर्मनुं आचरण करता नयी. माटे लगुकर्माओनेज आ धर्म सुप्राप्य छे, सहेजे प्राप्त थइ शके छे.” २१६.

पंचेवं उज्जिङ्गजणं, पंचेवैयं रङ्गिखजणं भावेणं ।

कर्मरयविष्पमुक्ता, सिद्धिंगइमणुऽतरं पत्ता ॥ २१७ ॥

अर्थ—“हिंसादिक पांच पदनो (पांच आश्रवोनो) त्याग करीने तथा अहिंसादिक पांच महावतोनुं भाववडे एट्ले आत्माना शुद्ध परिणापवडे रक्षण करीने (पाळीने) प्रानावरणादिक कर्मसूपी रज-मलर्थीमुक्त घेयेला एट्ले आठ कर्म सूपी रजोमलना नाशी जेपने निर्मल आत्मभाव प्राप्त थयो छे एवा अनेक प्राणीओ सर्वोन्नत्य सिद्धिगतिने पाप्या छे. माटे हिंसादिकनो त्याग अने अहिंसादिकनुं पालन एज सिद्धिगतिनुं कारण छे.” २१७.

नाणे दंसेणचरणे, तवैमंयमममिडगुन्जिपच्छिन्ने ।

दम्भुत्ससग्गववाण, दव्वांडअभिगगहं चेव ॥ २१८ ॥

सद्दैहणायरणाए, निर्वं उज्जुत्त पर्मणाइटिओ ।

तस्मै भेवोअहितरणं, पव्वेजाप् यं जंभं तुै ॥ २१९ ॥ युगमम् ॥

अर्थ—“ सम्यक् अववेष्य स्य ज्ञाने विषे, तत्त्व अद्वानस्य दर्शने विषे, आश्रवनो निरोध करवा स्य नारित्रने विषे, वार प्रकारना तप्तने विषे, सत्तर प्रकाळा संयमने विषे, सम्यक् प्रवृत्ति स्य दर्शासपिति विषेर पांच सपितिने विषे, निवृत्ति स्य मनोगुसि विषेर त्रण गुसिने विषे, पापक्रियानी निवृत्ति करनार दश प्रकारना प्राप्यक्षित्तने विषे, पांच इंद्रियोना दृष्टने विषे, गुदर्माणना आचरण स्य उत्सर्गने विषे, रोगादिक कारणे निपिल वस्तुतु ग्रहण करवास्य अपवादने विषे, द्रव्यादिक पृष्ठे द्रव्य क्षेत्र, काल अने भावस्य चार प्रकारना अभिग्रहने विषे तथा अद्वा पूर्वक आचरणने विषे अर्थात् पूर्वोक्त पदार्थामां अद्वापूर्वक आचरण करवायी-केमक अद्वारहित धर्माचरण मोक्षने साधनारु थतुं नयी । ” कर्णु छे के-

क्रियाशून्यस्य यो भावो, भावशून्यस्य या क्रिया ।

अनयोरन्तरं दृष्टं, भानुखद्योतयोरिव ॥

“ क्रियारहित पुरुषनो भाव अने भावरहित पुरुषनी क्रिया, ए बन्नेमां सूर्य अने खद्योत (पतंग)ना जेटलुं अन्तर जोयेलुं छे, अर्थात् तेतन्युं अंतर छे. क्रियाशून्य भाव सूर्य जेवो छे अने भावशून्य क्रिया खजुआ जेवी छे. ”

“माटे ते सर्वने विषे (संयमने विषे) श्रद्धा पूर्वक आचरण करवामां निरंतर उद्यमवाला अने एपणा एट्ले वेताळीश दोप रहित एवा आहारनी शुद्धिमां रहेला एवा सावुने प्रवृज्या भवसागरतुं तारण थाय छे (अर्थात् ते साधु भवसागर तेरे छे), अने तेनीज दीक्षा अने मनुष्यजन्म सफल छे. एवा गुणोयी रहित मनुष्यनी दीक्षा तथा जन्म बन्ने निरर्थक छे. ” २१८-२१९.

जे धर्मसरणपसत्ता, छँकायरिझ सँकिंचणा अँजया ।

नैवरं मुर्त्तूण धरं, धर्मसंकमणं कैयं तेहिं ॥ २२० ॥

अर्थ—“जे यतिओ गृह (उपाश्रयादिक)ने सज्ज करवामां आसक्त छे, छँकाय जीवना शत्रु छे, एट्ले पृथिव्यादिक छ कायना विराघक छे; द्रव्यादिकना परिग्रह सहित

गाथा २१८-दमउत्ससगुववाइ । गाथा २१९-उजत्त ।

गाथा २२०-सँकिंचण असंजया । अजया=असंयुता—असंयुतमनोवाक्यायोगाः ।

छे, तथा मन वचन अने कायाना योगतुं संयम करती नथी तेऽयोए केवल पूर्वतुं घर मूकीने साहुवेपना मिषथी गृहसंक्रमण एटले नवा घरने विषे प्रवेशज कर्यो छे एम जाणतुं, वीजुं कांइ कर्युं नथी। ” २२०

उरसुत्तमायैरंतो, वंधई कर्मं सुचिकणं जीवो ।

संसारं चं पंवहुइ, मायामोसं चं कुवइय ॥ २२१ ॥

अर्थ—“आ जीव उत्सूत्र (सूत्रविरुद्ध) आचरण करतो सतो अत्यंत चिकणा कर्म वांधे छे, एटले अति गाढ निकाचित एवां ज्ञानावरणादि कर्मने आत्माना प्रदेशो साथे संश्लिष्ट करे छे, तेमज संसारने वृद्धि पमाडे छे, अने मायामृषा एटले माया सहित असत्य भाषण (सत्तरमुं पापस्थान) करे छे: अर्थात् तेप करवायी ते अनन्त संसारनी वृद्धि करे छे.” २२१

जई गिल्लइ वैयलोवो, अँहव नै गिल्लइ संरीखुच्छेओ ।

पासत्थसंगमो वियं, वर्यलोवो तो वर्मसंगो ॥ २२२ ॥

अर्थ—“जो पासत्याए आणेका आहारादिकने (मुनि) ग्रहण करे तो व्रतनो (पंच महाव्रतनो) लोप थाय छे, अथवा जो ते ग्रहण न करे तो शरीरनो व्युच्छेद-नाश थाय छे (वने रीते कष्ट छे); परंतु ज्यारे पासत्यानो संग मात्र करवायी ज व्रतनो लोप थाय छे, त्यारे तो ते पासत्यानो असंग करवो (संग न करवो) तेज श्रेष्ठ छे.” २२२. अर्थात् शरीरनो व्युच्छेद भक्त थाओ पण पासत्यानो संग न करवो ए तात्पर्य छे.

आँलावो संवासो, वीसंभो संर्थवो पर्संगो अँ ।

हीणायारेहिं संमं, सव्वंजिणिंदेहिं पडिंकुङ्घो ॥ २२३ ॥

अर्थ—“हीन आचारवाला पासत्यादिकनी साथे आलाप-वातचीत, संवास-तेनी भेला रहेतुं, विस्तंभ-विभास राखवो, संस्तव-परिचय करवो, अने प्रसंग एटले वस्त्रादिक लेवां देवांनो व्यवहार करवो—ते सर्वनो सर्व निनेंद्रोण-कङ्गभादि तीर्थकरोण निषेध कर्यो छे: अर्थात् पासत्यादिकनी साथे मुनिओण आलापादिक कांइ पण करतुं नहीं.” २२३

अँनुनजंपिएहिं, हसिउछसिएहिं खिंपमाणोअ ।

आँग्राम-गारे, नैन्नानि निट ताँरली टोर्ट ॥ २२४ ॥

अर्थ—“अन्योन्य भाषण करवा वटे पट्टले विकारादिक करवा वटे अने इसीमें द्वितीय पट्टले हास्यधी रोमोद्रम करवा वटे पासत्यादिकनी मध्ये रुद्गो साधु ते पासत्यादिके ज व्याकुल थाय छे; पट्टले म्वर्याप्ती भए थाय छे, माटे ते (पासत्यादिक)नो संग नजवा योग्य छे.” २२४

लोए विं कुंसंसग्गीपियं जर्णं दुन्नियत्य मङ्गवमणं ।

निंदैइ निरुजमं पिर्यंकुसीलजणमेवै साहुंजणो ॥ २२५ ॥

अर्थ—“लोकमां पण जेने कुंसंगनि प्रिय छे, जे दुष्ट-विपरीत वेपथारी छे अने जे अतिव्यसनी पट्टले अत्यंत वृत्तादिक व्यसन सहित छे तेवा जनने लाई निंदे छे, तेम साधुजन पण निस्त्वयी पट्टले चारित्रने विषे विधिल आदरवाला अने कुशीलिया जन जेने प्रिय छे एवा कुवेपथारी साधुने निंदे छेज.” २२५

निंचं संकियं भीओ, गैम्मो सञ्च्वस्स ख्वलियचारित्तो ।

साहुंजणस्स अव्वमओ, भीओ ॥ वि रुण दुर्गंगइं जौइ ॥ २२६ ॥

अर्थ—“कोइ मार्ह दुष्ट आचरण न देखो एम निरंतर शंका पापेलो, अने कोइ मारी आ माडी प्रवृत्ति रखे जाहेर करी देशे एम भय पापेलो, सर्व वाल्कादिकने पण गम्म एट्टले पराभव करवाने योग्य अने जेण चारित्रनी सखलना-विराघना करी छे एवो, कुशीलियो साधु (आ कोकमां) साधु जनोने अनिष्ट थाय छे, अने मरीने पण परलोकमा दुर्गति पामे छे; माटे प्राणनो नाश थाय तोपण चारित्रनी विराघना करवी नहीं ए तात्पर्य छे.” २२६.

गिरिसुअपुष्कसुआणं, सुंविहिय आौहरणं काँरण विहन्नै ।

वज्जेज सीलंविगले, उज्जंय सीले हैविज्ज जई ॥ २२७ ॥

अर्थ—“हे सुविहित-सारा शिष्य ! गिरिशुक (पर्वतमां-पर्वत समीपमां रे-नारा भिल्होनो पोपट), अने पुष्पशुक (वाडीनो पोपट) हुं उदाहरण गुणदोपनुं कारण ।, एट्टले उत्तम अने अधमनो संग अनुक्रमे गुण अने दोपनुं कारण छे ते बतावनारं । एम जाणीने यतिए शीलविकल एट्टले आचाररहित साधुओने वर्जवा, अने शील-चारित्रना आचरणमां उद्युक्त-उद्यमवान थवुं.” २२७. अहीं ते वे शुकनुं दृष्टांत जाणवुं. ५८.

गाथा २२५-दुन्नियत्य-दुष्टविपरीत वेपथारिण ।

गाथा २२६-अव्वमओ । दोर्गंगइ । अव्वमओ-अव्वमतो-अनिष्टो ।

गाथा २२७-विदिन्तु । विहन्नै-ज्ञात्वा । वज्जिजा । उज्जुभ ।

गिरिशुक अने पुष्पशुकनी कथा।

वसंतपुर नगरमां कनककेतु नामे राजा हतो, ते एकदा बनक्रीडा करवा माटे नगर वहार नीकल्यो. अध्वपर स्वार थङ्गे राजाए अध्व दोडाव्यो. एटले ते विपरीत शिक्षा पामेलो अथ अति त्वराथी दोडीने एक मोटा जंगलमां राजाने लड गयो. छेवट थाकीने अध्व एक स्थाने उभो रह्यो. एटले राजा पण थाकी गयेलो होवाथी तेना परथी उतरीने ते अरण्यमां एकलो आम तेम फरखा लाग्यो. तेवामां थोडे दूर घणा माणसोनो कोलाहल सांभलीने विश्राम लेवा माटे राजा ते तरफ चाल्यो. तेटलामां एक वृक्षनी शाखापर वाँयेला पांजरामां रहेलो एक पोपट वोल्यो के “अरे भिल्हो ! दोडो, दोडो, कोई मोटो राजा आवे छे, तेने पकडी ल्यो, जेथी तमने लक्ष रुपीआ ते आपशे.” ते पोपटनु वाक्य सांभलीने घणा भिल्हो राजा तरफ दोड्या. तेमने आवता जोड्ने राजा पण पवन सरखा वेगवाळा पेला अध्व पर स्वार थङ्गे एकदम भाग्यो. एक क्षण वारमां ते एक योजन दूर जतो रह्यो. त्यां तेणे एक तापसनो आश्रम जोयो. ते आश्रमनी फरती एक सुंदर पुष्पनी वाडी हत्ती. तेमां एक उंचा वृक्ष पर पांजरु लटकावेलु हत्तु. तेमां एक पोपट हतो. ते नासता राजाने ते तरफ आवतो जोड्ने वोल्यो के “हे तापसो ! आवो, आवो, तमारा आश्रम तरफ कोइ महान् अतिथि आवे छे; तेनी तमो सेवाभक्ति करो.” आ प्रमाणे पोपटनां वाक्य सांभलवाथी हर्षित थयेला सर्वे तापसो सन्मुख जड्ने ते राजाने पोताना आश्रममां लाव्या, अने स्नान भोजनादिवडे तेनी सेवा करी. तेथी राजा अत्यंत संतुष्ट थयो. पछी राजाए ते पोपटने पूछ्युं के “हे शुकराज ! ताराज जेवो एक पोपट में भिल्होनी पह्लीमां जोयो. तेणे मने वांशवानो उपाय कर्यो, अने ते मारी मोटी भक्ति करावी तेनु शुकराण ते तुं कहे.” शुक वोल्यो के “हे राजा ! काढ्यरी नामनी मोटी अटवीमां ते (पोपट) अने हुं वने भाइओ रहेता हता. अपारां वनेनां मातापिना एकज छे. परंतु एटलो तफावत थयो के तेने पह्लीना भिल्होए पकड्यो, अने ते पर्वतनी सर्पिए रह्यो, तेथी तेनु नाम पर्वत (गिरि)थुक प्रसिद्ध थयुं; अने मने तापसोए पकडीने आ वाडीमां राख्यो, तेथी मारु नाम पुष्पशुक पट्युं. ते त्यां रहेवाथी भिल्होना मुख्यी मारण, वंथन, कुट्टन, ग्रहण विगेरे वचनो सांभलीने तेवुं शीघ्र्यो, अने मने तापसनो संगारी शुभ वचनो सांभलतां शुभ गुण प्राप्त थया. माटे हे राजा ! नमे शुभ अने अशुभ संगतिनु मन्यक फल जोरुं छे. करुं दे के-

महानुभावसंसर्गः कस्य नोन्निकागणम् ।
गंगाप्रविश्टरथ्यांबु, त्रिदयोरपि वंद्यते ॥

“ मोत्रा माहात्म्यवालानो संग कोनी उन्नतिनुं कारण थतो नयी ? सर्वनी उन्नतिनुं कारण थाय छे. जुओ के गंगानदीपां पलेवा धर्मिना जलने देवो पण बंदन कर छे। वली कल्पुं छे के—

वर्ष पर्वतदुर्गेषु, भ्रान्तं वनचरः मह ।

न मूर्खजनसंपर्कः, सुरेन्द्रभवनेष्वपि ॥

“ पर्वतना दुर्गोपां वनचरो (भिल विंगेर) नी साथे भपवुं ए काँडक ठीक हे परंतु देवेन्द्रना भवनमां (स्वर्गमां) पण मूर्खजननो संग सारो नयी.”

ते सांभलीने राजा प्रसन्न थयो. तेटल्यामां राजानुं नर्व भन्य के जे पाल्ज आवां हतुं ते त्यां आवी पहांच्युं. तेनी साथे राजा पोताना नगरपां गयो.

आ प्रमाणे संगतिनुं फल जाणीने यतिओए भ्रष्टाचारीनो संग तजी तपस्याप यत्त करतो. सिद्धांतमां पण कल्पुं छे के—

वरमग्निं मि पवेसौ, वरं विशुद्धेण कम्मुणा मरणं ।

मा गहियव्यव्यभंगो, मा जीयं खलियसीलससु ॥

“ असिमां प्रवेश करतो थ्रेषु छे, अने विशुद्ध कर्म जे अणसण तेवडे एट्टे अणसण अंगीकार करीने मरण पापवुं ते थ्रेषु छे. परंतु ग्रहण करेला वतनो भंग करतो थ्रेषु नयी, अने जेनुं शील स्वलित-भ्रष्ट थयुं छे एवा साधुतुं जीववुं ते थ्रेषु नयी.”

‘ओसन्नचरणकरणं, जईणो “वंदंति कारणं पैष ।

‘जे सुविहियपरमत्था, ते वंदंते निवैरंति ॥ २२८ ॥

अर्थ—“ यतिओ कारण पामीने एट्ले निर्वाहादिक कारणनी अपेक्षा राखीने जेमनुं महाव्रतादिक मूल गुणरूप चरण अने पंच समित्यादिक उत्तर गुणरूप करण अवसन्न-शिथिल-भ्रष्ट थयुं होय तेवा शिथिलाचारीने पण वंदना करे छे. परंतु जेओए सारी रीते परमार्थने जाण्यो छे, एट्ले के ‘आपणने सुविहित (उत्तम) साधुओने धंदावधा ते योग्य नयी.’ एम पोताना दोपने जेओ जाणे छे तेवा पासत्थाओ पोताने वंदना करनार साधुओने निवारे छे; अर्थात् ‘तमे अमने वंदना करतो नहीं’ एम कही तेमने अटकावे छे.’ ॥ २२८ ॥

सुविहिय वंदावंतो, नासेइ अप्यथं तुं सुपैहाओ ।

दुँविहपहविष्पुष्टको, कहमंप्य नं याण्डि मूढो ॥ २२९ ॥

अर्थ—“ सुंविहित साधुओने वंदावनार (पासत्यादिक) एटले वांदनारने निषेध नहीं करनार पासथ्यादि सुपथरी (मोक्षमार्गर्थी) पोताना आत्मानो ज नाश करे छे; अने वने प्रकारना (साधु श्रावक नामना) मार्गर्थी भ्रष्ट थयेलो ते मूर्ख केम पोताना आत्माने पण जाणतो नथी के हुं वने मार्गर्थी भ्रष्ट थाउं छुं, तेथी मारी शी गति थये? ” २२९.

हवे श्रावकना गुण वर्णवे छे.

वंदैङ उभैओ काँलं पिं, चैइयाइं थईथूईपरमो ।

जिंणवरपडिमाघरध्ववपुफगंधचणुज्जुत्तो ॥ २३० ॥

अर्थ—“ जे चैत्योने (जिनविवेने) वने काळ पण वंदना करेछे; मूळमां ‘अपि’ शब्द लख्यो छे, माटे मध्याह काळ पण लेवो. एटले त्रेणे काळ वंदना करे छे. स्तव एटले भक्तामर विगेरे स्तवन अने शुई एटके संसारदावादिक स्तुति, तेमने विषे प्रथान एटले स्तव अने स्तुति करनारो तथा जिनवरनी प्रतिमाओ अने तेमना चैत्योने विषे अगु प्रमुख धूप, मालती विगेरे पुष्पो अने सुगन्ध द्रव्योए कर्नाने अर्चन (पूजा) करवामां उत्तमवान होय छे, ते श्रावक कहेवाय छे. ” २३०.

सुंविणिच्छियएगमइ, धैम्मंमि अन्नन्नदेवओ अ पुणो ।

न यैं कुसंमएसु रंजइ, पुव्वावरवाहयत्थेसु ॥ २३१ ॥

अर्थ—“ जिनर्थमने विषे सुविनिवित एटले निश्चल एकाग्र मतिवालो अने जेने जिनेश्वर सिवाय वीजो देव नथी तेवो श्रावक पृव्वापर व्याहत के०पूर्वापर विलङ्घ अर्थवाला अर्थात् छग्गस्ये कहेला होवारी असंवद्ध अर्थवाला कुसमय—कुशास्त्रोने विषे रक्त-आसक्त थतो नथी.” २३१.

दद्धृण कुलिंगीणं, तसैथावरम्भूयमद्वं विविहं ।

धर्माओ न चाँलिजइ, देवैहिं सइंदैएहिं पिं ॥ २३२ ॥

अर्थ—“ कुत्सित लिंगवारी वांद्धादिकना स्वयंपाकादिकमां विविध प्रकारे वस (दींद्रिय लिंगर) अने स्थावर (पृथिव्यादिक) प्राणीओनुं मर्दन (विनाश) थतुं जोइन श्रावक इद्द सहित देवताजोथी पण जिनभापित धर्मभक्ती चत्तायमान थतो नथी.” २३२

वंदै पड़िपुच्छइ, पञ्ज्वासेइ सौहृणो मर्ययमेव ।

पट्टै सुणेइ गुणेइ अै, जर्णीस्स धैम्मं परिक्हेइ ॥ २३३ ॥

अर्थ—“श्रावक निरंतर मुक्तिमार्गना साधक एवा सामुओने बंदना करते, तेमने पोतानो संदेह पूछे छे, अने तेमनी पर्युपासना (सेवा) करे छे, वली ते मुत्राख धर्मशास्त्र भणे छे, ते जिनभाषित धर्मने अर्थात् श्रवण करे छे, अने भणेलानो अर्थात् विचार करे छे, तथा अज्ञान जनोने ते धर्मनुं कथन करे छे; अर्थात् पोतानी तुलि प्रमाण वीजाओने वोध पमाडे छे.” २३३.

ददैसीलव्वयनियमो, पोसंहआवस्सएसु अैक्खलिओ ।

महुँमज्जमसंपंचविहव्वुवियफलेसु पैडिक्तो ॥ २३४ ॥

अर्थ—“शील ते सदाचार अने व्रत ते अणुवत्तो तेनो नियम जेने दृढ़ होय, वली जे पौपथ (धर्मनुं पोषण करनार होवाथी पौपथ), अने अवश्य करवा लायक सामायिक विगेरे छ आवश्यक (प्रतिक्रमण)ने विषे अस्त्वलित-अतिचार रहित होय, तथा जे पथ, मध्य (मदिरा), मांस अने बडला, उंचरा विगेरे पांच प्रकारना हस्ताना वह जीववाला फलो तथा वहु वीजवाला उत्तांक (रिंगणा) विगेरेयी निश्चिति पामेलो होय, एठ्ले अभक्ष्यादिकना त्यागवालो होय, ते श्रावक कहेवाय छे.” २३४. अष्टमादि पर्वणीने विषे साववत्यागस्त्वप नियम विशेष ते पौपथ कहेवाय छे; अने दरोग वे टंक अवश्य करवाना होवाथी प्रतिक्रमण ते आवश्यक कहेवाय छे.

नाहैम्मकंमजीवी, पञ्चक्खाणे अैभिक्खमुँजुत्तो ।

सैवं पैरिमाणकडं, अवैरज्जन्म तं पि संकंतो ॥ २३५ ॥

अर्थ—“वली श्रावक पन्नर प्रकारना कर्मदान पैकी कोइ पण प्रकारना अर्थ कर्मथी आजीविका करतो न होय, एठ्ले शुद्ध-निर्दोष व्यापार करतो होय, तथा दस प्रकारना प्रत्याख्यानमां निरंतर उद्यमवान होय, वली जेने सर्व धन धान्य विगेरे परिमाण करेलुं होय, एठ्ले जे परिग्रहना भ्रमणवालो होय, अने जे आरंभादिक जे काइ अपराध वाळुं दोपवाळुं कार्य करे ते पण शंकित थइने करेः अर्थात् निःशंकपणे करे नहीं अने कयो पछी पण आलोयण लइने ते दोपथी शुद्ध-मुक्त थाय.(श्रावक एवो होय.)” २३५

निक्खेमणनाणनिवाणजम्मभूमीओ वंदै जिंणाणं ।

नं यं वंसइ साहुंजणविरहियंमि देसे बहुगुणे वि ॥ २३६ ॥

गाथा २३३-सहुणे । गुणेइ जणस्त्व । गाथा २३४-बहुविह । गाथा २३५-मुजुत्तो । अवरज्जम्म=अपराधति । गाथा २३६-साहुजण ।

अर्थ—“ वक्ती श्रावक जिनेश्वरोना निष्क्रमण (दीक्षा), केवलज्ञान, निर्वाण मोक्ष) अने जन्मभूमि रूप कल्याणक स्थानोने वंदना करे छे, अर्थात् तीर्थयात्रानो रनारो होय छे; अने वीजा घणा गुण होय-घणी जातनां द्रव्यादिकनी प्राप्तिनां साधन होय, छतां पण साधुजन रहित एटले साधुजनना विहाररहित देशमां वसतो नथी.’’ २३६

परंतु त्यियाण पणैमण, उव्वम्मावण थुँणण भैत्तिरागं चै ।

सङ्कृतं सम्माणं, दानं विष्णौयं च वैज्ञेड ॥ २३७ ॥

अर्थ—“ वळी श्रावक वौध तापस विगेरे परतीर्थिकोनुं प्रणमन (-वंदना करवी), उद्भावन (वीजानी पासे तेओना गुणनी प्रशंसा करवी), स्तवन (ते वौद्धादिकनी पासे तेमना देवनी स्तुति करवी), भक्तिराग (तेमने बहुमान आपवृं), सत्कार (तेमने बह्यादिक आपवृं), सन्मान (तेओ आवे त्यारे उभा थइ मान आपवृं), दान (तेमने सुपात्रनी बुद्धिथी भोजनादिक आपवृं), तथा पादप्रक्षालन विगेरे करीने विनय करवो; ते सर्वनो त्याग करे छे: अर्थात् एठलां वानां करतो नथी.” २३७.

हवे श्रावक सुपात्रनी बुद्धियी भोजनादिक कोने आप छ ते कह छ-

ਪੈਂਦਮ ਜਿੰਇਣ ਦਾ ਊਂਨ, ਅਧੰਧਾ ਪਣਾਮ ਊਣ ਪਾਇ ।
ਅਸੰਝੰਅ ਸ਼ਵਿਹਿਆਣ, ਮੁੰਜੇਡ ਕਧਾਂਦਿਸਾਲੋਓ ॥ ੨੩੮ ॥

अथ—“ श्रावक प्रथम यतिओने (इंद्रियोनुं दमन करवाना प्रयत्नवाला साधु-ओने) प्रणाम पूर्वक आपीने पछी पोते भोजन करे छे. कदाच साधुओ न होय तो ते सुचि-हित साधुओनी दिशानो आलोक करतो छतो भोजन करे छे. एटके साधुओ जे दिशा तरफ विचरता होय ते दिशा तरफ जोड्ने ‘ जो साधुओ आवे तो सारुं ’ एम खिचारतो भोजन करवा बेसे छे (भोजन करे छे). ” २३८.

ਸੰਹਣ ਕਪੜਿਜ਼, ਜੇਂ ਨੱਵਿ ਦਿੱਤਾਂ ਕਹਿੰਪਿ ਕਿੰਚਿ ਤਾਂਹਿ ।

धीरं जहृत्तकारी, सुंसावगा तं न भुंजन्ति ॥ २३९ ॥

अर्थ-“ साधुओंने कल्पनीय-प्रणीय (शुद्ध) एवं जे कांड अन्नादिक थोड़े पण कोइ पण देशकालने विषे ते साधुओंने नथी ज आप्युः अर्थात् मुनिए नथी लीयुः प्रवा ते अन्नादिकने धीर (सत्त्ववान्) अने यपोक्तकारी एटले जैवो श्रावकनो मार्ग

गाथा ३३७—प्राप्ति । उत्तराधिकारी—उद्घायने—परम्पराप्रे गट्टम्प्रदायने ।

‘‘**प्राप्ति ३३६—गोदे=मालवी-योजने द्योतिति आहा। असा ज्ञानपत्रि च ।**

Digitized by srujanika@gmail.com

छे तेज प्रमाणे वर्तनारा सुश्रावको वापरता नथी; अर्थात् साधुओंने आप्या विनानी कोइ पण चीज पोंते वापरता नथी; जे वस्तु मुनिमहाराज ग्रहण करेने वस्तुज पोंते वापरे छे. ” २३९.

वैसहीसयणासणभक्तपाणभेसजवत्थपत्ताइ ।

जैइ “वि नैपज्जत्तधणो, थोँवा ”वि हु थोर्वयं देर्इ ॥ २४० ॥

अर्थ—“यथपि (जोके) नथी पर्याप्त—संपूर्ण धन जेने एवं एट्टने संपूर्ण धनवान नहीं होवायी संपूर्ण आपवाने असमर्थ एवो कोइ श्रावक होय, तो ते पोतानी पासेना धोडामांथी पण धोडुँ एवं वासस्थान, शयन (मृत्वानी पाट), आसन (पादपीटादिक), भक्त-अन्न, पान-जल, भेषज्य-आँफय, वस्त्र अने पात्र विगेरे आपे छे, पण अतिथि संविभाग कर्या विना वापरतो नथी ” २४०.

संवैच्छरचाउम्मासिएसु, अद्वाहियासु अै तिहीसु ।

संच्चायरेण लङ्गगइ, जिंणवरपूयातवगुणेसु ॥ २४१ ॥

अर्थ—“ वजी सुश्रावक संवत्सरी पर्वमां, त्रणे चानुर्मासमां, चैत्र आसो विगेरेनी अद्वाइमां अने अष्टमी विगेरे तिथिओमां (ए सर्व शुभ दिवसोमां) विशेषे करीने सर्व आदरवडे (सर्व उद्यमवडे) जिनेश्वरनी पूजा, छट अट्टपादिक तप अने ज्ञानादिक गुणोंने विषे लागे छे एट्ले आसक्त थाय छे. ” २४१.

वजी श्रावक शुं करे छे ते कहे छे—

साहूण चैईयाण यै, पँडणीयं तैह अवर्नवायं च ।

जिंणपवयणस्स अहिअं, सव्वैत्थामेण वैरेर्इ ॥ २४२ ॥

अर्थ—“ साधुओंना अने चैत्य एट्ले जिनप्रासाद तथा जिनप्रतिमाओंना प्रत्यनीकर्ने—उपद्रव करनारने तथा अवर्णवाद एट्ले कुत्सित वचन वोलनारने (वांकुं वोलनारने) अने जिनशासनना अहित करनारने (शत्रुने) सुश्रावक पोताना सर्व प्रकारना वळे करीने निवारण करे छे. पण ‘ वीजा घणा जण छे वे संभाल करसे, एम धारीने तेनी उपेक्षा करता नथी. ” २४२.

विर्या पाणिवहाओ, विर्या निच्चं च अलिंयवयणाओ ।

विर्या चोरिंकाओ, विर्या परदारगमणाओ ॥ २४३॥

अर्थ—“ वली सुश्रावको हमेशां प्राणीवध थकी विरति पामेला होय छे, अलीक वचन-मिथ्या भाषण थकी विरति (निवृत्ति) पामेला होय छे, चोरीथी विरति पामेला होय छे, अने परस्तीगमनथी निवृत्ति पामेला होय छे. ” २४३.

विर्या परिंगहाओ, अपरिमिआओ अैण्टतहाओ।

बहुदोससंकुलाओ, नर्यंगइगमणपंथाओ ॥ २४४ ॥

अर्थ—“ वली ते सुश्रावको जेनुं परिमाण कर्यु नथी, जेनाथी अनंत तृष्णा-लोभ उत्पन्न थाय छे, जे धणा वध वंथनादिक दोपोथी संकुल-भरेलो छे, तथा जे नरक गतिमां जवाना मार्गस्तप छे, एवा धनयान्यादिक नव प्रकारना परिग्रह थकी विरति पामेला होय छे. ” २४४.

मुँका दुज्जणमित्ती, गहियाँ गुरुवयणसाहुपडिवत्ती।

मुँको परपंरिवाओ, गंहिओ जिण्देसिओ धम्मो ॥ २४५ ॥

अर्थ—“ जे थ्रावकोए दुर्जन (खल) नी मैत्री-दोस्ती मूकी छे, जेओए तीर्थ-करादिक गुरुना वचननी सारी (शोभावाली) प्रतिपत्ति (प्रतिज्ञा) ग्रहण करी छे, जेओए पर परिवाद-परना अपवादनुं (परनिंदानुं) कथन मूकी दीवुं छे, अने जेओए जिनदर्शित एटले जिनेश्वरे कहेलो धर्म ग्रहण कर्यो छे. ” २४५.

तव्वनियमसीलकलिया, सुसौवगा जे हूँवति इहै सुयुणा।

तेसिं नैं दुल्हंहाइं, निर्वाणविमाणसुखखाइं ॥ २४६ ॥

अर्थ—“ आ छोकमां जे सुश्रावको वार प्रकारनां तप, नियम ते अनंतकायादिकतुं प्रत्याख्यान अने शील ते सदाचार तेथी युक्त तथा सारा गुणोवाला होय छे, तेओने निर्वाण (मुक्ति) अने विमान (स्वर्ग) नां सुखो दुर्लभ-दुप्याप्य नथीः अर्थात् तेओ स्वर्गनां सुखो भोगवीने अनुक्रमे मुक्ति पण पामे छे. ” २४६.

सीइंज कैयावि गुँम, तं पि सुसौसा सुनिऊणमहुरेहि।

मर्गे दुँवंति पुण्ठरवि, जैंह सेलंगपंथगो नाँयं ॥ २४७ ॥

अर्थ—“ कदाचित् एटले कर्मनी विचित्रताने लीघे कोइ वस्त्र गुन पण मीढाय एउले प्रार्गी शिथिन्द्र (भ्रष्ट) थाय; तो तेवे वस्त्रने तेवा भ्रष्टाचारी गुणने पण साग (उचाप) गियो भन्यांत नियण अने मध्य (कोमल) वारयोए कर्तने फरीथी पण

मंडुककुमार पुत्रने राज्य सोपी पंथक विग्रे पांचसो मंत्रीओ संहित चारिंत्र ग्रहण कर्युः अनुक्रमे सेलक मुनि द्वारदशांगीने धारण करनार थया। तेमने योग्य जाणी आचार्यपदे स्थापन करीने श्रीगुकाचार्य हजार साखुओ सहित श्रीसिद्धाचल पधार्या। त्यां सर्व मुनिओ सहित अनशन ग्रहण करी मासने अन्ते केवलज्ञान पामीने मोक्षे गया।

त्यार पछी श्रीसेलकाचार्यना शरीरमां नीरस अने लूखा आहारने लीये महा व्याधिओ उत्पन्न थया। ते व्याधिओ असह हता, तोपण सेलकाचार्य दुस्तप तपमांज उद्युक्त रहेता हता, एकदा विहारना क्रमे तेओ सेलकपुर आव्यां। तेमने आव्या जाणीने मंडुक राजा वंदना करवा आव्योः त्यां गुरुना मुख्यी धर्मदेशना ग्रन्थन करी मंडुक राजा जीवाजीवादिक नव तत्त्वोनो जाणनार थयो। पछी पोताना पिता सेलक राजपिंतुः शरीर रुधिरमांस रहित शुष्क थइ गयेलुँ जोइने मंडुक राजाए विज्ञाप्ति करी के “हे स्वामी ! आपनुं शरीर रोगयी जजरित देखाय छे। तो अहंज मारी यानशाळामां आप रहो; जेथी हुं शुद्ध औपधवडे तथा पथ्य भोजनवडे आपनुं शरीर नीरोगी करुः” ते सांभळीने आचार्ये तेतुं वचन अंगोकार करी तेनी यानशाळामां निवास कर्यो। राजाए औपथादिकथी तेमनी चिकित्सा करावी, तेथी आचार्यना शरीरमांयी रोगो नष्ट थया। परंतु राजानो रसवालो आहार लेवाथी आचार्य रसलुच्य थइ गया। तेथी तेओए त्यांयी क्यांड पण विहार कर्यो नहां। एटले एक पंथक शिष्यने तेमनी सेवा करवा राखीने वीजां सर्व शिष्योए त्यांयी विहार कर्यो। पछी तो सेलकाचार्य थीमे थीमे अत्यंत रसलंपट थया; पण पंथक मुनि तेमनी सारी रीते सेवा करवा लाग्या, अशुद्ध आहार पण लावीने गुरुने आपवा लाग्या अने पोते शुद्ध आद्वार करवा लाग्या।

एकदा कार्तिक चोमासीने दिवसे रसवालो आहार करीने आचार्य संध्या समयेन मुखनिद्रामां गुइ गया। ते वर्खते पंथक साखु चोमासी प्रतिक्रमण करतां गुरुना चरणमां मस्तक मूळीने चोमासी प्रायवित्तनीखामणा करवा लाग्या। तेना स्फर्शयी गुरु निद्रामांयी जागृत थयो, तेथी ते क्रोधातुर थइने वोल्या के “अरे क्या पापीए मारी निद्रानो भंग कर्यो ?” ते सांभळी पंथक मुनि वोल्या के “हे पृज्य ! आजे चोमासी खामणा करतां पाहूं पस्तक आपना चरणने अढवयुं, तेथी आपनी निद्रामां अंतराय थयो छे, ए मारो अपराध आप क्षमा करो, हवेथी आवो अपराध हुं नहां करुः” आं प्रपाणे शारंवार पोताना ज अपराधने कहेता शिष्यने जोइने गुरुनुं निच सावधान थयुं। तेथी ते मन्त्रां विचारवा लाग्या के “अहो ! आ शिष्य केवो क्षमावान वे ! आ शिष्य न घन्य वे, अने

कहुं के “हे वत्स ! भवसागरमां पडतां एवा मने आजे ते उद्धयों (खेंची काढ्यो) छे ॥” ऐस कहीने प्रमाद दूर करी शुद्ध चारित्र ग्रहण कर्युं. ते वात सांभळी सर्व शिष्यो पण तेमनी पासे आव्या. पछी चिरकाल सुधी विहार करी धणा भव्य जीवोने प्रतिवेध प्रमाडीने पांचसो शिष्यो सहित सिद्धाच्छलपर अनशन ग्रहण करी सेलकाचार्य सिद्धि पदने पाम्या. आवी रीते सारा शिष्यो पोताना प्रमाडी गुरुने पण सम्मार्गे लावे छे.

दैसं दैस दिवसे दिवसे, धर्मम बोहेइ अहव अहिअयरो ।
इअ नंदिसेण्सत्ती, तंहविय से संज्ञमविवत्ती ॥ २४८ ॥

अर्थ—“ दिवसे दिवसे (हमेशां) दश दश पुरुषोने धर्मनो वोध करे, अथवा तेथी पण अधिकतर माणसोने वोध पमाडे, एवी नंदिषेण मुनिनी शक्ति-वञ्चनलब्धि (देशना लब्धि) हती, तो पण ते नंदिषेणना चारित्रनी विपत्ति थइ (विनाश थयो). ए उपर्योग निकाचित कर्मनो भोग अति बलवान छे ऐस समज्वं ॥ २४८ ॥ अही नंदिषेणनो संबंध जाणवो ॥ ६०

श्रीनंदिषेणनी कथा ।

प्रथम नंदिषेणनो पूर्वभव सारी रीते कहे छे—कोइ एक गासमा सुखप्रिय नामने ब्राह्मण रहेतो हतो, तेण एकदा छुटक छुटक मळीने लक्ष ब्राह्मणोने भोजन कराववानो संकल्प कर्यो. ते वस्त्रे तेणे विचार्यु के “ जो मारे घेर कामकाज करवा माटे एक नोकर होय, तो वहु सारु ” ऐस विचारीने पोतानी पडोशमां रहेता एक भीम नामना दासने तेणे पूछ्युं. त्यारे तेणे कहुं के “ जो ए ब्राह्मणोनुं भोजन थइ रहा पछी वधेलुं अन्नादिक तुं मने आये तो हुं तारा घरनुं कामकाज करुं ॥ ” ते सांभळीने ते ब्राह्मणे तेनी मागणी कबूल करी, एट्ले ते भीम तेना घरनुं कामकाज करवा लाग्यो; अन्ते ब्राह्मणोनुं भोजन थइ रहा पछी वाकी रहेलुं अब नगरमां रहेला साधु साध्वीओने बोलावीने बहोराववा लाग्यो. आ प्रमाणे पुण्य करवार्थी तेणे भोगकर्म उपार्जन कर्युं. छेकट आयुष्य क्षये मरण पारीने ते दासनो जीव देवदोकमां देवपणे उत्पन्न थयो. त्यांथी आयुष्यक्षये चधीने राजगृह नगरमां श्रेणिक राजानो नंदिषेण जामे पुत्र थयो; अने पेलो लक्ष ब्राह्मणने भोजन करावनार ब्राह्मणनो जीव धणा भवोमां भ्रमण करीने कोइ अटवीमां हाथिणीनी कुक्षिमां उत्पन्न थयो. ते हाथिणीनो स्वामी हाथीने जे बालको थाय तेने मारी नस्तो हतो, तेथी ते हाथिणीए विचार्यु के “ मारी कुक्षिमां गर्भ उत्पन्न थयो ॥ ” तेने

कोइ पण उपायथी गुप्त रीते प्रसवुं तो ते जीवतो रहे, अने यूथनो (हाथिणीना टोलानो) अधिपति थाय.” एम विचारीने ते हाथिणी खोटीरीते एक पगे कंगडी धङ्गेने चालवा लागी. तेथी कोइ वखत एक पहोरे ते पोताना यूथ भेगी थती, कोइ वखत वे पहोरे थती, कोइ वखत एक दिवसे थती अने कोइ वखत वे दिवसे यूथ भेगी थती. ए प्रमाणे करतां प्रसवकाळ समीप आवेलो जाणीने ते तृणनो पूळो लङ्गेने कोइ तापसोना आश्रममां गड. त्यां तेणे पुत्र (हाथी)ने जन्म आस्यो. पछी आवीने पोताना यूथ भेगी थड गड. पछी दररोज यूथनी पाछळ रहीने तापसोना आश्रममां जड पोताना वाळकने स्तनपान करावी पाळी यूथ भेगी थती. एवी रीते ते वाळकतुं तेणे पोषण कर्युं. ते आश्रममां रहेला हस्तिवाळकतुं तापसोए पुत्रनी जेम पालन कर्युं, तेथी ते तेओनो अत्यंत प्रीतिपात्र थयो. पछी ते तापसोनी संगतिधी ते हाथी पण पोतानी सूंढमां पाणी भरी लावीने आश्रमनां घृसोने पाणी पावा लाग्यो. तेथी तापसोए तेनुं सेचनक एवुं यथार्थ नाम पाडचुं. ते सेचनक अनुक्रमे दृष्टि पामी महा वलवान थयो. एकदा सेचनक वनमां फरतो हतो, तेवामां तेणे पेलो यूथस्वामी के. जे पोतानो पिता हतो तेने जोयो, अने ते यूथपतिए पण तेने जोयो. तेथी ते वनेने परस्पर युद्ध थयुं. तेमां महा वलवान सेचनक पोताना पिताने यमद्वारे प्रोकल्पो (मारी नाख्यो). अने पोते यूथपति थयो. पछी सेचनके मनमां विचार्यु के “जेम मारी माताए मने गुप्त रीते प्रसव्यो, त्यारे हुं पिताने मारी यूथपति धयो, तेवी रीते वीजी कोइ हाथिणी पण गुप्त रीते आ आश्रममां प्रसवयो तो ते मने मारीने यूथपति थशे.” एम विचारीने तेणे ते तापसोना झुण्डा भांगी नांख्या. ते वखते तापसोए विचार कर्यो के “अहो ! आ हाथी महा कृतद्वी थयो. आपणे तो पुत्रनीजेम तेनुं लालनपालन कर्युं, अने तेणे तो महा विस्त्रुद्ध आचरण कर्युं; माटे आने आपणे कोइ प्रकारना काट्यमां नाखीए.” एम विचारीने ते तापसोए श्रेणिक राजा पासे जडेने कर्णु के “हे राजा ! अमोजे वनमां रहीए शीए, ते वनमां राज्यने योग्य एक हस्तिरत्न छे, माटे ते आपने ग्रहण करवा योग्य छे.” ते सांभटीने श्रेणिक राजा ए परिवार सहित वनमां जड हेड विगेरे घणा उपायोवडे तेने परदवा मांट्यो पण ते पकडायो नहां. एवामां नंदिष्येण कुपार त्यां आव्यो. तेनो शब्द सांभटीने तेना सामुं जोतां ने दस्तीराजने अवधिकारे उत्पन्न थयुं, एट्टले नेण पोतानो पूर्वभव नेण्यो, तेथी ते शांत यड गयो. नंदिष्येण कुपारे ते दस्तीनी झुंड पकडी नेना उपर चटी तेने नगरमां शावीने राजदारे चांद्यो. अनुक्रमे नंदिष्येण पण यत्वादस्या पास्यो. विताए

तेने पांचमो स्त्रीओ मायं पाणिग्रहण करव्युः, ते स्त्रीओ मायं ते विषयमुख भोग-
वा करायें।

एकदा श्रीवर्धपान स्वार्पिनि नगर बहार उशानपां सप्तवर्षम् क्या जाणीने नंदिपेण
कुपार भगवानने बांदवा गयों। प्रभुने वांदीनि नंदिपेणे चृद्गुरु के “ हे भगवान ! मैंने
जोड़ने संचनक द्यायीने मारापर म्लेह केष उत्पन्न थयो ? ” त्यारे भगवान्ते वक्तेना
पूर्वं भवतुं सर्वं वृत्तांतं तेन कर्तुः, ते सांभर्लीनि नंदिपेणे विचार्यु के “ ज्यारे सावृओंने
अन्नादिक आपवायी आश्वर्यं वत्रुं पुण्यं थयुं त्यारे दीक्षा लङ्घने जो तपस्या करी होय
तो तो वर्णं मोटुं फल मले। ” ए प्रमाणे विचारीने तेणे भगवानने विज्ञप्ति करी के “ हे
प्रभु ! दीक्षा आपीने मारो उद्धार करो। ” प्रभु बोल्या के “ हे वत्स ! तारे निकाचित
भोगकर्म हजु वाकी रहेलुं छे, तेथी तुं दीक्षा न ले। ” ते वक्तव्यं तेज प्रमाणे आकाशवाणी
पण थइ. तोपण, नंदिपेण इदं चित्तवालो यद्देन पांचसो स्त्रीओना उपभोगनो त्याग करी
चारित्र ग्रहण करवा उद्युक्त थयों। एटले भगवानं पण तेवो भावीभाव जाणीने तेने दीक्षा
आपी अने स्थविर सावृओंसे सोंप्या। त्यां तेणे सामायिकर्यी आरंभीने इदं पूर्वानो
अभ्यास कर्यों। ते नंदिपेण मुनि जेष जेष छट्ट, अट्टम, आनापना विगेरे तपस्या पूर्वक
महाकष्ट करवा लाग्या अने उपसर्गो सहन करवा लाग्या, तेष तेष तेने यणी लघिओ
प्राप्त थइ. ते साये दिनप्रातिदिन कामनो उदय पण वृद्धि पामवा लाग्यो। नंदिपेण मुनि
मनमां जाणता हता के “ देवताओए तथा भगवाने निषेध कर्या छतां पण में दीक्षा
ग्रहण करी छे, माटे कंदर्प (कामदेव)ना परतंत्रपणायी मारा व्रतनो भंग न थाओ। ”
एष विचारीने कामदेवधी भय पापतां तेमणे आत्मवात करवाना हेतुधी शख्यात, कंठ-
पाश (गलाफांसो) विगेरे अनेक उपायो कर्या; परंतु ते सर्वे शासनदेवीए निष्पत्ति
कर्या, एकदा तेने अति उग्र काम व्याप थयो, ते वक्तव्ये ते झंपापात करवा माटे भर्ता
पर चढ़ीने पड़वा गया, तेवामां शासनदेवताए तेने झीली लङ्घ कर्यु के “ हे महानुभाव
आ प्रमाणे आत्मवात करवायी शुं निकाचित कर्मनो क्षय थये ? नहीं थाय, माटे अ

करोड़ सोनैयानी दृष्टि करी; अने कहुं के ‘जो तारे धर्मलाभतुं प्रयोजन न होय तो आधननो ढगलो ग्रहण कर.’ एम बोलीने ते मुनि पाढ़ा वली नीकलवा जाय छे, तेटलामां ते गणिका तेनी आगल आवीने मुनिना वस्त्रनो छेडो पकडी उभी रही, अने कहेवा लागी के “हे प्राणेश ! आ धन लेवुं अमने घट्टुं नथी, केमके अमे पण्यांगना कहवाइए छीए; एंटले के अमे अमारा देहवडे पुरुषोने सुख उत्पन्न करीने तेनुं चित्त प्रसन्न करी पछी तेओए पोतेज उपार्जन करीने आपेणुं धन अमे ग्रहण करीए छीए. माटे आ धन तमे लड जाओ, अथवा तो अहीं रहीने आ धनवडे मारी साथे विषयसुख भोगवो, हे नाथ ! आ तमारी युवावस्था क्यां ! अने आ तपनुं कष्ट क्यां ! आ धन, आ युवावस्था अने आ मारो सुंदर आवास—ते सर्व सहेजे प्राप्त थेयेणुं अने भोगववा योग्य छे, तेने पामीने कयो मुग्ध जन तपस्यादिकनां कप्तो सहन करी देहने शोषण करे ?” आ प्रमाणेनां अत्यंत कोमळ ते वेश्यानां वचनो सांभलीने भोगकर्मना उद्यने लीये ते नंदिपेण तेनाज घरमां रह्या, पछी हंमेशां दश दश पुरुषोने प्रतिवोध पमाडवानो अभिग्रह कड रजोहरण विगरे साधुना वेपने उंचो खींटीए मूकी ते वेश्या साथे विषयसुख भोगववा लाग्या, दररोज प्रातःकाळे दश पुरुषोने प्रतिवोध पमाड्या विना ते पोताना मुखमां जल पण नांखता नहीं, अने जेओने ते प्रतिवोध पमाडता तेओ भगवंत पासे आवीने दीक्षा ग्रहण करता, ए प्रमाणे वेश्याने घेर रहेतां तेमने वार वर्ष व्यतीत धयां, वार वर्षने अंते एक दिवस नव पुरुषो प्रतिवोध पाम्या, दशमो सोनी मक्क्यो ते कोइ रीते प्रतिवोध पाम्यो नहीं; पण उलटो नंदिपेणने कहेवा लाग्यो के “तमे वीजाने प्रतिवोध करो छो, पण तमेज चारित्रनो ल्याग करीने अहीं वेश्याने घेर केम रह्या छो ?” एम ते प्रतिकूळ वचनो कहेवा लाग्यो पण प्रतिवोध पाम्यो नहीं, ते वखते वेश्या उत्तम रसवाली रसवती (भोजन) तैयार करीने तेने बोलाववा आवी अने कहुं के “हे प्राणनाथ ! रसवती ठंटी थड जाय छे, माटे जमवा उठो.” नंदिपेण कहुं के “आ एक दशमा पुरुषने प्रतिवोध पमाडीने हृषणां आवुं छुं.” एम कहीने तेने पाढ़ी वाली थोड़ी वारे फरीयी नवी रसोइ बनावीने तेज प्रमाणे बोलाववा आवी, ते वखत पण जमवा न उठ्या, एवी रीते वीजी वार पण बोलाववा आवी, अने बोलीके “हे प्राणनाथ ! संन्यासमय थवा आव्यो छे, आप जमेला न होवायी हुं पण भूखीज रही छुं.” त्यारे नंदिपेण बोन्या के “हे सुंदर नेत्रवाली ! दशमाने प्रतिवोध पमाड्या विना भाजन वरवायी मारा नियमनो भए थाय छे, तेथी हुं शी रीते आवी शक्क ?” ते साभक्कीने ते हान्यमी बोली के “मी आने दशमो कोइ बाय पामतो न होय तो तेने स्थानं तमे थाओ.” ए प्रमाणे वेश्यानु रास्य सांभलीने पोताना भोगकर्मनो धय थेयेन्ये जाणी, नरनज उभा थए तेंग रात्री गृहे तेंग पोताना यनिवेष पारण करी ते वेश्याने धर्मद्वाप आप्यो, ते वराने वेश्या थोक्की के !” ए

स्वामी ! मैं तो हास्यथी कलुं हतुं; माटे मने एकली मूर्कीने तमे केम जाओ छो ?” नंदि-
पेण कलुं के “ तारे ने मारे एट्लोज संवंध हतो. ” एम कहीने श्रीमद्भावीरस्वभिनी
समीपे आवी तेमणे फरीयी चारित्र ग्रहण कर्यु. पछी शुद्ध निरतिचार चारित्रनुं प्रतिपादन
करी, छेवट अनशन ग्रहण करी मृत्यु पामीने देवलोके गया.

आ प्रमाणे ते नंदिपेण मुनि दशपूर्वधारा हता, तेमज देशनानी अपूर्व दग्धि-
वाळा हता; तोपण ते निकाचित कर्मना भाँग थकी मूकाया नहाँ, तो वीजानी शी बात
करवी ? माटे कर्मनो विष्वास करवो नहाँ.

**कलुंसीकओ अ किंद्रीकओ अ, खर्यरकिओ मालिणिओ अ ।
कम्मेहिं ऐस जीवो, नार्जण ॥३४९॥**

अर्थ—“ जे कारण माटे आ जीव ज्ञानावरणादिक आट कर्मोए (कर्मल्पी धूलबडे)
करीने जेम धूलथी व्याप थेयेलुं जल पंकिल (कादववाळुं-डोळुं) थाय हे तेम कलुषित
करायेलो हे, लोढाने जेम काट वले तेम किंद्रीकृत-काटवाळो करायो हे, जेम जेतो रस
(स्वाद) नाश पाम्यो हे एवा मोटक जुदा स्वभावने पामे (गंधाइ जाय) तेम आ
जीव पण जूदा (ज्ञानादिक राहित) स्वभावने पाम्यो हे; वली आ जीव कर्मवडे
मक्किन करायो हे, एटले जेम वत्त्र मेलवाळुं (मलिन) थाय हे तेम आ जीव पण
मेलो करायो हे. ए प्रमाणे होवायी आ जीव जाणतां छतां पण मोह पामेहे—मृढ बने हे,
(ते सर्व निकाचित कर्मनोज दोप हे.) ” २४९

**कम्मेहिं वज्जसारोवमेहिं, जउनंदणो ॥३५०॥
सुबहुं पि विसूरंतो, न उरइ अर्प्पखमं काउं ॥२५०॥**

अर्थ—“ यदुनंदन (श्रीकृष्ण) प्रतिबुद्ध एटले क्षायिक सम्यक्त्वे करीने
जागृत छतां पण तथा घण्ठा पश्चात्ताप करतां छतां पण वज्रसारनी उपमावाळा (वज्रसार
जेवा अति कठण-निकाचित) कर्मोए करीने (कर्मोने लीघे) आत्मक्षम एटके आत्माने
हितना, कारण एवा क्रियात्मुष्टानादिक करवाने शक्तिमान थया नहाँ. ” २५०.

गाथा २४९—खर्यरकिओय ।

गाथा २५०—विसूरंतो=पश्चात्तापं क्रुर्वत्—तरइ—शशाक ।

वासैसहस्रं ४पि जैइ, कार्जिणं संयमं सुविंतलं ४पि ।

अंते किलिङ्गभावो, नै विसुज्ज्ञाइ ५कंडरीउव्व ॥ २५१ ॥

अर्थ—“ कंडरीकनी जेम (तेण घणां वर्ष तपस्या करी तोपण अंते विळष्ट परिणामयी नरके गयो) कोइ पण यति हजार वर्ष सुधी पण अति विपुल संयम (चारित्र) करीने (पाळीने) पण जो कदाच अंते विळष्टभाव (अशुभ परिणाम) थाय तो ते विशुद्ध थतो नथी. अर्थात् ते कर्मक्षय करी शकतो नथी, अने दुर्गतिने पामे छे. ” २५१.

अर्धपैण ५वि कालेण, कैइ जैहागहियसीलसामना ।

सांहंति नियंयकजं, पुंडरीयमहारिसि वै जैहा ॥ २५२ ॥

अर्थ—“ जेवा भावे ग्रहण करेलुं होय तेवाज भाववाळुं जेमतुं शीळ-सदाचार अने श्रामण-चारित्र छे, एवा केटलाएक सावुओ पुंडरीक महाकृपिनी जेम (पुंडरीक महाकृपि थोटा काळमांज सद्गति पाम्या तेम) अल्प काळे करीने ज पोताना (मोक्षसाधन रूप) कार्यने सावे छे. ” २५२. विस्तारथी तेनो संदंध कथानकगम्य होवार्थी अर्ही कंडरीक अने पुंडरीकनो संदंध जाणवो. ६१.

कंडरीक अने पुंडरीकनी कथा.

जंबूदीपना महाविदेहसेत्रमां आवेला पुफ्कलावती विजयमां पुंडरीकिष्णि नामे महा नारी छे. ते नगरीमां महापद्म नामे राजा राज्य करतो हतो. तेने पद्मावती नामे राणी हती. ते राणीनो कुक्षियी उत्पन्न थयेला पुंडरीक अने कंडरीक नामे तेने वे पुत्रो हता. तेमांथी मोटा पुत्र पुंडरीकने राज्यपर स्थापन करीने अने कंडरीकने युवराजपदे स्थापीने महापद्म राजाए स्थविरसुनि पासे चारित्र ग्रहण कर्यु. ते महापद्म मुनि चारित्रतुं आराधन करीने अनुक्रमे केवलज्ञान पामी मोक्षे गया. पुंडरीक राजा राज्यतुं पालन करतो हतो, तेवामां एकदा वने भाइओ कोइ स्थविर मुनि पासे धर्मोपदेश सांभलीने प्रतिबोध पाम्या. धरे आर्वीने मोटा भाइ पुंडरीके नाना कंडरीकने करुं के “ हे भाइ ! आ राज्यने तुं ग्रहण कर, अने प्रजातुं पुत्रनी जेम पालन करने. हुं स्थविरसुनि पासे चारित्र ग्रहण करीद. ” ते सांभलीने कंडरीक वोल्यो के “ हे भाइ ! मारे राज्यतुं शु काम छे ? पिताए तपने राज्य आप्युं छे, माटे तेने तपेन भोगवो. हुं तो स्थनिगमुनिनी पामे जर शिख तेजाको न ” पाम करीने उयेष धंशनी रजा लड कंडरीके चारित्र ग्रहण

कर्यु. अनुक्रमे ते अगियार अंगने धारण करनार थयो. स्थविरमुनिओनी साये विद्वां
करतां अने नीरस तथा लूखो आहार करतां कंडरीक मुनिना शरीरमां मोटा रांगो
उत्पन्न थयो. एकदा कंडरीक मुनि स्थविर साधुओनी साये विहार करतां पुंडरीकिणी नग-
रीए आव्या. ते वात सांभळीने पुंडरीक गजा तेपने वंदना करवा गयो. प्रथम स्थविरोने
वंदना करी, तेमनी पासे धर्म श्रवण करीने पढी तेणे पोताना भाइ कंडरीकने वंदना करी.
ते वर्खते तेना शरीरमां रोगोत्पत्ति जाणीने राजाए तेपने पोतानी यानशालामां राख्या.
त्यां कंडरीकनी शुद्ध आपथधी चिकित्सा करावी, तेथी ते अनुक्रमे नीरोगी थया, एटले
स्थविरोए विहार करवा मोठे राजानी रजा मागी. परंतु मिठु खानपानमां मूर्ढी पांगेका
कंडरीके राजा पासे विहार करवानी रजा मागी नहीं. त्यारे पुंडरीक राजा
स्थविरने वंदना करी पोताना भाइनी प्रशंसा करवा लाग्यो के “ हे भाइ !
तमने धन्य छे, तमे पुण्यवान छो अने तमे कृतार्थ छो, तमे उत्तम मनुष्यजन्मतुं
अने जीवितनुं फल पाम्या छो. केमके तमे चारित्र ग्रहण करी तप अने संयमनुं आरा-
धन करो छो, अने हुं तो अधन्य हुं अने अपुण्यवान हुं. केमके राज्यमां मूर्ढी पांगीने
रहेलो हुं.” आ प्रमाणे राजाए ते कंडरीक मुनिनी घणी स्तुति करी, परंतु ते मनमां जरा
पण आनंद पाम्यो नहीं, तो पण तेणे लजित थइने राजानी आज्ञा लड्ड स्थविर साये
विहार कयों. ए प्रमाणे एक हजार वर्ष सुधी कंडरीक मुनि चारित्रनुं पालन करी छेवट
भ्रष्ट परिणामवालो थयो. तेथी ते एकलोज गुरुनी आज्ञा लीथा विना पुंडरीकिणी नग-
रीमां आव्यो, अने राजाना महेलनी पासेना अशोक वनमां अशोक वृक्षनी शाखापर
पोतानां उपकरणो मूकीने ते वृक्षनी नीचे दुभायेला. मनवालो ते चिंतातुरपणे वेडो. ते
वर्खते तेने राजानी धाव्यमाताए जोयो, एटले तेणे आवीने पुंडरीक राजाने ते वृत्तांत
कर्हुं. ते सांभळीने राजा तेनी पासे गयो. तेने जोइनेज तेणे तेनो अभिप्राय जाणी
लीधो एटले एकांतमां राजाए तेने पूछ्युं के “ हे भाइ ! तने भोग भोगववानी अभि-
लापा थइ छे ? ” ते वोल्यो के “ हा, मने राज्य भोगववानी इच्छा थइ छे.” ते सांभळीने
पुंडरीक राजाए पोताना कुदुंबीओने वोलावीने कंडरीकने राज्याभिषेक कयों, एटले कंडरीव
राजा थयो. तेज दिवसे कृश शरीरवाला ते कंडरीके अति रसवालो आहार कयों; तेथी तेन
देहमां मंहा वेदना उत्पन्न थइ, पण तेनुं कोइए कांइ पण औपध कर्यु नहीं. सर्वेण जाण
के “ आ पापिष्ठे चारित्र मूकीने राज्य ग्रहण कर्यु छे, ते अमने शुंसुख आपवानो हतो ? ”
आ प्रमाणे थवाथी कंडरीकने प्रधान विग्रेनी उपर अत्यंत क्रोध चड्यो. तेथी तेणे विचा-
कयों के “ ठीक छे, हमणां कोइ पण मारी सेवा करतुं नथी, परंतु ज्यारे हुं सारे
थइश त्यारे आ सर्वनो निग्रह करीश. ” ए प्रमाणे अत्यंत रौद्र ध्यान करतो तेज रा-
त्रिए मृत्यु पांगीने ते सातमी नरके तेत्रीश सागरोपमना आयुष्यवालो नारकी थयो.

आ प्रमाणे जे कोइ चारित्रनो त्याग करीने विषयनी अभिलाषा करे, ते कंडरीकनी जेम दुर्गतिने पामे छे.

कंडरीकने राज्य आपीने तरतज पुंडरीक पोतानी मेळे चार महाव्रतनो उच्चार करी, ते कंडरीकनांज उपकरणो लइ, स्थविरने वंदना कर्या पछी ज आहार लेवानो अभिग्रह करी, घरमांथी वहार नीकल्यो. मार्गमा कांटा तथा कांकराना झपसेगोने सहन करतो ते पुंडरीक मनमां विचारे छे के “ हुं स्थविर महाराजाने क्यारे वंदना करीश ? ” एवा परिणामवडे चालतां वीजे दिवसे ते धुंडरीक स्थविर मुनि पासे आवी पहोऱ्यो. गुरुने वंदना करीने फरीथी तेमनी पासे चार महाव्रतो उच्चर्या. पछी छान्ने पारणे लूखो अने नीरस-जेवो तेवो आहार कयो. तेथी मध्यरात्रिने समये तेना शरीरमां महा व्यथा उत्पन्न थड. तेने दृढ परिणामथी सहन करी, विशुद्ध ध्यानमां रही, तेज वस्ते काळ करीने सर्वार्थसिद्ध नामना महा विमानमां तेत्रीश सागरोपमना आयुष्यवाळा देव थया. त्यांथी चवीने महाविदेह क्षेत्रमां उत्पन्न थड सिद्धिपदने पामशे.

“आ प्रमाणे अल्प समय पण जे शुद्ध रीते चारित्रनुं प्रतिपालन करे छे ते पुंडरीक क्षणिनी जेम अक्षय सुखने पामे छे.”

इति कंडरीकपुंडरीकयोः संबन्धः ॥ ६९ ॥

काऊणं संकिलिष्टं, सामन्नं दुल्हं विसोहिप्यं ।

सुंजिज्ञज्ञा ईंगयरो, कंरिज्ज जैइ उर्जमं पच्छा ॥ २५३ ॥

अर्थ—“ पहेलां आपण (चारित्र)ने संकिलिष्ट (मलिन) करीने पछी ते चारित्रविराधकने विशोधिपद दुर्लभ छे: एटले के जेपे प्रथम चारित्रने मलिन कर्यु होये तेने पछीथी चारित्रने निर्मल करवु ते घणुं दुर्लभ छे. जो कदाच पाळक्यां एटले प्रथम चारित्रनी विराधना कर्या पछी प्रमादनो त्याग करीने चारित्र पालन करवानो उद्यम कर, तो कोइक भाज्यवान शुद्ध (निर्मल) थड पण शके छे. ” २५३.

अंजिज्ञज्ञ अंतरज्ञिय, खंडिय सर्वलादउव्व हुड्ज खैणं ।

ओंसन्नो सुहलेहड, नैं तरिंजज्व पर्च्छ उर्जमिउं ॥ २५४ ॥

अर्थ—“ मध्यमां (चारित्र लीथा पछी वच) चारित्रनो त्याग कर, व्रतभंग

कर्त्तव्याधी चारित्रने खंडित करे, तथा क्षणे क्षणे नाना प्रकारना अतिन्चारे करीने चारित्रने मलिन करे एवो अवसन्न (शिथिल) अने सुखलंपट साथु पाढ़लयी पण चारित्रने विषे उद्यम करवा शक्तिमान थतो नयी-उद्यम करी शक्तो नयी। ” २५४.

अवि नाम चैक्वट्टी, चूँज्ज सैव्वं पि चैक्वट्टिसुहं ।

नैं यै ओसन्नविहारी, दुहिओ ओसन्नयं चैर्यई ॥ २५५ ॥

अर्थ—“ वली छ खंडनो अधिष्ठिति एवो चक्रवर्तीं सर्व एवा पण चक्रवर्तींनो सुखनो त्याग करे छे; परंतु शिथिल विहारी पुरुष दुःखी थया छतां पण शिथिलपणानो त्याग करतो नयी. एट्ले चिकणा कर्मवडे लेपायेलो होवाधी तजी शक्तो नयी। ” २५५.

नर्यत्थो संसिराया, वँहु भण्णइ देह्लालणासुहिओ ।

ईडिओमि भैए भाँओअ, तो ००मे जाँएअ ००तं ००देहं ॥ २५६ ॥

अर्थ—“ नरकमां रहेलो शशि (शशिप्रभ) राजा पोताना भाइने घण्णु कहे छे के ‘हे भाइ ! हुं देहतुं लालनपालन करवाधी सुख पाम्यो (सुखलंपट थयो), तेथी आ भयमां नरकमां पडयो छुं. माटे मारा ते (पूर्वभवना) देहने तुं पीडा कर. (पीडा पमाड-कदर्थना कर). ” २५६. अहीं शशिप्रभ राजानी कथा छे ते नीचे प्रमाणे—

शशिप्रभ राजानी कथा.

कुसुमपुर नगरमां जितारी नामे राजा हतो. तेने शशिप्रभ अने सुरप्रभ नामना वे पुत्रो हता. तेमां मोटा शशिप्रभने राज्यपर वेसाडी नाना सुरप्रभने युवराजपद आपीं जितारी राजा धर्मकर्ममां उद्यमी थयो. एकदा त्यां चार ज्ञानने धारण करनार श्रीविजयघोष सूरि समवसर्या. तेमने वंदना करवा माटे शशिप्रभ अने सुरप्रभ गया. गुरुना सुखधी धर्मदेशना सांभळीने सुरप्रभ प्रतिघोष पाम्यो. पछी घेर आवीने सुरप्रभ शशिप्रभने कहुं के “ हे वंधु ! आ संसार असार छे, तेथी विषयसुखनो त्याग करी चारित्र लइ तपसंयमने विषे उद्यम करीए; जेथी स्वर्ग तथा मोक्षनी पण प्राप्ति थाय. ” ते सांभळीने शशिप्रभे कहुं के “ हे भाइ ! आजे तुं कोइ धूर्तधी वंचना करायो (ठगायो) देखाय छे. केमके प्राप्त थयेलां विषयसुखोनो त्याग करीने आगलपरनां (भविष्यनां) सुखनी वांछा करे छे, माटे तुं मर्हा मूर्ख छे; भविष्यनां सुख कोणे जोयां छे ? धर्मतुं ल थशे (मळशे) के नहीं ते कोण जाणे छे ? ” त्यारे सुरप्रभ बोहयो के “ हे भाइ ! तमे शुं कहुं ? धर्मतुं फल निथित मळेज छे. केमके पुण्य अने पापनां फलो प्रत्यक्ष

गाथा २५५-उसन्न विहारि । उसन्नयं । चयह ।

गाथा २५६-वहुं । भाउथ । जाएह । जाएब=यातय, पीडयेत्यर्थः ।

न देखाय छे, जुओ, एक जीव रोगी, एक नीरोगी, एक रूपवान, एक कुरुषी, एक धनवान, एक निर्धन, अने एक सौभाग्यवान, वीजो दुर्भाग्यवान, इत्यादि सर्व पुण्य-पापनुं फलज छे. ” ए रीते अनेक प्रकारे बोध कर्या छतां पण शशिप्रभ बहुलकर्मी शेवाथी बोध पास्यो नहीं. त्यारे सुरप्रभे एकलाल दीक्षा ग्रहण करी, अने तपसंयमनी आराधना करीने अनुक्रमे मृत्यु पार्मी ब्रह्मदेवलोकमां गयो. राज्यनुं पालन करतौ अने विषयसुखमां मम रहेलो शशिप्रभ व्रत प्रत्यारुद्धान विनाज मृत्यु पार्मीने त्रीजी नरकमां नारकी थयो. पछी सुरप्रभ देवे अवधिज्ञानवडे पोताना पूर्वभवना भाइने नरकमां रहेलो जाणी पूर्वना स्नेहने लीघे नरकभूमिमां आवी तेनी पासे तेना पूर्वभवनुं स्वरूप कहुं, तथा ते देव बोल्यो के “ हे भाइ ! पूर्व भवे तें मारुं कहुं कर्युं नहीं, माटे आ नरकमां तुं उत्पन्न थयो. ” ते सांभळीने शशिप्रभे पण ज्ञानथी पोताना पूर्व भवनुं स्वरूप जाप्युं. पछी ते नरकमां रहेला शशिप्रभे सूरप्रभ देवने कहुं के “ हे भाइ ! पूर्वे विषय-मुखमां लंपट थयेला में धर्मनुं आराधन कर्युं नहीं, तेथी हुं नरकमां पढथो छुं. देवे तुं त्यां जइने मारा शरीरने पीडा उत्पन्न कर. भूमिपर पडेला मारा पूर्व भवना शरीरनी कर्दथना कर के जेथी हुं नरकमांथी नीकछुं. ” ते सांभळीने सुरप्रभ देवे कहुं के—

कौं तेण जीवरहिएण, संपैयं जाइएण हुँज्ज झुणो ।

जई सिं पुंरा जौयंतो, तो नैरए नैवं निवंडंतो ॥ २५७ ॥

अर्थ—“ हे भाइ ! हवे यातना पमाडेका (पीडा पमाडेला) ते (पूर्व भवना) जीवरहित शरीरवडे करीने तने दो गुण थाय ? जो तें पूर्वे ते देहने तपसंयमादिक वडे कर्दथना पमाडी होत तो तुं नरकमां नज पडचो होत. ” २५७.

“ हवे तो करेलां कर्मोनुं फल भोगव. तारा दुःखनुं निवारण करवामां हवे कोइ पण समर्थ नयी. ” ए प्रमाणे नरकमां रहेला पोताना भाइ शशिप्रभना जीवने प्रतिबोध पमाडीने ते सुरप्रभ देव स्वस्थाने (स्वर्ग) गयो. आ प्रमाणे शशिप्रभनुं दृष्टं जाणीने हे भव्य प्राणीओ !

जौवाउं सावसेसं, जौव यैं थोर्वी वि अतिथ वर्वसाओ ।

तंव कंरिज अैप्पहियं, माँ संसिराया वैं सोइहिसि ॥२५८॥

अर्थ—“ ज्यां सुधी आगुप्य अवयोप सहित (वाकी) होय अने ज्यां सुधी थोरो पण शरीर अने पननो व्यवसाय-उन्नाद होय, त्यां सुधी आन्नाने हितकारक तर्व

तपसंयमादिक अनुष्ठान करवुँ; पाललघी शशिप्रभ राजानी जेम शोक करवो नहीं। अर्थात् पछीधी शोक करवानो वस्त आवे तेम करवुँ नहीं। ” २५८.

॥ इति शशिप्रभनृपसंवन्धः ॥ ६२.

धिंत्तृण ९३ वि सामन्नं, संज्ञमजोगेसु होइ जो सिंहिलो ।
पैंडइ जई व्यणिजे, सोअँइ अँ गैओ कुँदेवत्त ॥ २५९ ॥

अर्थ—“ जे (मनुष्य) श्रामण्य (चारित्र)ने ग्रहण कर्नाने पण संयमयो विषे (चारित्रनी क्रियाना समृद्धने विषे) शिथिल (प्रमादी) थाय छे, ते यति लोकमां वचनीयता (निंदा) पामे छे, अने परभवणां कुदेवपणाने (किन्तिपण्णां पाम्यो छतो ते जीव शोक करे छे. तेने शोक करवानो वस्त आवे छे. ” २५९.

सुच्चा १०३ ते जिँअलोए, जिणवयणं १०४ जे नैरा नै याणंति ।

सुच्चाण १०५ वि ते १०६ सुच्चा, १०७ जे १०८ ऊँजणं १०९ ११० वि १११ करंति ॥ २६० ॥

अर्थ—“ जे मनुष्यो अविवेकीपणाथी जिनवचनने जाणता नथी तेथो जीवलोकने विषे (अरे ! तेओनी शी गति थशे ? एवी रीते) शोक करवा लायक छे, जे पुरुषो ते जिनवचनने जाणीने (जाणता छतां) पण प्रमादने लीघे करता नथी (प्रमाणे आचरण करता नथी) तेओ शोक करवा लायक मनुष्योना मध्ये पण वि कर्नाने शोक करवा लायक छे. जाणता छतां प्रमादपणाथी ए प्रमाणे न वर्तेवुँ ए । अनर्थनो हेतु छे, ए अहीं तात्पर्य छे. ” २६०.

दावेझण धणनिहिं, तेसिं१० उप्पोडियाणि अँच्छीणि ।

नौँजण १११ वि जिणवयणं, ११२ जे इँह विहँलंति धमधणं ॥ २६१ ॥

अर्थ—“ आ संसारमां जेओ तीर्थकरे भाखेला वचनने जाणीने पण ते रुपी धनने विफल (निष्फल) करे छे तेओए रंकजनने रत्नसुवर्णादिकथी भरे धननो निधि देखाडीने पछी ते रंकजननां नेत्रो उपाडी (काढी) नांख्यां छे-का नांख्या वरावर कर्यु छे एम समजबुँ. ” २६१.

गाथा २५९—जोएसु । जई । सोयई य । गाथा २६०—सुच्चा=शोच्याः शोचनाहार्हाः ।

गाथा २६१—दावेझण=दर्शयित्वा ।

ठर्णं उच्चुच्येरुं मज्ज्वं हीणं च हीणतरगं वां ।

जेर्ण जहिं गंतव्यं, चिंडा^{१४} वि^{१५} से तारिसी^{१६} होई ॥ २६२ ॥

अर्थ—“ देवलोकरूपी उच्च, मोक्षगतिरूप उच्चतर (अति उच्च), मनुष्यगतिरूप मध्यम अने तिर्थंचगतिरूप हीन अथवा नरकगतिरूप हीनतर स्थान मध्ये (ते स्थानमांयी) जे स्थाने जे जीवे (जीवने) जवानुं छे ते जीवनी (पुरुषनी) चेष्टा पण तेवीज (तेवाज प्रकारनी) थाय छे, जल्लेसे मरइ तल्लेसे उबवज्जइ—जे लेश्याए प्राणी मरे छे ते लेश्याए उत्पन्न थाय छे—एवुं सिद्धान्तनुं वचन छे. २६२.

जसंस ऊरुमि पैशिभवो, सौहुसु अणायरो खमा तुच्छा ।

धम्मे र्य अंणहिलासो, अहिलासो दुङ्गइं ऐओ ॥ २६३ ॥

अर्थ—“ जे पुस्पने गुस्पने विषे परिभव-अवज्ञा करवापणुं होय, मोक्षमार्गिना साधक साधुओने विषे अनादर होय, जेने तुच्छ (थोडी) क्षमा होय अने जेने क्षमाति विहेरे दश प्रकारना यतिधर्मने विषे अनभिलाप (इच्छारहितपणुं-अनिच्छा) होय ते पुस्पने आ दुर्गतिनो अभिलाप जाणवो (ते दुर्गतिमां जवाने इच्छे छे, एम जाणवुं).” २६३.

सौरीरमाणसाणं, दुख्कसहस्राण वसेणपरिभीया ।

नाणंकुसेण मुणिणो, राग्गइंदं निरुभंति ॥ २६४ ॥

अर्थ—“ शरीर संवंधी अने मन संवंधी हजारो दुःखना व्यसन (कष्ट-पीडा)-भी भय पामेला (पराभव पामेला) मुनिओ त्रिकालज्ञानरूपी अंकुशे करीने रागरूपी गजेन्द्रनो निरोध करे छे. (राग गजेन्द्रने प्रसरवा देता नयी-आववा देता नयी). २६४.

सुगर्डमगपईवं, नाणं दिंतैस्स हुज्ज किंमदेयं ।

जह तं पुलिंदएणं, दिन्नं सिंवगसस नियगच्छ ॥ २६५ ॥

अर्थ—“मोक्षरूपी सद्गतिना मार्गिने (प्रकाश करवावटे) प्रदीप समान ज्ञान (जेनायी वस्तुमन्तर्य जणाय ते श्रुतज्ञान)ने आपनार एड्ले ज्ञाननुं दान करनार गुग्ने शु अदेय-न आपवा लायक वस्तु होय ? कांडज नर्ही, अर्थात् ज्ञानदाता गुरु शीर्धिन पांग नो ते पण सुशिष्ये आपवुं जोड्ग. नया-जेय ने पुलिंदे (भिष्टे) गिर (परादेव)ने पोनानुं नेत्र आपवुं हतुं.” ते मन्त्रप्र कथायी जाणवुं. २६५.

पुलिंद (भिण्ठ) नी कथा।

विव्यवनमां पर्वतनी एक गुफामां कोइ ह्यंतरथी अधिष्ठित धयेली शिव (महादेव)नी एक मूर्ति हती। तेनी पूजा करवा पाउ नजीकना गाममां रहेनारो एक सुग्रध नामे माणस हमेशां सां आवतो हतो। ते आवीने प्रथम ते स्थान वाळीने साफ करतो। पछी पवित्र जलवडे ने शिवनी मूर्तिने पखाली केसरमिश्रित चंदन विगेरे सुगंधी द्रव्योवडे पूजा करतो। पछी पुष्पमाला चढावी, धूप दीप विगेरे यथाविधि करी, एक पगे भूमिपर उभो रही ते शिवनी स्तुति ध्यान विगेरे करी, मध्याह समये घेर जह खोजन करतो। ए रीते ते प्रतिदिन पूजा करवा आवतो हतो। एकदा ते मुख पूजा करवा आव्यो, त्यारे पोते गड काले करेली पूजाने (पूजासाम्यग्रीने) काढी नांखीने कोइए धतूरा अने कणेर विगेरेनां पुष्पोवडे पूजेली शिवनी मूर्तिने जोइ तेणे विचार कथों के “ अहो ! आ अरण्यमां एवो कथो पुरुप छे के जे मारी करेली पूजाने दूर करीने हमेशां शिवनी पूजा करे छे ? तो आजे तेने हुं जोउं तो सरो। ” एम विचारीने ते गुस रीते त्यां रह्यो। तेवामां त्रीजा प्रहरे एक भिण्ठ त्यां आव्यो। तेना शरीरनो वर्ण श्याम हतो, तेणे डावा हायमां धनुष धारण करेलुं हतुं, जमणा हायमां आकडानां, धतूरानां अने कणेर विगेरेनां पुष्पो विगेरे पुजानी सामग्री धारण करी हती अने मुखमां जल भरेलुं हतुं। एवी रीते भयंकर मूर्तिवालो ते भिण्ठ पगमां पहेरेला जोडा सहित मूर्ति पासे आव्यो, वली तुरतज तेणे मुखना जळधी ते मूर्तिने एक पगवडे पखाली आकडानां अने धतूरानां पुष्पो चढाव्यां, अने ते मूर्तिना मुख पासे एक मांसनी ऐशी पूकी। आवा प्रकारनी भक्ति करीने मात्र ‘ महादेव परमेश्वरने नमस्कार हो ’ एटकाज शब्दो बोली तेणे नमस्कार कथों। पछी तरतज ते वहार नीकच्छ्यो, तेज वरवते महादेवे प्रकट यहने तेने बोलाव्यो अने कहुं के “ हे सेवक ! आजे केम आटलो वधो विलंब धयो ? तने खोजन तो सुखेथी मले छे के ? अने तुं विघ्रहित चर्ते छे के ? ” आ प्रमाणे सुखशातना प्रश्न पूर्वक महादेवे तेनी संभाल लीधीः त्यारे भिण्ठ बोल्यो के “ हे स्त्रामी ! ज्यारे आप मारापर प्रसन्न छो, त्यारे मारे शी चिंता होय ? ” एम कहीने ते भिण्ठ चाल्यो गयो। त्यार पछी गुस रहेला पेला मुझे प्रगट थइ महादेव पासे आवीने कहुं के “ हे शिव ! मैं तासं ऐश्वर्य आजे जाण्युं, जेवो आ भिण्ठ सेवक छे तेवोज तुं देव जणाय छे; केमके हुं हमेशां केसरमिश्रित चंदन तथा सुगंधी पुष्पधूपादिकवडे पवित्रताथी तारी पूजा करें हुं, तोपण तुं मारापर प्रसन्न धयो नहीं अने मारी साथे कोइ दिवस वातचीत करी नहीं, अने आ अपवित्र तथा आशातना करनार भिण्ठनी साथे प्रत्यक्ष यहने वातचीत करी। ” ते सांभलीने महादेव बोल्या के “ हे वत्स ! ते भिण्ठनी अने तारी भक्तिमां

केटलुं अंतर छे ते हुं तने देखाईश.” ते सांभलीने ते मुग्ध पोताने घेर गयो. वीजे दिवसे तेज प्रमाणे मुग्ध शिवपूजा करवा आव्यो. ते वरवते शिवे पोतानुं एक (त्रीजुं) भालमां (कपाळमां) रहेलुं नेत्र अदृश्य कर्यु. ते जोइने ते मुग्धगण मनमां खेद पास्यो अने ‘ अरे ! आ शु थयुं ? कोइ पापीए आ परमेश्वरना भालमां रहेलुं नेत्र काढी नाखेलुं जणाय छे. ’ एम कहीने ते मोटे स्वरे रुदन करवा लाग्यो. ए रीते वर्णी बार सुधी रुदन करीने पछी तेणे पूजादिक नित्य कृत्य कर्यु. योडी बारे भिष्णु पण त्यां आव्यो. तेणे पण शिवतुं भालनेत्र जोयुं नहीं, एटले तेणे क्षणवार शोक करीने तरतजे पोतानां वाणवडे पोतानुं एक नेत्र काढीने शिवना भालमां चोटाडयुं. त्यारे त्रणे लोचन पूरा थयां. पछी तेणे नित्यना नियम प्रमाणे पूजा करी. ते वरवते शिव प्रत्यक्ष थह्ने वाल्या के “ हे वत्स ! तारी भक्तिथी हुं प्रसन्न थयो छुं, माटे आजयी तने वर्णी संपत्ति प्राप्त थशे. ” ए प्रमाणे तेने वरदान आपीने शिवे पेला मुग्धगणने कह्युं के “ तारी अने भिष्णुनी भक्तिमां केटलुं अंतर छे ते तें जोयुं ? अमे आंतर भक्तिथी प्रसन्न थइए छीए, मात्र वाह्य भक्तिथी प्रसन्न थता नयी. ” एम कहीने शिव अदृश्य थया.

जेवी रीते ते भिष्णु शिवनी आंतर भक्ति करी, ते प्रमाणे वीजा शिष्योए पण शानदाता गुरुनी भक्ति करवी, ए आ कथानुं तात्पर्य छे.

॥ इति भिष्णुसंवन्धः ॥ ६३.

सिंहासणे निसन्नं, सोवौंगं सेणिंओ नर्सवरिंदो ।

विंजं मर्गगइ पर्युओ, ईअ साहुंजणस्स सुंअविणओ ॥२६६॥

अर्थ—“ सिंहासनपर पोतेज (राजाए) वेसाडेला श्वपाक (चांडाल) पासे नरवरेन्द्र श्रेणिक राजाए प्रणाम करीने एटले वे हाथ जोडीने विद्या मागी (याचना करी): तेवी रीते एटले जेम श्रेणिक राजाए विद्याने माटे श्वपाकनो विनय कर्यो, तेवी रीते साधुनननो श्रुतविनय शिष्योए पण करवो. ” २६६. ते कथा आ प्रमाणे—

चंडालनी कथा.

प्रगथदेशमां राजगृह नामे नगर छे. तेमां श्रेणिक नामे राजा राज्य करता था. तेने चिह्नणा नामे राणी द्वारी. तेने एकदा गर्भना प्रभावर्थी चोतरफ वाडी सहित एक स्तंभवाला मासाडमां वसवानो मनोरथ (दोह्रद) थयो. ते वात राजाए अभयकुमार देवतानी आगाधना करीने सर्वे क्रन्तुनां फलकुलवालां श्वेते सहित तथा फरता किला म्बिति गल च्यापाजाङ्गो गांच लिएन रो जोइने

चिल्णा हर्ष पामी. ते वाडी सर्व (छप) क्रन्तु अनां फल अने पुष्पो सहित रहती हती. ते वाडी फरता राजाना मुभयो तेनी रक्खा करवा माटे रात्रिदिवस रहता हता. तेयी ते वाडीमांथी एक पांदडुं पण लेवा कोइ शक्तिवान थतुं नहोतुं.

हवे ते नगरमां कोइ एक विद्यावान चंडाल रहतो हतो. तेनी स्त्रीने गर्भना प्रभावयी कातिक मासमां आम्रफलनुं भक्षण करवानो दोहद थयो. तेणे ते दोहद पोताना धणीने जणाव्यो. ते सांभलीने चंडाले विचार्यु के “आज अकाळे आम्रफल मात्र राजाना देवनिमित उद्यानमांज वर्ते छे; वीजे कोइ पण स्थाने वर्तता नयी.” एम विचारीने रात्रिने वखते ते चंडाल ते उद्यान तरफ गयो. किछानी अंदर चोकी होवायी ते किल्लानी बहारज उभो रह्यो. पछी तेणे अवनामिनी विद्यावडे पाढी हती तेम शाखा उंची करी दीधी. ए रीते ते फलो लइने तेवडे पोतानी स्त्रीनो दोहद तेणे पूर्ण कर्यो. प्रातःकाळे आम्रफल विनानी शाखा तया तेनी नीचे किछानी बहार माणसना पंगलां जोइने रक्षकोए ते वृत्तांत राजाने निवेदन कर्यु. राजाए सर्वत्र तेनी (चोरनी) शोध करावी, पण चोर हाथ लाग्यो नहीं; एटके राजाए अभयकुमारने बोलावाने कर्यु के “आम्रफलना चोरने पकडी लाव.” अभये कर्यु के वहु सारु लावुं छुं.” एम कहीने अभयकुमार चौटामां गयो. त्यां घणा लोको नटनी रमत जोवा माटे एकठ थयेला हता. तेमनी पासे जइने अभये कर्यु के “हे लोको! आ नट ज्यां सुधीमां नाटक शरु करे नहीं. तेटलामां हुं एक कथा कहुं ते सांभळो.” लोको सर्वे सांभळवा लाग्या. एटके अभयकुमारे नीचे प्रमाणे कथा कही.

पुण्यपुर नगरमां गोवर्धन नामे श्रेष्ठी रहेतो हतो. तेने युवावस्थाए पहोचेली सुंदरी नासनी कुमारिका पुत्री हती. ते सुंदरी स्वरूप अने युवावस्थायी अत्यंत सुंदर लागती हती. ते हंमेशां योग्य वरनी प्राप्तिने माटे कोइ एक वाडीमांथी छानी रीते पुष्पो लइने तेवडे कामदेव नामना यक्षनी पूजा करती हती. एकदा ते वाडीना मालीए तेने पुष्पो चुंदती जोइ. तेनो हाथ पकडी, तेने माथे चोरीनुं कलंक मूकी माली बोल्यो के “हे स्त्री ! जो तुं मारुं कहेवुं कबूल करे तो तने मूकी दउं, नहींतो राजा पासे लह जाइश.” त्यारे ते बोली के “हे मित्र ! कहे.” माली बोल्यो के “तारे मारी कामक्रीडा संवंधी वांच्छा पूर्ण करवी.” कन्या बोली के “सांभळ, हजु सुधी हुं कुमारिका छुं, आजथी पांचमे दिवसे मारा लग थवाना छे, ते दिवसे हुं परण्या पछी तरत प्रथम तारी पासे आवी पछी मारा स्वामी पासे जाइश.” मालीए ते बात कबूल करी, एटके ते सुंदरी प्रतिज्ञा पूर्वक वचन आपनै पोताने घेर आवी. पछी पांचमे दिवसे पाणिग्रहण

यथा पछी ते सुंदरी पति पासे गइ. त्यारे प्रथम तेणे माली पासे करेली प्रतिज्ञा पोताना स्वार्मीने निवेदन करी. ते सांभलीने तेना पतिए तेने सत्यवादी जाणीने जवानी रजा आपी, एटले ते भोगनी सर्व सामग्री लड़ सुंदर वेष धारण करीने मध्य रात्रिने समये वर वहार नीकली. गामनी वहार जतां रस्तामां तेने प्रथम चोर मच्या. ते चोरो तेने सर्व आभूषणोयी भूषित जोइ लुट्टवा लाग्या. त्यारे ते सुंदरीए तेमनी आगळ माली पासे जवा संवंधी सर्व वृत्तांत जणावीने कहुं के ‘हुं पाढी आवीश, त्यारे तपने सर्व अलंकारादिक उतारी आपीश.’ ते सांभलीने चोरोए तेने सत्यवादी जाणीने जवा दीधी, आगळ जतां तेने एक राक्षस मळयो. ते तेने खाइ जवा तैयार थयो एटले तेने पण सर्व वृत्तांत कही तेणे पाढा आववानुं कबूल कर्यु. तेथी राक्षसे पण तेने मूकी दीधी. पछी ते सुंदरी अनुक्रमे ते वाडीमां माली पासे गइ, एटले नवी परणेली, नवा यौवनवाली अने अत्यंत अङ्गुत रूपवाली तेने जोइने ते माली हारिंत थयो. तेणे तेने पूछ्युं के “हे सुंदर नेत्रवाली खी! तुं अत्यरे रात्रिने समये एकली अहीं केम आवी? ” त्यारे तेणे पोते आपेलुं वचन जणावीने पोताना पति संवंधी तथा मार्ग संवंधी सर्व वृत्तांत कहुं. ते सांभलीने मालीए विचार्यु के “अहो! धन्य छे आ खीने! के जे वचनथी वंधायेली आवी अंधारी रात्रे बुद्धिना वळधी चोरने तथा राक्षसने पण वचन आपीने अहीं मारी पासे आवी. ज्यारे तेने तेना पतिए, चोरोए अने राक्षसे मूकी दीधी त्यारे मारे पण आ सत्यवादी खीने मूकी देवीज जोइए.” एम विचारीने मालीए तेने कहुं के “हुं तारो भाइ लुं. अने तुं मारी वेन छे. मारो अपराध क्षमा कर.” एम कही तेना पगमां पडी (नमस्कार करी) ने तेने पाढी पोकली. पाढा आवतां मार्गमां राक्षस मळयो. तेनी पासे तेणे मालीनुं सर्व वृत्तांत कहुं. ते सांभलीने राक्षसे विचार्यु के ‘आवी नव यौवनवाली सुंदरीने ते मालीए न भोगवतां मूकी दीधी, तो हुं आवी सत्यवादी सतीने शामाडे भक्षण कहुं?’ एम विचारीने तेणे पण ‘तुं मारी वेन छे’ एम कही मूकी दीधी. फरी आगळ जतां चोरो पद्ध्या, तेपनी पासे पण मालीनुं तथा राक्षसनुं वृत्तांत कहुं: एटले तेओ लुट्टवा आव्या द्वाता तोषण तेपणे तेने वेन कहीने मुक्त करी. पछी अनुक्रमे ते पति पासे आवी. तेने सर्व वृत्तांत निवेदन कर्यु. ते सांभलीने ते अत्यंत खुशी थयो अने तेणे वरनो सर्व अधिकार तेने सौष्ठ्यो.”

आ प्रमाणे कथा कहीने अभयकुमारे सर्व लोकोने पूछ्युं के “हे लोको! कठो, आ चारे (पनि, चोर, राक्षस अने माली) पां दुप्पकर काम कोणे कर्यु कहेवाय?” ते सांभलीने जेओ यी इपर अविभासु द्वाता तेओ योन्या के “तेनो पति दुप्पकर काम अनार कहेवाय. केसके तेणे नवी परणेजी अने नवा यौवनवाली पोतानीन पल्लीने

प्रथम संगम वर्खतेज परपुरुष पासे मोकली. पछी परहीलंपट कामीं पुरुषी वोल्या के “माली दुष्कर काम करनार कहेवाय. केमके तेणे रात्रिने वरखते निर्जन प्रदेशमां जातेज सामी आवेली सुंदर खीनो त्याग करी पोताना मनने कवजे राख्युँ. माटे धन्य छे ते मालीने!” पछी जेओ मांस खावामां लुच्य हता तेओओ राससनी प्रशंसा करी अने तें दुष्करकारी कहो. छेवट पेलो आम्रफलनो लेनार चोर वोल्यो के “ते त्रणे करतां चोर ज दुष्कर कार्य करनारा कहेवाय. केमके तेओओ आभरणोयी भृपित थयेली अने समीं आवेली ते खीने मूकी दीधी, अने लुंटी नहीं तेथी तेथोनेज धन्य छे! ” ते सांभलीं अभयकुमारे ते चंडाळने पकडी लीधो. पछी तेने एकांतमां लइ जइ अभये कहुं वे “तुंज आम्र फळनो चोर छे, माटे सत्य वात कही दे; नहीं तो तारो निग्रह करीश.” त्यारे चंडाळ वोल्यो के “हा, मैं फळो लीधां छे. ” अभये पूज्युं के “शामाटे अने केवी रिति लीधां? ” त्यारे तेणे पोतानी खीना दोहदनुं अने विद्याना सामर्थ्यनुं स्वरूप यथार्थ निवेदन कर्यु. एटले तेने लइने अभयकुमार श्रेणिक राजा पासे आब्बो राजाए ते चोरने मारवानी आज्ञा करी. त्यारे दयालु अभये कहुं के “हे स्वामी एक वार एनी पासेथी विद्या तो ग्रहण करो; पछी जेम करखुं होय तेम करजो. ” ते सांभलींने राजाए सिंहासन पर वेठावेठाज हाथ वांधीने आगळ उभा रागवेला चोर पासे विद्या शीखवा मांडी. ते चंडाळ विद्या शीखववा लाग्यो; पण राजाना मुखे एक अक्षर पण चड्यो नहीं. त्यारे अभयकुमारे कहुं के “हे राजा! ए प्रमाणे विद्या आवडी नहीं. विनयथी विद्या प्राप्त थाय छे. माटे तेने सिंहासनपर वेसाडो, अने तमे हाथ जोडीने सन्मुख वेसो. ” ते सांभलींने राजाए तेम कर्यु, एटले तरतज विद्या आवडी. पछी फरीयी राजाए तेनो वध करवानी आज्ञा करी, त्यारे अभयकुमारे कहुं के “हे राजा! ए आपनी आज्ञा अयोग्य छे. केमके एक अक्षरनो पण जे आपनार होय तेने जे गुरु तरीके माने नहीं, ते सो वार कूतरानी योनिमां जन्म लइ छेवट चंडाळमां उत्पन्न थाय छे, एम नीतिशास्त्रमां कहुं छे; तेथी आ चंडाळ आपनो विद्यागुरु थयो छे माटे तेने केम पराय? हवे तो ते आपने पूज्य थयो छे. ” ते सांभलींने राजाए ते चंडाळनी धणी भक्ति करी, अने धन वस्त्र विगेरे आपवावडे तेनो सत्कार करीने तेने घेर मोकल्यो. तेज प्रमाणे शिष्ये पण विनयपूर्वक गुरु पासे विद्यानो अभ्यास करवो ए आ कथातुं तात्पर्य छे, वली वीजे प्रकारे विनयनीज प्रस्तुपणा करे छेः—

॥ इति चंडाळ दृष्टान्तः ॥ ६४.

विज्ञाए कासवसंति आए, दग्गसूअरो सिरि पैतो ।

पंडिओ मुँसं वैयंतो, सुअंनिहवणा इंय अपि॑था ॥ २६७ ॥

अर्थ—“दक्षशूकर के० कोइ त्रिकाळ स्तान करनार त्रिदंडी काश्यप के० हजामे आपेली विद्याथी लक्ष्मीने पाम्यो हतो; परंतु पछीथी मृषा (असत्य) बोल्वाथी एट्के पोताना विद्यागुरुनो अपलाप करवाथी ते पड्यो—नष्ट विद्यावाङ्गे थयो, एवी रीते एट्के आ इत्यंत जाणीने श्रुतनिहवणा करवी अर्थात् श्रुतज्ञानं आपनारनो अपलाप करवो ए अपथ्य एट्के कर्मसूपी रोगने वृद्धि करनार छे एग जाणवुं.” २६७.

त्रिदंडीनी कथा

स्तंवपुर नगरमां एक चांडिल नामे अति कुशल हजाम रहेतो हतो. ते विद्याना बलधी हजामत करीने ते अस्त्राने आकाशमां अधर राखतो हतो. एकदा कोइएक त्रिदंडीए ते हजामनो प्रभाव जोयो. तेथी त्रिदंडीए ते हजामनी आराधना (सेवा) करीने तेनी पासेथी ते विद्या ग्रहण करी. पछी ते त्रिदंडी फरतो फरतो गजपुर (हस्तिनामापुर) मां आव्यो. ते बखते त्यां पद्मरथ राजा राज्य करतो हतो, ते पुरमां जइने ते त्रिदंडी पोताना त्रिदंडने आकाशमां अधर राखवा लाग्यो. ते जोइने घणा लोको आर्थ्य पामी तेनी अत्यंत पूजा (सेवा) करवा लाग्या. ते वृत्तांत राजाए पण लोकोना मुखथी सांभव्युं. सारे तेणे तेना पगमां पडी. (प्रणाम करी) विनय पूर्वक पृथ्युं के “हे स्त्रामी ! तमे आ त्रिदंडने आकाशमां राखो छो, ते कोइ तपनो प्रभाव छे के विद्यानो प्रभाव छे ?” त्रिदंडीए जवाब आप्यो के ‘हे राजा ! आ विद्यातुं सापर्थ्य छे.’ फरीथी राजाए पृथ्युं के “कहो, कोनी पासेथी आ चित्तने चपल्कार करनारी विद्या तमे शोख्या ?” ल्यार ते त्रिदंडीए लज्जाने लीधे ते हजामतुं नाम दीखुं नहीं, अने कलित जवाब आप्यो के “हे राजा ! पूर्वे मैं हिमवान पर्वतपर तपकष्टादिक अनुप्रानवड सरस्वतीनी आराधना करी हती. ते बखते ते देवीए प्रत्यक्ष थइने मने आ अंवरालंबनी विद्या आपी हती. तेथी सरस्वती मारी विद्यागुरु छे.” ए प्रमाणे ते त्रिदंडी बोल्यो असंत लज्जा पाम्यो अने लोकोए तेने अत्यंत धिक्कार्यो. मात्रै ते अति दुःखी थयो.

जेम त्रिदंडी गुरुनो अपलाप करवाथी दुःख पाम्यो, तेथी गिरे चीजा कोइ पण नो गुरुनो अपलाप करयो तो तेझो दुःखी थयो.

॥ वनि त्रिदंडिकोपदेशः ॥ ६५ ॥

संयंलंमि विं जियैलोए, तेर्ण ईहं घोसिंओ अैमाघाओ ।

इकं पि॒ जो दुहैत्तं, सैत्तं वोहेइं जिंणवयणे ॥ २६८ ॥

अर्थ—“जे मनुष्य एक पण दुःखार्त (दुःखधी पीडित) सत्त्व (प्राणी) ने जिनवचनने विषे (जिनवचनोवडे) वोध पमाडे छे, ते पुरुषे अहं (आ लोकमां) रथा थकाज सकल जीवलोकने विषे (चौद राजलोकने विषे) पण अपारी पट्ह वा-
दाव्यो एम जाण्युं.”

सम्भैत्तदायगाणं, दुप्पँडियारं भैवेसु वैहुएसु ।

सव्वैगुणमेलियाहि विं, उव्याँसहस्सकोडीहिं ॥ २६९ ॥

अर्थ—“घणा भवोने विषे पण सर्वगुणमेलित एट्ले (गुरुए करेला उपकार थी) वे गणा, त्रण गणा, चारगणा, एम करतां करतां सर्व गणा (अनंतगुणा) एवा पण हजारो करोडो उपकारोए करीने पण समकित आपनार गुरुनो प्रतिकार (प्रत्युपकार) करवो अशक्य छेः अर्थात् जे गुरुए समकित आपीने उपकार कर्यां छे तेनाथी अनंतगणा करोडो उपकारोए करीने पण तेनो प्रत्युपकार करी शकातो नयी, (धइ शकतो नयी) माटे समकितदाता गुरुनी मोटी भक्ति करवी.” २६९.

हचे समकितनुं फल कहे छे—

सम्भैत्तांमि उै लैछ्ये, ठईयाइं नरैयतिरियदाराइं ।

दिव्वाणि माणुँसाणि र्य, मौरकसुहाइं संहीणा इं ॥ २७० ॥

अर्थ—“तुं पुनः (वली) समकित पामे छते (ज्यारे समकित प्राप्त थाय त्यारे) नरकगति अने तिर्यचगतिनां द्वारो वंध थइ जाय छे (ते गतिओमां जन्म थतो नयी). केमके समकित पामेला मनुष्यो देवायुज वांधे छे, अने देवो मनुष्यायुज वांधे छे, तेथी ते द्वारो वंध थाय छे. ए अहं तात्पर्य छे. तथा देव संबंधी, मनुष्य संबंधी अने मोक्ष संबंधी सुखो पोंताने स्वाधीन थाय छे.” २७०. अहं नरकगति अने तिर्यच-
गतिना भेदो घणा होवाथी तेनां द्वारो एम बहुवचन वापर्यु छे.

वली वीजे प्रकारे समकितनुं फल बतावे छे.—

कुसमयसुर्ईण मैहण, सम्भैत्तं जैसस सुष्टियं हिँयए ।

तैसस ज्युज्जोयकरं, नांणं चैरणं चै भव्यमहणं ॥ २७१ ॥

अर्थ—“जे पुरुषना हृदयमां कुसमय श्रुति के० अन्य दर्शनीओता सिद्धान्तनां

गाथा २६८—इमाघाओ=अमारिप्रदहः । दुहत्तं=दुःखार्तम् । वोहेयइ । गाथा २६९—दुःप्रतिकारं ।

गाथा २७०—ठईयाइं=स्थापितानि—सुद्रितानीति यावत् । मुरक सुहाइं । सहीणाइं=स्वाधीनानि ।

श्रवणोने मथन करनारुं (नाश करनारुं) एवुं समकित सुस्थित (अति स्थिर) होय छे ते पुरुषने जगतने विषे उद्घोत करनारुं जगत्प्रकाशक केवलज्ञान अने भव (संसार)ने मथन (नाश) करनारुं चरण (यथाख्यात चारित्र) प्राप्त धाय छे. (तेवा ज्ञान ने चारित्रो उद्दय धाय छे). अर्थात् समकित न होय, तो ज्ञान न होय, अने ज्ञान न होपायी मोक्ष मली शके नहीं. माटे मोक्षनुं मुख्य कारण समकितज छे.” २७१.

सुपरिच्छियसम्मतो, नाणेणालौइयत्थसप्तभावो ।

निवृण्णचरणाउत्तो, इँच्छियमर्त्थं पसाँहेइ ॥ २७२ ॥

अर्थ—“सुपरीक्षित छे समकित जेनुं एवो (वृद्ध समकितवालो) अने (वृद्ध समकिते करीने उत्पन्न धयेला) सम्यक् ज्ञानवडे जीवादिक पदार्थोंनुं सद्भाव स्वस्त्रप जेणे जाणेन्दुं छे, अने तेथी करीनेज जे ब्रण (अतिचार) रहित (निर्दोष) चारित्रने विषे आयुक्त एटले निरतिचार चारित्रमां उपयोगवालो छे, ते पुरुष इप्सित एटले मनने इष्ट पत्रा मोक्षमुख रूपी अर्थने साधे छे—सिद्ध करे छे-प्राप्त करे छे.” २७२.

द्वे प्रमाद्यी समकित मलिन धाय छे, ते द्वृष्टांते करीने वतावे छे.

जैह मूलैत्ताणए पंडुरंमि, दुव्वैन्नरागवन्नेहिं ।

वीर्भिञ्छा पडँसोहा, इँय समर्त्तं पर्माएहिं ॥ २७३ ॥

अर्थ—“जेम व्येत मूळ तांत्रियामां (सुत्तरना तंत्रमां) काळा, राता विगोरे खराव वर्णवाला तंत्रयोए करीने वस्त्रनी शोभा वीभत्स के० खराव धाय छे, तेम प्रमादे करीने समकित पण वीभत्स-मलिन धाय छे. माटे समकितना शब्द स्व प्रमादोनो त्याग करवो योग्य छे ए तात्पर्य छे.” २७३.

नरैसु सुर्वैरेसु यै, जो वंधैइ साँगरोवमं इँकैं ।

पंलियोवमाण वंधैइ, कोडिंसंहस्साणि दिव्वसेण ॥ २७४ ॥

अर्थ—“सो वर्षना आयुष्यवालो जे पुरुष पापकर्म करवायी नरकगतिमां (नरकगति संवंधी) अने पुण्यकर्म करवायी देवगतिमां (देवगति संवंधी) एक सागरे-पर्वते आयुष्य वांधे छे ते पुरुष एक दिवसे (सो वर्षमाना दरेक दिवसे) दुःख सुख (नरक-सर्ग) संवंधी पल्योपमना करोडो हजारो जेठलुं आयुष्य वांधे छे: अर्थात् सो वर्षना दिवसांनो एक सागरोपमना दश कोटाकोटी पल्योपम साधे भाग्यकार करनां देखा आयुष्यने वांधवावालं पाप अने (अभवा) पण्य एक दिवसमां जीन जार्च

करे छे. माटे प्रमादना आचरणनो त्याग करीने निरंतर पुण्य उपार्जन करवामां उद्यम कर्खो, ए आ गाथानुं तात्पर्य छे.” २७४:

पलिँओवमसंखिज्जं, भाँगं जो वंधैङ् सुरंगणेसु ।

दिँवसे दिवसे वंधैङ्, सं वासंकोडी अंसंखिज्जा ॥ २७५ ॥

अर्थ—“ जे सो वर्षना आयुष्यवालो नरभवमां रहेलो पुरुष पुण्याचरणवडे देवजातिना समूहमां पल्योपमना संख्यातमा भागने (तेटला अल्प आयुष्यने) वांधे छे, (ते पुरुषने प्रतिदिन केटला करोड वर्ष आवे ? ते उत्तरार्ध गाथामां कहे छे). ते (देवगतिमां पल्योपमना संख्यातमा भागपारिमाण आयुष्यने वांधनार सो वर्षना आयुष्यवालो) पुरुष दिवसे दिवसे (प्रत्येक दिवसे) असंख्याता करोडो वर्ष (तुं आयुष्य) वांधे छे. एटले के जो पल्योपमना संख्यातमा भागना वर्षोंना विभाग करीने सो वर्षना दरेक दिवसमां वहेचीए तो ते दरेक दिवसे असंख्याता करोड वर्ष आवे.” २७५.

ऐस कंमो नैरएसु विँ, दुंहेण नाऊण नाँम ऐंयं पि ।

धंमंमिं कैह पमाँओ, ९९निमेसमित्तं पि॒॑ काँयव्वो ॥ २७६ ॥

अर्थ—“ आज क्रम नरकने विषे पण छे (जाणवो). एटले के पापकर्म करनार सो वर्षना आयुष्यवालो पुरुष प्रत्येक दिवसे असंख्याता करोड वर्षतुं नरकायुष्य वांधे छे. ते—पूर्वे कहेलुं पुण्यपापने उपार्जन करवातुं स्वरूप (नाम प्रसिद्धार्थक छे) जाणीने पंडित पुरुषे क्षांत्यादिक दश प्रकारना धर्मना आराधनमां एक निमेपमात्र पण प्रमाद (शिथिलता) शामाटे करवो जोइए ? सर्वथा प्रमाद न ज करवो जोइए.” २७६.

दिव्वालंकारविभूसणाइं, रँयणुज्जलाणि य घराँइं ।

रुद्धं भोगंसमुदओ, सुरलोगसमो कंओ इँहयं ॥२७७॥

अर्थ—“ आ (मनुष्य) लोकने विषे सुरलोकनी जेवां दिव्य अलंकारो (सिंहासन, छत्र विग्रेरे) अने मुकुटादिक आभूषणो, रत्नोए करीने उज्ज्वल (निर्मल) गृहो, रूप (शरीरतुं सौभाग्य) अने भोगसमुदाय एटले भोगनो संयोग (ए सर्वे) क्यांथी होय ? ” अर्थात् सर्वथा न ज होय. माटे धर्मकार्यने विषे उद्यम करवो, जेथी तेवां सुख प्राप्त थाय, ए आ गाथानो उपदेश छे.” २७७.

देवीण देवलोए, ९९जं सुरकं ९९तं नंरो सुभणिओ वि ।

नं भैणइ वासर्सएण वि, जस्से वि जीहासयं हुँज्जा ॥२७८॥

अर्थ—“जे (कोइ पण) पुरुषने सो जिहा होय तेवो सुभणित (वाचाळ) माणस पण सो वर्षे करीने (पण) देवलोकमां देवताओंने जे सुख छे ते सुखने कही शकतो नयीः अर्थात् सो जिहावालो वाचाळ पुरुष सो वर्ष सुधी देवताओंना सुखनुंज वर्णन कर्या करे, तोपण ते सुखना वर्णननो पार आवे नहीं, तेटलां वधां सुख देवलोकमां छे; तो वीजो साधारण माणस तो ते सुखनुं वर्णन शी रीतेज करी शके ? ” २७८.

नरंसु जाँइं अडैकरखडाइं, दुख्खाइं परैम तिस्काइं ।

को वन्नेही ताइं, जीविंतो वासंकोडी विं ॥ २७९ ॥

अर्थ—“नरकोने विषे अति कर्कश (दुस्सह) अने विपाकनी वेदनाए करीने परम तीक्ष्ण—अति तीक्ष्ण एवां क्षुधा तृष्णा पारवश्यादि दुःखो छे, ते दुःखोने करोड वर्ष सुधी पण जीवितो एवो कयो मनुष्य वर्णन करवा शक्तिमान छे ? कोइज शक्तिमान नयीः अर्थात् ते दुःखो सतत करोड वर्षों सुधी कहेतां पण कही शकाय तेटलां नयी.” २७९.

करकडैदाहं सामलि असिवण वेयरणि पहरणसएहिं ।

जाँ जायणाँउ पाँविंति, नारंया तं अहैमफंल ॥ २८० ॥

अर्थ—“नारकीओ कर्कश दाह (अग्निमां पकावनुं), शाल्मलि (शाल्मलि दृश्यनां पत्रोबडे अंगनुं छेदन), असिवण (खड्ग जेवां जेनां पांदडां होय छे तेवा दृश्यवाला बनमां भमवुं), वैतरणी (वैतरणी नामनी नदीना तपावेला सीसा जेवा जलनुं पान करवुं) अने कुठारादिक सेंकडो जातिनां प्रहरण (शस्त्रो) वडे अंगछेदन—तेणे करीने जे यातनाओ (पीडाओ) पामे छे, ते सर्व अर्थमनुं (धर्म विरुद्ध करेलां कृत्योनुं-पापोनुं) फल जाणवुं.” २८०. हवे तिर्यचगतिनां दुःखोनुं वर्णन करे छे—

तिरिया कँसंकुसारानिवायवहवंधणमारणसयाइं ।

न वि इह्यं पावंता, परैथ जँइ नियैमिया हुत्ता ॥ २८१ ॥

अर्थ—“जो तिर्यचो (हाथी, घोडा, वल्द विगेर) परभने (पूर्वभवे) नियमाला थया होत, तो आ भवे तेओ कदा (कोरटानो मार), अंकुश, धार (परेणा), निपात (पृथ्वीपर पाढी नांखवुं), वथ (दंदादिकथी मासवुं), वंधन (धोरडा, सांखल विगेरेपी थांधवुं) अने मारण (जीवितनो नाम) ते सर्व दुःखोना सेन्टराओ पाप्या न होत, अर्थात् न पापत.” २८१. हवे गनुप्रयगतिनां दुःखोनुं वर्णन करे हे—

आजीवसंकिलेसो, सुरकं तुच्छं उवहृवा वहुर्या ।

नीर्यजणसिद्धणा विंय, अंणिद्वासो अं माणुस्से ॥ २८२ ॥

अर्थ—“अपि च (वली) मनुष्यभवमां जावजीव (जीवन पर्यत) संक्षेप (मननी चिंता), तुच्छ-असार-अल्प काल रहेनारुं एवुं विषयादिकनुं सुख, अपि चोर विग्रेयी उत्पन्न थता घणा उपद्रवो, नीच (अधम) लोकोना आक्रोशादिक दुर्वचनो सहन करवां, अने अनिष्ट स्थाने परतंत्रताथी वसन्तुं ए सर्वे दुःखना हेतुओ छे.” २८२.

चारंगरोहवहवंधरोगधणहरणमरणवसणाइँ ।

मणसंतावो अजँसो, विंगोवणया यैं माणुस्से ॥ २८३ ॥

अर्थ—“वली मनुष्यभवमां कोइ पण अपराधने लीघे कारागृहमां रुधन, दंडादिकना मार, रञ्जु शृंखला विग्रेयी वंधन, वात पित्त अने कफथी उत्पन्न थता रोगो, धनसुंहरण, मरण अने व्यसन (कष्ट), तथा मननो संताप (चित्तनो उद्भव), अपयश (अपकीर्ति), अने वीजां पण घणा प्रकारनां विगोपनो (वगोणां) ए सर्वे ज्यां (मनुष्यभवमां) दुःखनां कारणो छे, त्यां (ते मनुष्यभवमां) शुंसुख छे ? कांइज नयी.” २८३.

चिंतांसंतावेहिय, दारिद्र्यरुआहिं दुर्पूर्तज्ञाहिं ।

लध्वैण वि॒ माणुस्सं, मंरंति केवि॑ सुनिविणा ॥ २८४ ॥

अर्थ—“मनुष्यभव पार्माने पण केटलाएक प्राणीओ कुटुंबना भरणपोपणादिकनी चिंताए करीने अने चौरादिकथी उत्पन्न थता संतापे करीने तथा पूर्वभवमां कोरेलां दुष्कर्मोए प्रेरेलां एवां दारिद्र्य (निर्धनपणुं) अने क्षयादिक रोगोए करीने सुनिविण एटले अत्यंत निर्वेद-खेद पाम्हा सत्ता (खेद पार्माने) मरण पामे छे. माटे एवीं रीते चिंतादिके करीने मनुष्यभव निष्फल जवा देवो योग्य नयी; किन्तु अमूल्य मनुष्य जन्म पार्माने धर्म कार्यने विपे उच्चम करवो योग्य छे ए तात्पर्यार्थ छे.” २८४.

हवे देवताओने पण सुख नयी. तें वात कहे छे—

देवाँ वि॑ देवलोए, दिव्वाभरणाणुरंजियसरीरा ।

जं॑ परिविंडंति तैत्तो, तं॑ दुरंक दारुणं तेसिं॑ ॥ २८५ ॥

अर्थ—“देवलोकने विषे दिव्य अलंकारोथी अनुरंजित (अलंकृत-शोभायमान) छे शरीर जेमनां एवा देवो पण जे ते (देवलोक)थी पाढा पडे छे-च्वे छे, एटले

गाथा २८२—वहुर्या । नीचजनाकोशनम् ।

गाथा २८३—चारागनिरोह । चारके कारागृहे रोधे:-निरोधः । अयसो ।

गाथा २८४—रुयाइँ । दारिद्र्यरुग्मः=दारिद्र्यरोगैश्च=दुःखमप्रयुक्ताभिः=दुष्कर्मप्रयुक्ताभिः=रुग्मिभः ।

देवलोकथी चवीने अशुचिथी भरेला एवा गर्भावासमां आवे छे, ते तेओने अति दारुण (दुःसह) दुःख छे; तेथी देवलोकमा पण सुख नथी.” २८५.

तं सुरविमाणविभवं, चिंतियं चर्वणं चै देवलोगाओ।

अङ्गवलियं चियं जं नं वि॑, फुट्टै॒ सयंसकरं हिर्ययं॥२८६॥

अर्थ—“ते (प्रसिद्ध एट्ले अत्यंत अद्भुत) देवलोकना विभवने (ऐश्वर्यने) अने ते देवलोकथकी चवनने मनमां विचारीने (चिंतिय-चिंतयित्वा-विचारीने ए पद्नो घटाळाला एट्ले टोकरीनी वचे रहेली लाला-ना न्याये करीने वब्रे ठेकाणे संवेद करवो). एट्ले के सुरविमाननो वैभव क्यां? अने हवे नीच स्थानमां (मृत्यु-ओकना गर्भावासमां) उपजवूं ए क्यां? एवो विचार करीने तेओतुं हृदय जेथी करीने सो प्रकारे (सेंकडो ककडा थइने) फाटी जतुं नथीज, तेथी करीने अति वळवान—अति कठणज तेमनुं हृदय छे, पण कोमळ नथीः अर्थात् तेमनुं हृदय शतखंड थइ जवूं जोइए. एट्लुं वाहुं तेओने दुःख छे.” २८६.

फरीथी देवगतिना प्रकृष्ट दुःखनुं वर्णन करेछे—

ईसैविसायमयकोहमाणमायालोभेहि एवंमाईहि।

देवा वि॑ सर्मभिभूया, तेसि॑ कर्तो सुंहं नाम ॥ २८७ ॥

अर्थ—“देवो पण ईर्ष्या (परस्पर पत्सर), वीजा देवोए करेला पराभवथी अत्यन्न थेयेलो विपाद, मद (अहंकार), अप्रीतिरूप क्रोध, मान (परना गुणनुं असद्गतपणुं), माया (कापञ्चवृत्ति) अने लोभ (गृद्धि-आसक्ति) ए विग्रेरे चित्तना विकारोर्धी अत्यंत पराभव पामेला होयेचे, तो तेओने पण सुख क्यांथी होय? सुखनुं नाम पण क्यांथी होय? न ज होय.” २८७.

धर्मं पि॑ नाम नाऊण, कीर्सं पुंरिसा संहांति पुंरिसाणं।

सामित्ते संहीणे, को॑ नाम कैरिज दौसत्तं ॥ २८८ ॥

अर्थ—“नाम ए अव्यय प्रसिद्ध अर्थमां छे. एट्ले के दुःखनुं निवारण करवायी अने पोषगृह्णने आपवायी प्रसिद्धिने पामेला एवा धर्मने जाणीने पुण्यो शामाटे धर्मां पुण्योनी आळाने-हुक्कयने सहन करता द्यो? (हुक्कम उठावना द्यो?) केमके

मनुष्य सर्वे समान अवयवोंने धारण करनारा छे. (आज्ञा करनारमां ने आज्ञा उठावनारमां अवयवनों काँइ फेरफार नथी). स्वामीपणुं पोताने स्वाधीन ढतां कयो माणस दासपणुं (अंगीकार) करे? कोइ न करे. एटके बीजानी आज्ञा उठाववानी जेम जो श्रीजिनेश्वरनी आज्ञा उठावे, तो तेओ सर्वतुं स्वामीपणुं पामे तेम छे, माटे जिन प्रहृष्टि धर्मनी आज्ञा मानवी जोइए. ” २८८.

संसारचारण चारण वै, आँबीलियस्स वंथेहि” ।

उंविवग्गो जर्स्स मँणो, सौ किरं आँसन्नसिद्धिपहो ॥ २८९ ॥

अर्थ—“ कारागृहनी जेवा आ चार गतिवाला संसारना भ्रमणमां कर्महृष्य वंधनोए करीने पीडा पामेला (वंधायला) एवा जे पुरुषतुं मन उद्वेग पामेलुं होय, ते पुरुष निश्चे आसन्नसिद्धिपथ (जेने सिद्धिमार्ग नजीकमां रहेलो छे तेवो) जाणवो. आ परिमित संसारतुं (जेना संसारतुं प्रमाण थयुं छे तेतुं) लक्षण छे. ” २८९.

आँसन्नकालभवसिद्धियस्स, जीवस्स लँकखणं इणमो ।

विंसयसुहेसु नं रँज्जइ, सञ्चत्थामेसु उंज्जमइ ॥ २९० ॥

अर्थ—“ जेनी अत्यकाळमांज भवथकी-संसारथकी सिद्धि (मुक्ति) थवानी छे एवा जीषनुं ए लक्षण छे के-तेवो जीव पांच इंद्रियोना शब्दादिक विषयोमां रंजित-आसक्त थतो नथी, अने सञ्च केठो सर्वत्र (तप संयमादिकना अनुप्राप्तनमां) पोतानी सर्व शक्तिवडे उद्यम करे छे. ” २९०. अहीं गाथामां प्राकृत भाषा होवाथी तृतीयाना अर्थमां सप्तमी विभक्ति छे.

हुंज वै नं वै देहबलं, धिंमइसत्तेण जई नं उंज्जमासि ।

आ॒थि॒हि॒सि॒ चि॑रं॑ का॑लं, ब॑लं च॑ का॑लं च॑ सो॑अंतो॒ ॥ २९१ ॥

अर्थ—“ हे शिष्य! देहतुं बळ-शरीरतुं सामर्थ्य होय के न होय, तोण जो तुं धृति (मननी धीरज), मति (पोतानी बुद्धि) अने सत्त्व-साहसवडे करीने (धर्ममां) उद्यम करीश नहीं, तो पाछल्यथी बळने (एटले शरीरतुं सामर्थ्य हाल नथी एम) तथा कालने (एटले आज धर्म करवानो काल नथी एम) शोच करतो (विचार करतो) चिरकाल सुधी संसारमां रहीश-भ्रमण करीश-तारे भ्रमण कर्वे

गाथा २८९—चास्यव्व। आविलीयस्स। चारके इव=कारागारे इव। आँबीलियस्स=आपीडितस्य।

किर=किल। गाथा २९०—इणमो=इदम्। सञ्चत्थामेसु=सर्वस्थान्ना प्राकृतत्वात्तृतीयार्थे सप्तमी।

गाथा २९१—धिङ्गयसत्तेण। अ॒थि॒हि॒सि=आस्थास्थासि। सो॑अंतो॒।

“शोः अर्थात् धर्म नहीं करवाधी तुं पाछलधी घणा काळ सुधी शोक करीश के हवे
जु करूँ ! शरीरमां सामर्थ्य नयी. एम तारे शोक करवानो वस्त आघशे.” २९१.

लैद्धिल्लियं चै बोहिं, अङ्करितो नांगयं चै पौत्रितो ।

अन्नंदाइं बोहिं, लभैसि कंयेण सुल्लेण ॥ २९२ ॥

अर्थ—“हे मूर्ख ! आ भवे प्राप्त करेली बोधिने (जैन धर्मनी प्राप्तिने) नहीं करतो (नहीं आचरतो) अने अनागत एटके आवता भव संबंधी धर्मनी प्राप्तिनी प्रार्थना करतो (इच्छतो) एवो तुं वीजा भवमां ते बोधिने कया मूल्ये करीने पामीश ? अर्थात् आ भवमां तुं धर्मने पाम्या छतां तेनुं आराधन करतो नयी, तो आवता भवमां तुं शी रीते तेने पामीश ?” २९३.

फरीथी धर्मना उद्यमरहित पुरुषोने उपदेश आपे छे—

संधेयण कालवलदूसमारुयालंबणाइं धित्तूणं ।

संबं चिंयं नियंमधुरं, निरुजमाओ पसुचंति ॥ २९३ ॥

अर्थ—“निस्त्रयमी (आलस्यवाला) मनुष्यो संहनन (आजे प्रथमना जेवुं वळ-
वान संयण नयी), काळ (हाल दुष्काळ वर्ते छे), वळ (प्रथमना जेवुं आज वळ
नयी), दुष्पाकाळ (हाल पांचमो आरो वर्ते छे), अने अरुज (आज निरोगपणुं
नयी माटे शी रीते धर्म थइ शके ?) एवी रीतना आलंबनोने ग्रहण करीने (जवाव दइने)
प्राप्त धयेली चारित्र, क्रिया, तप विग्रेरे सर्व नियमनी धूंसरी (भार)ने ‘चिय’ के० नक्की
मूर्झी दे छे. पण तेवुं आलंबन केवुं योग्य नयी. केमके समय प्रमाणे आलस तजीने यथा-
शक्ति धर्ममां उद्यम करवो जोइए.” २९३.

कालस्स यं परिहाणी, संयमजोगाइं नैत्यि खित्तौइं ।

जर्येणाइं वैद्वियव्वं, नैं हुं जर्येणा भंजैए अंगं” ॥ २९४ ॥

अर्थ—“वली ‘दिवसे दिवसे काळनी हानि थती जाय छे, अने संयमने योग्य
तो खंबो पण शालमां रदां नयी; तेयी झुं करवुं ?’” ए. रीतना शिष्यना प्रश्नपर गुरु उत्तर
गाए छे के—यतनावटे एटके यतना पृथिक रर्तवुं. केमके ‘हु’ के० निधे यतना राखवाधी
परियम्पी अंग भांगनुं नयी—चारित्रन्पी अंगनो भंग यसो नयी-विनाश धतो नयी. तेयी
र्तीने यतना एर्वेक यथाशक्ति चारित्रने यिपे उद्यम करन्नो.

सौमिर्द्धिकसायगारवझंदियमयवंभवेगुत्तीसु ।

सज्जनायविणयतवसत्तिओ अै, जर्यणा सुविहियाणं ॥ २९५ ॥

अर्थ—“सारं (शोभन) छे विहित (आचरण) जेमतुं एवा सुविहित साधुओने (साधुओए) इर्यादिक पांच समितिनुं पालन करवुं, क्रोधादिक कपायनो निग्रह करवो, क्रष्णि, रस अने साता ए त्रण गारवतुं निवारण करवुं, इन्द्रियोने वश करवी, जाति विगेरे आठ प्रकारना मदनो त्याग करवो, नव प्रकारनी ब्रह्मचर्यगुप्तिनुं पालन करवुं तथा वाचनादिक पांच प्रकारनो स्वाध्याय करवो, दश प्रकारनो विनय करवो, वायु अने अभ्यंतर भेदे करीने वार प्रकारतुं तप करवुं, तथा पोतानी शक्तिनुं गोपन करवुं नहीं. इत्यादिक यतना करवी जोइए.” २९५.

हवे यतनानुंज निस्तप्त करे छे.

जुंगमित्तंतरदिङ्गी, पैयं पैयं चर्खखुणा विसोहिंतो ।

अैववस्त्रिखत्ताउत्तो, इर्यासमिओ सुँणी होई ॥ २९६ ॥

अर्थ—“युगमात्र (चार हाथ प्रमाण) क्षेत्रनी अंदर दृष्टि राखनार, पगले पगले चक्षुवडे पृथ्वीतुं विशोधन करतो एट्ले सारी रीते अवलोकन करतो, तथा शब्दादिक विषयोमा व्याक्षेपरहित (स्थिर मतवालो) होवायी धर्मव्यानमांज रहेलो एवो मुनि (त्रिकाळने जाणनार) इर्या (गमन) ने विषे समित एट्के सारी रीते उपयोगवालो (इर्यासमितिनुं पालन करनार) कहेवाय छे.” २९६.

कैजे भाँसइ भाँसं, अँणवज्जमकारणे नै भाँसइ यै ।

विंग्हहविसुत्तियपसिवज्जिओ अै जैइ भाँसंणासमिओ ॥ २९७ ॥

अर्थ—“ज्ञानादिक कार्य सते (उपदेशादि-पठनपाठनादि निमित्ते) अनवद्य (निर्दोष) भाषा (वचन) बोले, अने कारण विना बोलेज नहीं, तथा चार विकथा अने विरुद्ध वचन बोलवा (चितवचा) ए करीने वर्जित (रहित) एवो यति भाषा समित एट्ले बोलचामां सावधान कहेवाय छे.” २९७.

बाँयालमेसंणाओ, भोयैणदोसे यै पंचं सोहेइ ।

सौं एसणाईं संमिओ, आँजीवी अन्नंहा होइ ॥ २९८ ॥

गाथा २९५—इंदिथ। गाथा २९६—विसोहिंतो।

गाथा २९७—भाँसइ। विसोत्तिय। विगह। विकथा च विरुद्धवचनजल्पनं च ताम्यां परिवर्जितः।

गाथा २९८—भोयैणदोसे। भोयणादोसे। एसणासांमेओ। एसणाईसमिओ।

अर्थ—“जे वेताळीश प्रकारनी एषणा (आहारना दोष) ने तथा संयोजना विंगेरे पांच प्रकारना भोजनना दोषोने शुद्ध करे छे, एटले तेवा दोषरहित आहार रे रे ते (साधु) एषणा (आहार) ने विषे समित (उपयोगवान) कहेवाय छे, (एषणासमित कहेवाय छे). अन्यथा एटले अशुद्ध अने दोषथी दुष्ट थयेलो आहार ग्रहण करे, तो ते आजीवी-आजीविकाकारी कहेवाय छे, एटले साधुनो वेष गरण करीने तेनावडे आजीविका (उदरनिर्वाह) करनार कहेवाय छे.” २९८.

पुंविं चर्ख्यु पंरिख्यवय, पमंजिउं जो ठंवेइ गिंहङ्ग वाँ ।
आंयाणभंडनिख्यवेवणाइ, संमिओ सुंणी होइँ ॥ २९९ ॥

अर्थ—“जे (मुनि) प्रथम (वस्तु ग्रहण कर्या पहेळा) चक्षुवडे परीक्षा करीने (सारी रीते जोइने) पछी रजोहरणादिकवडे प्रमार्जना करीने (पुंजीने) कोइ पण वस्तु भूमिपर स्थापन करे (मूके) छे, अथवा भूमिपरथी ग्रहण करे छे, ते मुनि आदान (भूमिपरथी वस्तुनुं ग्रहण) अने भांडना (उपकरणना) निक्षेप (पृथ्वीपर स्थापन) ने विषे समित (सावधान) होय छे. अर्थात् यतना (जयणा) पूर्वक कोइ पण वस्तुने ग्रहण करतो अथवा मकतो साधु आदान निक्षेपणासमित कहेवाय छे.” २९९.

उच्चारपासवणखेलजल्सिंघाण ए यै पाँणविही ।

सुँविवेएइ पएँसे, निंसिरंतो होइ तस्समिओ ॥ ३०० ॥

अर्थ—“उच्चार (वडीनीत), प्रस्तवण (लघुनीत), खेल (मुखनो मळ-कफ विंगेरे), जट्ट (शरीरनो मेल); अने सिंघाण (नासिकानो मेळ) तया च शब्दे वीजा पण परिष्टापन करवा योग्य (परठववा योग्य) अशुद्ध भक्तपान विंगेरे-ते सर्वने सुविविक्त एटले त्रसस्थावर जंतुरद्वित एवा सारी रीते शोथेला प्रदेशने विषे परिष्टापन करतो (परठवतो) मुनि ते समितिवालो एटले पारिष्टापनिका समितिवालो दोय रे-कहेवाय छे.” ३००

कोहो माणां माँया, लोभो हासो र्हई यै अर्हई यै ।

सोग्ंगो भैयं दुँगंद्या, पञ्चर्खवकली इँमे सेँवे ॥ ३०१ ॥

अर्थ—“क्रोध (अभीति), पान (वीजाना गुणतुं असहन), माया (क्रपट).

जुगुप्साः ए सर्वे साक्षात् कलि-क्लेशरूप छे. ए दशेने-क्लेशरूप जाणवा.” ३०१.
प्रथम क्रोधना भेद (पर्यायो) कहे छे.

कोहो कलहो खारो, अव॑रुप्परमच्छरो अँणुसओ अ ।

चंडत्तणमणुवसमो, तार्मसभावो अ संतावो ॥ ३०२ ॥

निच्छोडँण निप्प॑ठेण, निर॑णुवत्तित्तणं अँसंवासो ।

क्यनासो अ अँसम्मं, बंध॑इ घण्ठचिकणं १७ कम्मं॥३०३॥ युग्मम्॥

अर्थ—“क्रोध (अपीति मात्र), कलह (वचननी मारामारी), खार (वीजापर दुष्ट आशय राखवो), परस्पर मत्सर (मांहोमांहे मत्सर—अदेखाइ धारण करवी), अनुशय (पश्चात्ताप एठ्ले क्रोध करवायी पाळळवी पश्चात्ताप थाय छे, माटे अनुशय पण क्रोधतुं नाम कहेवाय), चंडत्व (भूकुटि चढाववी-वांकी करवी), अनुपशम (उपशमनो अभाव-शांतपणुं न राखवुं ते), तामस भाव (तमोगुण राखवो ते), अने सन्ताप (ए सर्वे क्रोधना पर्यायो-वीजां नाम छे). ३०२. वळी निश्छोटन (क्रोधथी आत्मातुं मलिन थवुं), निर्भर्त्सन (क्रोधथी वीजानी तर्जना करवी), निरानुवर्तित्व (क्रोधथी वीजानी मरजी प्रमाणे न चालवुं- न वर्तवुं), असंवास (परिचार साथे न रहेवुं-क्रोधथी माणस एकलो विचरे छे, माटे असंवास पण क्रोधनो पर्याय कहेवाय), कृतनाश (कोइए करेला उपकारनो नाश करवो) तथा अशाम्य (समपणानो अभाव), ए सर्वे क्रोधना फलरूप होवायी क्रोधना पर्यायो छे. तेमने विषे वर्ततो जीव गाढ चिकणां (अत्यंत कुडरसवाळां निकाचित) कर्म वांधे छे. माटे क्रोधनो त्याग करवो, ए अहीं तात्पर्यार्थ छे.” ३०३.

हवे मानना पर्यायो कहे छे.—

माणो मर्य॑ हंकाँरो, पर॑परिवाओ अँ अत्तैउक्करिसो।

पर॑परिभवो विर्य॑ तहाँ, परस्सं निंद॑ अँसूआ य॑ ॥ ३०४ ॥

हील॑ निरोव॑यारित्तणं, निर॑वणामया अ॑विणओ अ॑ ।

पर॑णुणपच्छायण्या, जीवं प॑वंति संसारे ॥ ३०५ ॥ युग्मम् ॥

अर्थ—“मान एठ्ले सामान्य रीते अभिमान, मद (जाति विग्रेरेनो उत्कर्ष), अहंकार (अहंता-हुंकार), परनो (अन्यनो) परिवाद (अवर्णवाद—ते पण मानतुं नाम छे), (अ-च) अने आत्मोत्कर्ष (पोतानो उत्कर्ष-आपवडाई, (अ-पिचनो अर्थ समुच्चय-समुदाय रूप छे); तथा परपरिभव (वीजानो पराभव करवो),

गाथा ३०४-असूया । गाथा ३०५-पच्छायण्या । पांडंति ।

पर्निदा (वीजानी निंदा करवी), असूया (वीजाना गुणोने विषे दोषो प्रकट करवा—दोषो आरोप करवो), ३०४. हीला (वीजानी हीन जाति विगेरे प्रकट करीने तेनी हीलना करवी), निरुपकारित्व (कोइनो पण उपकार करवो नहीं ते) निरवनामता (सत्त्व-अकडपणु—अनन्त्रता), अविनय (गुरुने देखी उभा न थवुं, आसन विगेरे न आपवुं ते), अने परगुणप्रच्छादना (वीजाना ज्ञानादिक गुणोनुं आच्छादन करवुं—दोकी देवा ते). आ सर्वे मानरूप अथवा मानना फलरूप होवाथी मानना पर्यायो छे. तेमनुं सेवन करवाथी तेओ प्राणीओने चतुर्गति रूप संसारमां पाडे छे—नांखे छे. माटे तेओ शत्रुनुं काम करनार होवाथी (शत्रुरूप होवाथी) तजवा योग्य छे. ” ३०५.

हवे मायाना पर्यायो कहे छे—

माया कुँडंगि पच्छैन्नपावया, कुँडकवडवंचणया ।

सव्वैत्थअसव्वावो, पैरनिख्वेवावहारो अँ ॥ ३०६ ॥

छल छोम संवईयरो, गृदायारत्तणं मई कूटिला ।

वीसंभैघायणं पियै, भवैक्कोडिसएसु वि नैडंति ॥ ३०७ ॥ युग्मम्

अर्थ—“ माया—सामान्य माया, कुँडंगि ते महागहन (गाढ—निविड माया), प्रच्छन्नपापा ते छानी रीते पापकर्मनुं करवुं, कूड (छड), कपट, वंचनता (मायावडे वीजाने छेतरवुं ते), सर्वे पदार्थोनो असञ्चाव (असत्प्रहपणा) एट्ले होय वीजुं अने कहेवुं वीजुं, परना निक्षेप (न्यास—थापण)नो अपहार (ओळववुं) ते परन्यासापहार, च केठे अने मायावडे परने छले माटे छल पण मायानो पर्याय छे, योप ते छड, संव्यातिकर (पोतानुं कार्य साधवा माटे मायावडे गांडुं वनवुं), गृदाचारित्व (मायावडे गुस विचरवुं), कूटिल (वक) पति, अने विभासवातः ए सर्वे मायाना पर्यायो छे. ते माया सो कोटी संसारने (भवने) विषे पण नडे छे—दुःखदायी थाय छे. अर्थात् मायावडे वाघेलां कर्मो क्रोडोगमे भव थइ गया छतां पण भोगव्यां विना क्षय पापतां नथी. माटे ते तजवी—” ३०६—३०७.

ह्ये लोभना भेदो कहे छे—

लोभो अँडसंचयसिल्या यै, किंलिह्नतणं अँडममत्तं ।

कर्ष्णमपरिभोगो, नर्द्विनद्वे यै आंगल्हं ॥ ३०८ ॥

भुँद्य अङ्गहुंधणलोभया यै, तप्मोवभावणाय यै नैया ।

वोलांति॑ भेदायोरे, अंगमरणगदमसद्वांमि ॥ ३०९ ॥ युग्मम् ॥

अर्थ—“ लोभ-सामान्य लोभ, अतिसंचयशीलता (लोभवडे एक जातनी अथवा घणी जातनी वस्तुओंनो अति संचय करवाना स्वभावपण्), क्लिष्टता (लोभवडे मननी क्लिष्टता-कल्पता), अति ममत्व (वस्तुपर अत्यंत ममता-मारपण्), कल्प्यावनो अपरिभोग (भोगवावा योग्य अन्नादिक वस्तुनो अपरिभोग एट्ले ते न भोगवृं अने कृपणताने लीये खराव अन्नने पण नांखी न देतां खावृं ते), अन्नादिक वस्तुओ नाश पामे छते अने धान्यादिक वस्तुओंनो विनाश थये छते आगलु एट्ले रोगादिक उत्पन्न थवा, ते नष्ट विनष्टाकल्प्य नामनो लोभप्रकार कहेवायछे. ३०८. तथा मूर्ढा (मूढता-धन उपर तीव्राग), अतिवहुधनलोभता (वणा धन उपर अत्यंत लोभपण्) तथा सदा-सर्वदा तद्वावभावना (लोभपणाए करीने मनमां तेज भावनुं वारंवार चित्तवन-करवृं)—ए सर्वे लोभना सामान्य अने विशेष भेदो छे. तेओ संसारी (प्राणी)ने महाघोर (अति भयंकर) जरामरणना प्रवाहस्त्रप महास-मुद्रामां बोले छे—हुवाडे छे—माटे तेवा दारुण लोभनो त्याग करवा योग्य छे.” ३०९.

ऐप्सु जो नै वद्विज्ञा, तेण अप्पा जहंडिओ नाओ।

मणुआण माणिङ्गो, देवाण विं देवयं हुज्जा॥ ३१० ॥

अर्थ—“ए क्रोधादिक कषायोने विषे जे (तत्त्वज्ञ) पुरुष नथी वर्ततो—कषायोने नथी करतो, ते पुरुषे पोताना आत्माने यथास्थित (सत्य-कर्मथी भिन्न-शुद्ध स्वरूप-वाळो) जाणेलो छे एम समजवृं, अने ते पुरुष मनुष्योने माननीय तथा इंद्रादिक देवो-ना पण दैवत रूप (इंद्रोने पण पूज्य) थाय छे.” ३१०

हवे ते कषायोने सर्पादिकनी उपमा आपे छे—

जो भासुरं भुञ्जंगं, पैयंडदाढाविसं विंधद्वैऽ।

तत्त्वौ चिंय तर्ससंतो, रोसंभुञ्जंगोवमाणमिंणं॥ ३११ ॥

अर्थ—“ जे पुरुष भासुर (रौद्र-भयंकर) अने जेनी दाढमां प्रचंड विष रहेलु छे एवा भुञ्जंग (सर्प)नो (लाकडी विग्रेथी) स्पर्श करेछे, तो निश्चे ते सर्पथकीज ते (पुरुष)नो अंत (मरण) थाय छे. आ रौद्र रोष (क्रोध) रूपी भुञ्जंगनुं अहीं उपमान जाणवृं: एट्ले के रोष भुञ्जंगनो पण स्पर्श कर्यां होय तो ते संयम (चारित्र) रूपी जीवितनो नाश करे छे. माटे रौद्र सर्पनी जेमतेनो त्याग करवो.” ३११.

जो आँगलेइ मैत्तं, कयंतकालोवमं वण्णगइंदं।

सी तेर्णं चियं चुज्जइ, मैणगइंदेण इत्थुंवमा॥ ३१२ ॥

गाथा ३११—भुञ्जंग। भासुर=रौद्र। रोसभुञ्जंगो।

गाथा ३१२—आगलेइ=आकर्षयाति—गृह्णाति। वणगयंदं। चुज्जइ। चुज्जइ=चूर्ण्यते—चूर्णांकियते। माणगयंदेण। इथमुपमा।

अर्थ—“जे (अज्ञानी) पुरुष मदोन्मत्त अने कृतांतकाळ (घरणकाळ) नी जेने उपमा छे तेवा अति भयंकर बनना गजेन्द्रनुं आकर्षण करे छे-ग्रहण करे छे. ते मूर्ख पुरुष निश्चे ते बनगजेन्द्रवडे चूर्ण कराय छे, अर्थात् हणाइ जाय छे. ए प्रमाणे अहीं मानने गजेन्द्रनी साथे उपमा जाणवी. एटले के मान रूपी गजेन्द्र पण शमरूपी आलान (वंधन) स्तंभना भंगादिक मोटा अनर्थने करे छे; मोटे तेनो त्याग करवो.” ३१२.

विसर्वलीमहाग्रहणं, जीौ पविसइ साणुवायफरिसविसं ।

सौ ऊचिरेण विणस्सइ, मार्या विसर्वलिग्रहणसमा ॥ ३१३ ॥

अर्थ—“जे पुरुष अनुकूल वायुना स्पर्शीयीज विषवाला (जेना वायुना स्पर्शीयी ज विष चढतुं होय तेवा) विषवलीना मोटा बनमां प्रवेश करे छे ते थोडाज काळमां विनाशने पामे छे. एवी रीते माया पण विषवलीना बन जेवी जाणवी. अर्थात् तेना स्पर्श-संवंधमात्रयीज समाकित चारित्रादि गुण विनाश पामे छे.” ३१३.

घोरे भैयागरे सागरमि, तिमिमगरग्रहपूरंमि ।

जीौ धृविसइ सौ पविसइ, लोभमहासागरे र्भीमे ॥ ३१४ ॥

अर्थ—“जे मनुष्य घोर (रौद्र), भयना स्थानरूप अने मत्स्य, मगर तथा ग्राह विगरे जळजंतुओयी पूर्ण एवा सागरने विषे प्रवेश करे छे ते मनुष्य भयंकर एवा लोभ रूपी महासागरने विषे प्रवेश करे छे. अर्थात् जेम समुद्रमां पेठेलो मनुष्य अनर्थने पामे छे, तेम लोभरूपी समुद्रमां पडेलो माणस पण मोटा अनर्थने पामे छे.” ३१४.

गुणदोसत्रहुविसेसं, पैयं पैयं जाणिऊण तीसेसं ।

दोसेसु ज्ञानो न विरज्जइ °त्ति, कर्माण अहिंगारो ॥ ३१५ ॥

अर्थ—“(मोक्षना देतु रूप ज्ञानादिक) गुणोमां अने (संसारना देतु रूप क्रोधादिक) दोषोमां मोटो विशेष (धृणु अंतर) छे. एम श्रीसर्वशक्तित सिद्धान्त-पांथी पदे पदे निःशेष (समग्र रीते) जाणीने पण मनुष्य (लोक) ग्रोधादिक दोषोमां (दोषो उपर्यी) विरक्त धतो नयी. ए कर्मनोज अभिकार (दोष) छे. अर्थात्

अद्वैटहास केलीकिलत्तणं हासखिंडुं जैमगरुई ।

केदप्पं उर्वहसणं, परेस्स नं केरंति अंणगार ॥ ३१६ ॥

अर्थ—“ अनगार (घर विनाना—गृहस्थात्रमरहित—साधुओ) वीजा माणसं (वीजा साथे) अद्वैटहास्य (खडखड हसवुं), वीजानी क्रीडामां असंबद्ध वचनतुं भाषण (वोलवुं), हास्यवडे वीजाना अंगनो वारंवार स्पर्श करवो (खसकोलीयां—गदगदीय करवां), एक वीजा साथे समकाळे हाथताळीओ देवी, कौतुक करवुं अने उपहास-सामान्य हास्य करवुं, एटलां वानां करता नथी.” ३१६. इति हास्यद्वारं.

हवे रतिद्वार कहे छे—

साहूणं अपैरुई, ससैरीरपलोअणा तंवे अँरई ।

सुंत्थिअवबो अईपहरिसो यै नंत्थि सुंसाहूणं ॥ ३१७ ॥

अर्थ—“ साधुओने आत्मानी रुचि एटले मने शीत, आतप विगेरे न लागे एवी शरीरपर ममतावाली आत्मरुचि, पोताना शरीरने (रुपने) आदर्शादिकमां जोबुं शरीर दुर्वल थइ जशे एम धारी तपस्यामां अरति करवी, हुं वहु सुंदर छुं—सारा वर्णवालो छुं ए प्रमाणे पोतानी प्रशंसा करवी अने लाभ प्राप्त थये अत्यंत हविंत थबुं—आटला रतिना प्रकारो उत्तम साधुओने होता नथी; अर्थात् साधुओए तेवी रति करवी नहीं.” ३१७.

हवे अरतिद्वार कहे छे—

उव्वेवओ अै अरणांमओ अै, अर्मंतिया यै अँरई यै ।

कलंमलो अै अणेंगेग्गया य, कैत्तो सुंविहियाणं ॥ ३१८ ॥

अर्थ—“ सुविहित साधुओने उद्वेग (धर्मसमाधिथी चालित थबुं), पंचेद्रियोना विषयोमां मनतुं अतिशे जबुं, धर्मना विषयमां (धर्मने विषे), मनतुं अरमणणणुं (विमुखपणुं), अरति (अत्यंत चित्तनो उद्वेग), कलमल एटले विषयोमां मननी व्याकुलता (व्यग्रता), तथा अनेकाग्रता एटले मनमां संबंध विनानो विचार करवो के हुं अमुक खाइश, अमुक पीश, अमुक पहेरिश विगेरे. ए सर्वे मनना संकल्पो अरतिना हेतु होवाथी सुविहित साधुओने क्यांथी होय ? ” अर्थात् न होय. ३१८.

हवे शोकद्वार कहे छे:

गाथा ३१६—जमगरुई । हासखिंडु—हास्येन परांगस्य पुनः पुनः स्पर्शनं । केदप्पं ।

गाथा ३१७—साहूणं । अरई । अहपहरिसं च । अतिप्रहर्षः । नंत्थिउ ।

गाथा ३१८—उव्वेवउय । कलमलओ ।

सोगं संतावं अधिइं च, मन्तुं च वैमण्णसं च ।

कारुन्न रुद्धभावं, नै साहूधम्ममि इच्छांति ॥ ३१९ ॥

अर्थ—“ पोताना संवंधीना मरणथी शोक करवो, संताप (अत्यंत उचाट करवो), अवृति (अरे ! हुं श्री रीते आवा गामने अथवा आवा उपाश्रयने छोडी शक्तिश ? एम विचारवुं), मन्तु (इंद्रियोनो रोध अथवा विकलता), वैमनस्य (चित्तनी विकलता एटले के शोकवडे आत्मघातनो विचार करवो), कारुण्य (थोडुं रुदन करवुं), तथा रुद्धभाव ते मोटेथी रुदन करवुं. आ सर्वे शोकना भेदोमांथी एक पण प्रकारने साधुओ इच्छता नयी—करता नयी. ” ३१९.

हवे भयद्वार कहेछे—

भैय संखोह विसाओ, मर्गविभेओ विभीसियाओ अ ।

परमङ्गदंसणाणि र्य, ददध्ममाणि कंओ हुंति ॥ ३२० ॥

अर्थ—“ कातरपणा (वीकणपणा) ए करीने अकस्मात् भय पामवो, संक्षेप एटले चौरादिकने जोइने नासी जवुं, विपाद ते दीनता, मार्गविभेद ते मार्गमां सिंहादिकने जोइने त्रास पामवो, विभीषिका ते वेताळ—भूत विगेरथी त्रास पामवो (आ वे प्रकार जिनकल्पने माटेज जाणवा), तथा भययी अथवा स्वार्ययी परतीर्थिकना मार्गनी प्रस-पणा करवी अथवा वीजाओने भये करी मार्ग देखाइवो. आ सर्वे भयना प्रकारो इड-धर्मवाला साधुओने क्यांथी होय ? ” नज होय. ३२०.

हवे जुगुप्सा द्वार कहे छे—

कुच्छा चिलीणमलसंकडेसु, उद्धवेवओ अणिष्टेसु ।

चर्वयुनियत्तणमसुभेसु, नंतिय दर्ववेसु दंतर्णं ॥ ३२१ ॥

अर्थ—“ अपवित्र मले करीने भरेला एवा (मृत कलेवरो) ने विषे कुत्सा (जुगुप्सा), अनिष्ट एवा मलिन देह अने बस्त्रादिकने विषे (तेनी उपर) उद्देश तथा अशुभ एटले जेनुं कीटाभोग भक्षण कर्यु होय एवा कुत्सा विंगेर पदार्थोने जोइने नंतरीन (दृष्टिजे) पालां याक्षवां. ए सर्वे जुगुप्साना प्रकार दांत (मायूरो) ने होता नयी. ” ३२१.

ऐयंपि नाम नाऊण, मुजिञ्ज्यवर्वंति नूण जीवंस ।
फेडेऊण न तीरइ, अझैलिओ कैमसंघाओ ॥ ३२२ ॥

अर्थ—“नाम (प्रसिद्ध) एट्ले जिनभाषित एवा ते पूर्वे कहेला कषायादिकने जाणीने पण निथे सु जीवने मृढ थवुं योग्य छे ? अर्थात् योग्य नथी. (त्यारे शापाटे जीव मूढ थतो हशे ? तेनो जवाब आपे छे के—) तोपण जीव ते कषायोने दूर करवा शक्तिमान थतो नथी. केपके कर्मसंघात—आठ कर्मनो समुदाय अतिवळवान छे; जेथी ते कर्मने पराधीन थयेलो आ जीव अकार्यनी सन्मुख थाय छे, अकार्य करवा तपर थाय छे.” ३२२.

जैह जैह वहुस्सुओ सम्मओ अँ, सीसंगणसंपरिबुडो अँ ।
अंविणिच्छिओ अँ समए, तैह तैह सिद्धतैपडिणीओ ॥ ३२३ ॥

अर्थ—“जेम जेम वहुश्रुत (घणुं श्रुत जेणे सांभव्युं छे एवो अथवा जेणे घणा श्रुतनो अभ्यास कर्यो छे एवो) थयो, तथा घणा (अज्ञानी) लोकोने संमत (इष्ट) थयो; वली शिष्यना समूहवडे (घणा परिवारवडे) परिषित थयो, तोपण जो ते समय (सिद्धान्त)मां अनिश्चित (रहस्यना ज्ञानरहित) एट्ले अनुभवरहित होय, तो तेम तेम तेने सिद्धान्तनो प्रत्यनीक (शब्द) जाणवो; अर्थात् तत्त्वने जाणनार थोडा श्रुतवालो होय तोपण ते मोक्षमार्गनो आराधक छे; पण वहुश्रुत छां तत्त्वज्ञाण न होय तो ते मोक्षमार्गनो आराधक नथी पण विराधक छे, एम जाणुनु.” ३२३.

हवे क्रदिगारव विषे कहे छे—

पवंराइं वच्छैपायासणोवगरणाइं ऐस विभवो ऐमे ।

अंविय मर्हाजणनेया, अहं तिं अहं इहिंगारविओ ॥ ३२४ ॥

अर्थ—“आ प्रवर (प्रधान) एवां वस्त्रो, पात्रो, आसनो अने उपकरणो विग्रेरे मारो विभव (वैभव) छे. (अपिच-फरीना अथवा समुच्चयना अर्थमां छे). वली हुं महाजन एट्ले प्रधानजनोने विषे नेता (नायक) हुं. महाजननो आगोवान हुं एम विचारनार क्रदिगारववालो कहेवाय छे, अथवा अप्राप्त (नहीं प्राप्त थयेली) क्रदिनी वांछा करनार पण क्रदिगारववालो कहेवाय छे.” ३२४.

हवे रसगारव कहे छे—

अरंसं विर्सं ल्हूँ ह, जहोववन्नं चं निंच्छिए भुत्तूं ।

निंद्धाणि पेसलाणि यं, मैग्गइ रेसगारवे गिंद्धो ॥ ३२५ ॥

अर्थ—“रसगारवने विषे गृद्ध (लोलुप) थयेलो मनुष्य (साधु) भिक्षाने पाए फरतां जेवो प्राप्त थयो तेवो अरस (रस रहित), विरस (जीर्ण थयेलो) अने राख विगेरे रक्ष (लुखो) आहार खावाने इच्छतो नयी; अने स्निग्ध (स्नेहवाला) एट्ले घणा घीवाला तथा पेशल (पुष्टि करनारा) आहारने मागे छे—इच्छे छे. तेवा साधुने रसगारव एट्ले जिहाना रसना गारवमां गृद्ध जाणवो. आ रसगारवनुं सहृप जाणवुं.” ३२५.

हवे सातागारव कहे छे—

सुसूसूसई संरीरं, सैयणासणवाहणापसंगपरो ।

साँयागारवयुरुओ, दुर्खसस नं देई अंप्याणं ॥ ३२६ ॥

अर्थ—“पोताना देहनी शुश्रूपा (स्नानादिकवडे शोभा) करनार तथा शोभ शयन (शश्या) अने आसन (पादपीठ) विगेरेनी कारण विना वाहना (सेवा) नी—भोगववानी आसक्तिमां तत्पर एवो सातागारववडे गुरु (भारे) येलो मनुष्य (साधु) पोतानो आत्मा दुःखने आपतो नयी, एट्ले पोताना आत्माने दुःख देतो नयी.” ते सातागारव जाणवो. ३२६.

हवे इंद्रियद्वार कहे छे—

तवकुलच्छायाभंसो, पंडिच्चपंसणा अणिंदृपहो ।

वस्त्णाणि रण्सुहाणि यं, इंद्रियवसगा अणुहवंति ॥ ३२७ ॥

अर्थ—“वार प्रकारनुं तप, कुल ते पिठुपक्ष अने छाया ते पोताना शरीसनी शोभा ए ब्रणेनो ब्रंश (नाश), पांडित्य (चारुर्य) नी फंसणा ते मन्त्रीनता, अनिष्ट पृथ (पदा संसारमार्ग) नी दृष्टि, अनेक प्रकारनी आपत्ति, परण विगेर व्यसनो (कृष्णे) तथा रणमुख एट्ले संग्रामना मोखरामां पडवुं. एट्ला पदार्थोने इंद्रियने वय परदा पुरुषो अनुभवे छे.” ३२७.

सहेसु नं रंजिला, रैवं दैदुं पुंणो नं इरिवेला ।

गंधे रसे अं फासे, असुच्छिओ उज्जमिज्ज मुणी ॥ ३२८ ॥

पाठ ३२५—मिष्टण् । भाषा । वर्त=दृष्ट=दृश ।

पाठ ३२६—दृश्यमादृश । दुर्खससदृश ।

पाठ ३२७—पृदृशीयता । पृदृशलक्ष्मीदृश । वहरता ।

पाठ ३२८—रंजिला । रंजिला । दैदुपद्म=रेति ।

अर्थ—“ गंधने विषे (कर्पूरादिक सुगंधी द्रव्यने विषे), रसने विषे (शंविगेरे मिष्ठ पदार्थोना आस्वादने विषे) अने सुकोमल शश्यादिकना स्पर्शने विषे न नहीं पामेला मुनिए वीणाना तथा स्त्रीना संगीतना शब्दोमां रंजित (रक्त) थवुं न तथा रूप एटले स्त्री विगेरेना अवयवनी सुंदरता जोइने रागवुद्धियी वारंवार ते सन्मुख जोवुं नहीं, परंतु (धर्मने विषे) उच्चम करवो । ” ३२८.

निहंयाणि हयाणि यै, इंदिआणि घाएँह णं पर्यंतेणं ।

अहिर्यत्थे निहंयाइं, हिंयंकज्जे पूर्यणिज्जाइं ॥ ३२९ ॥

अर्थ—“ साधुओने ईंद्रियोना विषयभूत पदार्थोमां रागद्वेष करवानो अहोवाथी तेमनां ईंद्रियो निहत (हणायेलां) छे, अने ते ईंद्रियोना आकार कायमहोव अने पोतपोताना विषयोने ग्रहण करती होवाथी अहत केंद्र नहीं हणायेलां छे. एकांडक हणायेलां अने कांडक नहीं हणायेलां होय छे. एत्रां ईंद्रियोनो (णं-वाक्य शोभा माटे छे) हे साधुओ ! तमे घात करो एटले प्रयत्नवडे वश करो. ते ईंद्रिय पोतपोताना विषयमां रागद्वेष करवा रूप अहित अर्थमां हणवा योग्य छे, अने सिद्ध तादिक हितकार्यमां पूजवा योग्य एटले रक्षण करवा योग्य छे. ” ३२९.

हवे मदद्वार कहे छे.—

जाईकुलरुवबलसुअतवलाभससिय अड्डमयमत्तो ।

एयाँइं चियं बंधइ, अंसुहाइं बङ्हुं च संसारे ॥ ३३० ॥

अर्थ—“ जे (मनुष्य) जाति ते ब्राह्मणादिक, कुळ ते पोतानो वंश, रूप शरीरनुं सौभाग्य, बळ ते शरीरनुं सामर्थ्य, श्रुत ते शास्त्रनुं ज्ञान, तप ते छट अड्डमादिलाभ ते द्रव्यादिकनी प्राप्ति अने श्री ते ऐश्वर्य-प्रभुता. ए आठ प्रकारना मद (अहंकार थी मत्त थयेलो होय-तेनो गर्व करतो होय ते निश्चे आ संसारमां घणीवार जाति विगेरेज अशुभ बांधेछे. एटले के आ आठमांथी जे जे वस्तुनो गर्व करे ते वस्तुज आवता भवमां हीनतर पामे छे. ” ३३०.

जाईए उत्तमाए, कुँले पहाण्णमि रुवमिससंरियं ।

बलंविजायतवेण र्य, लाभैमएण चं जो खिसे ॥ ३३१ ॥

गाथा ३२९—निहंयाणि हियाणिय । पर्यतेण । घाएह—घातयत—वशीकुरत । अहिर्यत्थे । निहंयाइ

गाथा ३३०—सुय । एयां चियं बंधरे ।

गाथा ३३१—जाईए । विजाइ । खिसेत्=निवत्ति ।

संसारमणवयग्मं, नीरुद्धाणाइ पावैमाणो य ।

भमैइ अङ्गतं कालं, तम्हाओ मैए विवैजिजा ॥ ३३२ ॥ युगमम् ॥

अर्थ—“ने माणस पोतानी उत्तम जातिवडे (मारी जाति उच्ची छे अने तारी जाति नीच छे एवी रीते), प्रधानकुलमां रहो छतो एटले प्रधान (उच्च) कुलवडे, स्त्रवडे, ऐर्वर्यवडे, वक्ल (सामर्थ्य)वडे, विद्या (ज्ञान)वडे, तपवडे अने लाभना पैदे करीने वीजानी स्थिंसा केठ निंदा करे छे. (३३१). ते माणस आ चूर गतिरूप अनंत संसारमां नीच स्थानादिक (हीन जात्यादिक)ने पारीने अनंत काळ सुर्यी भ्रमण करे छे, एटले अनंत संसारनी वृद्धि करे छे. माटे (डाक्का पुरुषे) ते मदो (अहंकारो) ने वर्जवा—तेनो त्याग करवो.” ३३२.

सुडु विं जई जंयंतो, जाईम्याईसु मुज्जई जोउ ।

सी मेअज्जारिसी जंहा, हरिएसवलुवै परिहाई ॥ ३३३ ॥

अर्थ—“जे कोइ यति (साबु) मुष्टु केठ गाढ—अत्यंत यतना करतो छतो पण जाति पदादिकने विपे मोह पामे छे (गर्व करे छे), ते मेतार्य ऋषि (साबु)नी जेम अने हरिकेशीवल साबुनी जेम जात्यादिवडे हीन थाय छे—हीन जातिवालो थाय छे. आ यदे मुनिनी कथा पूर्वे कहेली छे.” ३३३.

द्वे नव प्रकारनी व्रह्मचर्यनी गुसिनु द्वार कहे ले—

इत्थिंपसुसंकिलिछुं, वैसहिं ईत्थीकहं चै वैजंतो ।

इत्थिंजणसंनिसिज्जं, निरुवर्णं अंगुर्वंगाणं ॥ ३३४ ॥

पुञ्चरयाणुसरणं, इत्थीजंणविरहस्तवविलवं चै ।

अइवहुअं अइवहुसो, विवैजंतो अं औहारं ॥ ३३५ ॥

वैजंतो अ विभूमं, जैइज ईह वैभैरयुत्तीसु।

आहू तिंशुतियुतो, निहुओ दंतो पंसेतो अ ॥ ३३६ ॥ विभिविशेषकम् ॥

अर्थ—“पण (मन, दग्ध, कायानी) गुप्ति, कर्मने गुप्त एट्टने मन, दग्ध

अने कायाना योगनो निरोध करनार, निभृत (शांतताथी व्यापाररहित), दांत (इंद्रियोनुं दमन करवामां तत्पर) तथा प्रशांत (क्षयाना वल्ने जीतनार) एवा साधुए स्त्री (मानुषी अथवा देवी) अने पशु (तिर्यचो)ए करीने सहित एवी वसति (उपाश्रय)ने वर्जवी (१), स्त्रीओना वेप अने रूप विगेरेनी कथा वर्जवी (२), स्त्रीजननुं आसन (जे स्थाने ते वेठी होय ते स्थान) वर्जवुं (स्त्रीना उठ्या पछी पण अमुक वखत सुधी ते स्थाने वेसवुं नहीं) (३), स्त्रीओना अंगनुं निरूपण ते निरिक्षण न करवुं (स्त्रीओनां चक्षु, मुख, हृदयादिक अंगोपांगने रागबुद्धिथी जोवां नहीं) (४), ३३४. पर्वरतानुस्मरण के० चारित्र ग्रहण कर्या पहेलां गृहस्थाश्रमपां करेली काम-क्रीडानुं स्मरण वर्जवुं (५), स्त्रीजनना विरहरूप विलापना वचननुं श्रवण रागनो हेतु होवाथी वर्जवुं (६), अति वहु (कंठ सुधी भरीने) आहार वर्जवो (७), अतिवहु प्रकारनो (स्निग्ध, मधुर विगेरे) आहार वर्जवो (८), ३३५. तथा विभूषा (अंगनी शोभा)ने वर्जवी (९). आ नव ब्रह्मचर्यनी गुप्तिने विषे ब्रह्मचर्यना रक्षण माटे यत्न करवो. ” ३३६.

युज्ज्वोरुवयणकर्खतोरुअंतरे तैह थैणंतरे दृङुङ् ।

साँहरइ तैओ दिंहिं, नं बंधई दिर्हिं दिर्हिं ॥ ३३७ ॥

अर्थ—“ साधु पुरुष स्त्रीनुं गुह्यस्थान (स्त्रीचिन्ह), उरु (वे जंघा), वदन (मुख), कक्षा (काख) तथा उरस (हृदय)ना अंतर (मध्यभाग)ने तथा स्तनना अंतरने जोइने ते स्थानोथकी दृष्टिने संहरे छे-दृष्टिने खेंची लेळे, तेमज स्त्रीनी दृष्टि साथे पोतानी दृष्टिने वांधता नथी—मेळवता नथी. अर्थात् कार्यप्रसंगे पण नीचुं मुख राखीनेज स्त्रीनी साथे वात करे छे. ” ३३७.

हवे सातमुं स्वाध्याय द्वार कहे छे—

सज्ज्ञाएण पैसत्थं, झैाणं जार्णई यं संव्वपरमत्थं ।

सज्ज्ञाए वट्टुंतो, खंणे खंणे जार्णई वेरंगं ॥ ३३८ ॥

अर्थ—“ वाचनादिक पांच प्रकारना स्वाध्याये करीने प्रशस्त (भव्य) ध्यान (धर्मध्यानादिक) थाय छे, अने सर्व परमार्थ (वस्तुस्वरूप)ने जाणेछे. तेमज स्वाध्यायमां वर्तता मुनिने क्षणे क्षणे वैराग्य प्राप्त थाय छे; अर्थात् रागद्वेष रूप विष दूर थवाथी निर्विष थाय छे. ” ३३८.

उहैमहतिरियलोए, जोइसवेमाणिया यैं सिँझी यैं ।
सञ्चो लोर्गालोगो, सञ्ज्ञायविडस्स पञ्चख्वाहो ॥ ३३९ ॥

अर्थ—“ स्वाध्याय (सिद्धान्त)ने जाणनार एवा मुनिने ऊर्वलोक, अधोलोक ने तिर्यग्लोक—ए त्रणे कोकतुं स्वरूप, चंद्र सूर्यादि ज्योतिष्क, वैमानिकना निवास अने सिद्धिस्थान (मोक्ष), ए सर्व लोकालोकतुं स्वरूप प्रत्यक्ष हे. चौद रज्जु प्रमाण लोक अने तेथी भिन्न अपरिमित अलोक. तेतुं स्वरूप स्वाध्यायने वळे मुनि जाणे हे. ” ३३९.

जो निंचकाल तवैसंजमुज्जओ, नैं विं कैरेइ सञ्ज्ञायं ।

अलंसं सुहैसीलजणं, नैं विं^३ तं ठंविइ सौहुपए ॥ ३४० ॥

अर्थ—“ जे सायु निरंतर तप तथा पांच आश्रवना निरोध रूप संयमने विषे उद्यमवान छतां पण अध्ययन अव्यापन रूप स्वाध्याय न करे—स्वाध्यायने विषे उद्यम न करे, तो ते आळसु अने मुहशील (मुखमां लेपट) मुनिने लोको सायु मार्गमां स्थापन करता नयी—सायु तरीके गणता नयी. कारण के ज्ञान अने क्रिया ए वज्रे वडेज मोक्ष हे तेथी ते वंनेनुं आराधन करुं जोइए. ” ३४०. सातमुं स्वाध्यायद्वार कयुं, हवे आठमुं विनयद्वार कहे हे—

विंणओ सासणे मूलं, विंणीओ संजओ भैवे ।

विंण्याओ विष्पमुक्कस्स, कैंओ धंमो कैंओ तंवो ॥ ३४१ ॥

अर्थ—“ विनय ए शासन एट्टले जिनभाषित द्वादशांगीने विषे (द्वादशांगीतुं) मूळ हे. विनयवालो सायु ज सायु थाय हे (कहेवाय हे). विनयथी विषमुक्त—रदित (भ्रष्ट थयेका) ने थर्म क्यांयी अने तप (पण) क्यांयी होय ? अर्यान् विनय विना थर्म अने तप वंने होतां नपी. ” ३४१.

विंणओ आैवहइ सिंरि, लहइ विंणीओ जँसं चैं किंति चैं ।

नैं कैंयाइ दुंचिंणीओ, सकैंजसिंद्धि सैंमाणेइ ॥ ३४२ ॥

अर्थ—“ विनय थाय अने आन्यन्तर लक्ष्मीने प्राप्त करे हे. विनयद्वान पुण्य यज (परे दिशामां च्याप थनारं) अने कीति (पक्ष दिशामां प्रसरनारी)ने पामे हे.

दुर्विनीति (विनय रहित) पुरुष पोताना कार्यनी सिद्धिने कदापि पापतो नर्थी. अवि नीतनी कार्यसिद्धि थती नर्थी.” ३४२.

विनयद्वार कहुँ. हवे तपतुं द्वार कहे छे—

जैह जैह खैमइ सैरीरं, धुवैजोगा जहैं जहा नै हाँयंति ।

कर्मैकर्वओ अैं विउलो, विवित्तया इंदियैदमो अै ॥ ३४३ ॥

अर्थ—“ जेम जेम (जेवी रीते) शरीर सहन करे (बलहीन न थाय) अने जेम जेम ध्रुवयोग एट्ले प्रतिलेखना (पडिलेहणा) प्रतिक्रमण विभेरे नित्य योगो (क्रियाओ) हीन न थाय (करी शकाय), ए प्रमाणे तप करवो. तेवी रीते तप करवाथी विपुल (विस्तारवाळा) कर्मनो क्षय थाय छे, तथा विविक्तताए करीने एट्ले ‘आ जीव देहथी भिन्न छे अने आ देह जीवथी भिन्न छे’ एवी भावनाए करीने इन्द्रियोंतुं दमन पण थाय छे ” ३४३.

जैइ ताँ असैकणिज्जं, नै तर्सि काऊण तौ ईमं कीसै ।

अर्पायत्तं नैं कुण्सि, संजर्मंजयणं जैइजोगं ॥ ३४४ ॥

अर्थ—“ जो कदाच हे शिष्य ! अशक्य एवी साधुप्रतिमा तपस्यादिक क्रिया करवाने तुं शक्तिमान न होय, तो हे जीव ! आ आत्माने स्वाधीन अने साधुजनने योग्य एवी संयम यतनाने (पूर्व कहेला क्रोधादिकना जयने) केम करतो नर्थी ? अर्थात् तपस्या करवानी शक्ति न होय तो क्रोधादिकनो जय करवामां यत्न कर.” ३४४.

॥ इति तपोद्घारम् ॥

जौयंमि देहसंदेहयंमि, जयेणाए किंचिं सेविज्ञा ।

अैह पूण सज्जो अ निरुज्जमो अ, तौ संज्मो कैक्तो ॥ ३४५ ॥

अर्थ—“ साधुए देहने विषे संदेह एट्ले महारोगादिक कष्ट उत्पन्न थाय त्यारे यतनावडे (सिद्धांतनी आज्ञा पूर्वक) कांइक (सावद्य-अशुद्ध आहारादिक) सेवन करवुं. पण पछीथी ज्यारे सज्ज (नीरोगी) थाय त्यारे पण जो ते (साधु) निरुद्यमी थाय, एट्ले शुद्ध आहारादिक लेवामां उद्योग न करे अने अशुद्धज ग्रहण करे, तो तेनुं संयम शी रीते कहेवाय ? नज कहेवाय. केमके आज्ञा विरुद्ध आचरण करवाथी तेनुं संयम कहेवाय नहीं.” ३४५.

गाथा ३४३—जहा जहा । विवत्तया । गाथा ३४४—यदि तावत् । जैइजगं ।

गाथा ३४५—जयेणाइ ।

माँ कुण्ड जई तिगीच्छे, आहियासेऊण जई तरङ्ग सम्मं ।

आहियासिंतस्स पुणो, जई से जोगा नं हीयंति ॥ ३४६ ॥

अर्थ—“ जो (साधु) ते रोगोने सारी रीते सहन करवाने समर्थ होय, तथा जो रोगने सहन करता एवा ते साधुना जोगो (प्रतिक्रेखनादिक क्रियाओ) हीन न थाय तो यतिए चिकित्सा (रोगनी प्रतिक्रिया—औषध) न करवी; अर्थात् जो संयमनी क्रियाओ रोगने कीधे सीदाती होय—चिथिल थती होय तो चिकित्सा करवी.” ३४६.

निंचं पवयंणसोहाकरण, चरणुज्जुआण साहूणं ।

संविंगगविहारीणं, सव्वंपयत्तेण कायव्वं ॥ ३४७ ॥

अर्थ—“ नित्य प्रवचननी (जिनशासननी) शोभा (प्रभावना) करनारा, चारित्रने विषे उद्यम करनारा अने संविश एटले मोक्षनी अभिलापावडे विहार करवाना स्वभाववाला एवा साधुओंनुं सर्व प्रयत्न (शक्ति)वडे वैयावच करवुं.” ३४७.

हीणस्सं विसुद्धपरुवगस्स, नाणाहियस्स कायव्वं ।

जणांचित्तगहणत्थं, करिंति लिंगार्वसेसे विं ॥ ३४८ ॥

अर्थ—“ विशुद्ध प्रस्तुपण करनार अने ज्ञान (सिद्धान्तना ज्ञान)धी अधिक (संपूर्ण) एवा हीनतुं पण एटले शिथिलाचारीनुं पण वैयावृत्त्य करवुं; अर्थात् क्रियाहीन छतां पण जो ज्ञानी होय तो तेनुं वैयावृत्त्य करवुं उचित छे. वली जनना (लोकना) चित्तने ग्रहण (रंजन) करवा माटे एटले के ‘आ लोकोने धन्य छे के तेओ गुणवान छतां पण उपकाराद्विधिथी निर्गुणतुं पण वैयावृत्त्य करे छे.’ एवी रीते लोकना चित्तने प्रसन्न करवा माटे मात्र लिंगधारीने विषे पण वैयावृत्त्य करे छे; अर्थात् लोकापवाद्वतुं निवारण करवा माटे ज्ञान अने क्रियाधी दीन एवा वैपथारीनुं पण वैयावृत्त्य करवुं.” ३४८

समिद् कसायगारव० इत्यादि २६५ भी गाथानो विस्तारार्थ केलो. द्वे लिंगधारीनुं स्वरूप करे छे-

दर्गपाणं पैफफलं, अणेमणिजं गिंहत्यकिचादं ।

अजया पठिनेवंती, जईविसविडंवगा नैवरं ॥ ३४९ ॥

अर्थ—“ असंयमीओ (शिथिलाचारीओ) सचित् जलनुं पान, जात्यादिक पुष्पो, आग्रादिकनां फळो, अणेसणीय (आधाकर्मादि दोषवालो) आहारादिक, तथा व्यापारादिक श्रावकनां कायोंने करे छे, संयमने प्रतिकूळ आचरण आचरे छे, तेओ केवळ यतिवेषनी विडंबना करनाराज छे, परंतु अल्प पण परमार्थना साधक नथी. ” ३४९.

ओसंब्रया अँबोही, पवँयणउभावणा यै बोहिफळं ।

ओसंब्रो विर्वं पिहुँ—पवयणउभावणापरमो ॥ ३५० ॥

अर्थ—“ तेवा उपर कहेला भ्रष्ट चारित्रवालानी अवसन्नता के० पराभव थाय छे, तथा तेमने अबोधि एटले धर्मनी प्राप्तिनो अभाव थाय छे. केमके प्रवचन (शासन) नी उद्भावना—प्रभावनानी दृष्टि करवाथीज बोधिरूप फळनी प्राप्ति थाय छे; प्रवचननी हीळना करवाथी बोधिलाभ थतो नथी. परंतु पृथु (विस्तारवाली) प्रवचननी उद्भावना (शोभा)ने विषे तत्पर रहेतो एवो अवसन्नो एटले शिथिलाचारी पण श्रेष्ठ जाणवो; अर्थात् व्याख्यान विग्रेथी शासननी प्रभावना करनार शिथिलाचारी पण श्रेष्ठ जाणवो. ” ३५०.

युणहीणो युणैर्यणायरेसु, जौ कुणइ तुर्लमप्पाण ।

सुर्तवास्सिणो अँ हीलङ्ग, सम्मत्तं कोमलं तस्सं ॥ ३५१ ॥

अर्थ—“ जे चारित्रादिक गुणे करीने हीन एवा साधु गुणना समुद्र रूप साधु-ओनी साथे पोताना आत्माने तुल्य करे छे. एटले ‘ अमे पण साधु छीए ’ एम माने छे, तथा जे सारा तपस्वीओनी हीळना करे छे ते पुरुषनुं (भ्रष्टाचारी साधुनुं) समकित कोमल—असार छे. अर्थात् तेने मिथ्यादृष्टि जाणवो.” ३५१.

ओसंब्रसस गिंहिस्स वै, जिणपवयणतिव्वभावियमइस्स ।

कीर्ङ्ग जैं अण्वज्जं, दढँसम्मत्तस्स वर्त्थासु ॥ ३५२ ॥

अर्थ—“ जिनेश्वरना प्रवचन (सिद्धान्त धर्म) वडे जेनी मति भावित (रक्त) थयेली छे; अर्थात् जे जिनधर्मना रागमां रक्त थयेलो छे, तथा जे हृद समकितवालो एटले दर्शनमां निश्चल छे, एवा अवसन्न (पासत्थादिक) नुं अथवा गृहस्थीनुं क्षेत्र कालादिक अवस्थाने विषे (क्षेत्र कालादिक जोइने) जे वैयावृत्त्यादिक करवामां आवे ते अनवद्य-निष्पाप एटले दूषणरहित छे. ” ३५२.

गाथा ३५०—अवसन्नता=पराभवः ।

गाथा ३५१—कोमर्ल=असारं ।

गाथा ३५२—गिहस्स । भावियमयस्त ।

पांसत्थोसन्नकुसीलनीयसंसक्तजणमहाच्छुंदं ।

नौजण तं सुविहिया, सब्वैपयत्तेण वैज्ञंति ॥ ३५३ ॥

अर्थ—“ पार्वत्य (ज्ञान, दर्शन अने चारित्रनी पासे रहेनार—तेने नहीं सेवनार पासव्या), अवसन्न (चारित्रने विषे शिथिलाचारी), कुशील (साधुना शील—आचार रहित), नीच (अविनयवडे भणवाथी ज्ञाननो विरायक), संसक्तजन (ज्यां जेवो—जेनो संग मळे त्यां—तेनी संगतिथी तेवो धाय, ते संसक्त कहेवाय छे), तथा यथाच्छुंद (पोतानी मतिथी उत्सूत्रनी प्रस्तुपणादि करनार) एवा ते पार्वत्यादिकने जाणीने (तेमना स्वस्तुपने जाणीने) सुविहित साधुओ ते पार्वत्यादिकनो सर्व प्रयत्न (शक्ति) वडे त्याग करे छे; अर्थात् तेओ चारित्रना विनाश करनार होवाथी तेओनो संग करता नयी. ” ३५३. हवे पार्वत्यादिकनां लक्षणो कहे छे—

वायालमेसणाओ, न रखैवइ धाँडिसिजपिंडं चै ।

आँहारेइ अभिंख्वं, विर्गांडो संनिहिं खैंडि ॥ ३५४ ॥

अर्थ—“ जे वेताळीश एपणा—आहारना दोपोतुं रक्षण करता नयी, अर्थात् वेताळीश दोपरहित आहार लेता नयी, धात्रीपिंड (छोकरां स्माडवाथी आहार मळे ते) निवारता नयी तथा शश्यातरपिंड ग्रहण करेले; वळी जे कारण विना निरंतर (वारंवार) दूध दर्ही थी विगेरे विकृतितुं भक्षण करे छे तथा जे रात्रिए खाय छे अथवा कावीने रात्रिए रात्री मुकेळी वस्तुतुं दिवसे भक्षण करे छे, (ते पार्वत्य कहे-वाय छे.) ३५४.

सूर्यपमाणभोजी, आँहारेइ अभिंख्कमाँहारं ।

न यं मंडलीइं सुंजइ, न यं भिंख्वं हिंडै अलैसो ॥ ३५५ ॥

अर्थ—“ वळी जे सूर्यपमाण एट्ले सूर्योदयथी मांठीने सूर्यास्त सूर्थी खावाना स्थिपाववालो छे एट्ले आखो दिवस खागवा करनारो छे, जे वारंवार आटार करे छे—खाय छे, अने जे साधुनी मंटलीमां (साधे) वेसीने भोजन करनो नयी, एट्ले पक्कोज भोजन करे छे, तथा आलगु पांचो जे भिलाने पाटे अट्टन करनो नयी, एट्ले योंटे योरपी पणो आहार गरण करे छे. ” ३५५.

कीवो नै कुण्डि लोअं, लज्जई पंडिमाइ जल्लमर्वणेइ ।
सोवैंहणो अं हिंडैइ, बंधैइ कडिपैटूमकंजे ॥ ३५६ ॥

अर्थ—“वळी क्लीब के० कायर एवो जे लोच करतो नथी, कायोत्सर्ग करता जे लज्जा पामे छे, शरीरना मेलने जे हाथवडे अथवा जळवडे दूर करे छे, तथा जे उपान (जोडा) सहित चाले छे, अनेजे कार्य विना केडे चोलपट्टो वांधे छे.” ३५६.
गामं देसं चै कुलं, मैमाए पीठफलग्नपडिवद्धो ।

घरैसरणेसु पर्सज्जइ, विहरइ यं सकिंचंणो रिको^{११} ॥ ३५७ ॥

अर्थ—“वळी ते पासत्यादिक गाम, देश अने कुळने विषे ममताए करीने विचर छे; एटले आ गाम, आ देश, आ कुळ विगेरे मारां छे एवी ममता राखे छे. पीठफल-कने विषे प्रतिवद्ध एटले वर्षाक्रतु विना पण पीठ फलकादिकनो उपयोग करे छे—ग्रहण करे छे. घरो (उपाश्रयादिक) नवां कराववानो प्रसंग राखे छे, एटले तेनी चिंता धरावे छे, अने सुवर्णादिक द्रव्यनो परिग्रह पासे छतां पण हुं रिक्त (द्रव्यरहित) छुं—निर्ग्रिय छुं, एम लोको पासे बोलतो विहार करे छे—विचरे छे—फरे छे.” ३५७.

नैहदंतकेसरोमे, जैमेइ अँच्छोलधोअणो अँजओ ।

वैहेइ यं पलियंकं, अँइरेगपमाणमच्छुरइ ॥ ३५८ ॥

अर्थ—“नख, दांत, (मस्तकना) केश अने शरीरना रोमनी शोभा करे छे, घणा जल्धी हस्तपादादिक धूए छे अने यतनारहित वर्ते छे, शृहस्थीनी जेम पल्यका-दिक वापरेछे तथा अधिक प्रमाणवाला (प्रमाणथी अधिक एवा उत्तरपट्टादिक) संथाराने पाथरे छे—एटले सुखशश्या करे छे.” ३५८.

सोवैइ यं सँव्वराइ, नीसँडूमचेयैणो नै वाँझरई ।

नै पर्मजंतो पंविसइ, निसिहियावसिसयं नै कैरेइ ॥ ३५९ ॥

अर्थ—“वळी काष्ठनी जेम निभृत (अत्यंत) चेतनारहित एवो ते (पार्व-स्थादिक) आखी रात्रि (चारे प्रहर) सुइ रहे छे. रात्रिए गणना विगेरे स्वाध्याय

गाथा ३५६ मुवण्डे। सोवाहणोवि। कडिपट्टयमकजे। सोपानत्=पादरक्षणसहितः।

गाथा ३५७—ममायए। विहरई।

गाथा ३५८—उच्चाक। जैमेइ=भूषयति। अस्तोकजलेन धावनं प्रक्षालनं चस्य सः। वाहेइ। अच्छुरइ=आस्तरति।

गाथा ३५९—सोवैइ=स्वपिति। नीसहं=निश्चेष्टः। वाँझरई=स्वाध्यायं करोति।

करतो नयीः रात्रे रजोहरणादिक वहे प्रमार्जन कर्या विना उपाश्रयने विषे प्रवेश करे छे,
तथा प्रवेशसमये नैषेधिकी अने निर्गमन वरखते आवश्यकी इत्यादि सातुं सामाचारीने
करतो नयी। ” ३६९.

पाँय पैहे नै पैमज्जाइ, जुगमार्याए नै सोहए ईरियं ।

पुंटवीदगअगणिमारुअवणस्सइतसेसु निरविख्वो ॥ ३६० ॥

अर्थ—“ मार्गमां जतां, गामनी सीमामां प्रवेश करतां अथवा नीकळतां पादरुं
प्रमार्जन करतो नयी। युगमात्र (युगप्रमाण—चार हाथ)भूमिने विषे ईर्यानी शुद्धि करतो
चालतो नयी। पृथ्वीकाय, अप्काय, अग्निकाय, वायुकाय, वनस्पतिकाय अने त्रसकाय
ए छ जीवनिकायने विषे निरपेक्ष (अपेक्षा रहित) रहे छे; अर्थात् तेओनी विरायना करतां
गंका पापतो नयी। ” ३६०.

संब्वं थोवं उवैहिं, नै पेहए नै यै करेइ संज्ञायं ।

संहंकरो झंझंकरो, लहुओ गणभेयतत्तिल्लो ॥ ३६१ ॥

अर्थ—“ सर्वथी अल्प एवी उपधि (मुखवस्त्रिकामात्र) नी पण प्रतिलेखना करतो
यी, अने वाचनादिक स्वाध्याय करतो नयी। रात्रिए मोटेथी शब्द करे छे। वीजाओ
गाये कलह करे छे। तोछडाइ राखे छे एटले गंभीरतानो गुण राखतो नयी, तथा गण
टुके संघाडानो भेद करवामां—अंदर अंदर कुसंप करावामां तत्पर रहे छे। ” ३६१.

सिंत्ताईयं भुंजैइ, काँलाईयं तैहेव अँविदिन्नं ।

गिंहई अण्णैयसूरे, अस्णाई अहव उवंगरणं ॥ ३६२ ॥

अर्थ—“ क्षेत्रातीत (वे कोशथी वथारे दूर क्षेत्रयी आणेलो आदारादिक) खाय छे,
शालातीत (त्रण प्रहर करतां अधिक काळनो लावेलो आदारादिक खाय छे, तथा अदत्त
(नहीं आपेला आदारादि) नो उपभोग करे छे। वळी मृयोदय पढेलां अदानादिक
(चार मकारनो आदार) अथवा उपकरणोने (वस्त्रादिकने) ग्रहण करे छे। आदा
मकारना सातुं पासन्यादिक कहेवाय छे। ” ३६२.

टैवणकुले नै टैवैइ, पासत्येहि चैं संगयं कुणैइ ।

निंचमवैज्ञाणरओ, नै धैं पैहपमजणोसीलो ॥ ३६३ ॥

अर्थ—“ स्थापना कुळनुं एटले वृद्ध, उलान विगोरेनी अत्यंत भक्ति करनारा श्रावकना गृहोनुं रक्षण करतो नथी. एटले के कारण विना पण तेमने घेर आहार लेवा जाय छे. वळी भ्रष्टाचारीओ साथे संगति (दोस्ती) करे छे. निरंतर अपध्यान (दुष्ट ध्यान) मां तत्पर रहे छे; तथा प्रेक्षा (वृष्टिथी जोडिने वस्तु ग्रहण करवी ते) अने प्रमार्जना (रजोहरणादिक वडे प्रमार्जन करीने—पुंजीने वस्तु भूमिपर मूकवी ते) करवाना स्वभाववालो होतो नथी. ” ३६३.

रीयङ्ग दैवदवाण, मूढो परिर्भवङ्ग तैहय रायणिए ।

परंपरिवायं गिर्जङ्ग, निङुरभासी विंगंहसीलो ॥ ३६४ ॥

अर्थ—“ वळी उतावळथी (उपयोग विना) चाले छे, तथा मूर्ख एवो ते ज्ञानादिक गुणस्त्वाथी अधिक एवा दृद्धोनो पराभव करे छे, एटले तेथोनी साथे स्पर्धा कर छे. परनो परिवाद (अवर्णवाद) ग्रहण करे छे—परनी निंदा करे छे; निष्ठुर (कठोर) भाषण करे छे; अने राजकथादिक विकथाओ करवाना स्वभाववालो होय छे—विकथा करे छे.” ३६४.

विंजं मंतं जौगं, तेगिंच्छं कुणङ्ग भूङ्गकम्मं च ।

अर्खवरनिमित्तजीवी, आरंभपरिग्हे रँमङ्ग ॥ ३६५ ॥

अर्थ—“ देवीअधिष्ठित ते विद्या, देवअधिष्ठित ते मंत्र, अदृश्य करणादिक योग, रोगनी प्रतिक्रिया (ओषध प्रयोग) अने भूतिकर्म (राख विगोरे मंत्रीने गृहस्थीने आपवानुं कर्म) करे छे. अक्षर (लेखकोने अक्षरविद्या आपवी ते) तथा निमित्त (शुभा-शुभ क्लभवलादिकना प्रकाश करवा) वडे आजीविका करनार एवो ते आरंभ (पृथ्वीकायादिकना उपर्युक्त) अने अधिक उपकरणना संचयरूप परिग्रह तेने विषे रमे छे—आसक्त रहे छे.” ३६५

कंज्जेण विणा उगङ्गहमणुंजाणावैइ दिंवसओ सुअङ्ग ।

ॐजियलाभं सुर्जङ्ग, इत्यनिसिज्जासु ऊँभिरमङ्ग ॥ ३६६ ॥

अर्थ—“ कार्य विना (निर्थक) गृहस्थोने रहेवा माटे अवग्रह भूमिनी अनुज्ञा करे छे—मागे छे. दिवसे शयन करे छे. आर्यिकाना लाभने (साधवीए लावेला आहा-

गाथा ३६४—रीर्हाईय=गच्छति च ।

गाथा ३६५—तेगिच्छं—रोगप्रतिक्रियां ।

गाथा ३६५—सुयङ्ग ।

इच्छावालो ते (पासथ्यादिक) सांवत्सरिक पर्वे अष्टम, चातुर्मासीए छह अने पक्ष (चतुर्दशी)ने दिवसे चतुर्थ (उपवास) तप करतो नथी, तथा चातुर्मास शिवाय शेष काळे क्षेत्रो छतां पण मासकल्पनी मर्यादा प्रमाणे विहार करतो नथी. ” ३७०.

नीयं गिंङ्गि पिंडं, एगाँगि अत्थंए गिंहत्थकहो ।

पावैँसुआणि अहिज्जइ, आँहिगारो लोँगगहणंमि ॥ ३७१ ॥

अर्थ—“ नित्य एटले अमुक घेरथी आटलो आहार लेवो एम निंयमित रीते पिंड (आहार) ग्रहण करे छे, एकाकी (एकलो) रहे छे, पण समुदायमां रहेतो नथी. गृहस्थोनी कथा (प्रदृष्टि) जेने विषे होय एवी वातो करे छे, पापशास्त्रो (ज्योतिप तथा वैदक विग्रे)नो अभ्यास करे छे तथा लोकोने रंजन (वश) करवा माटे लोकोना मनमां अधिकार करे छे, एटले तेमनी वातोमां मोटाइपद धारण करी मुख्यता मेळवे छे, परंतु पोतानी संयमक्रियाना अधिकारी थता नथी. ” ३७१.

परिम्बवइ उगगाँकारी, सुँधं मग्गं निँगूहए बालो ।

विँहंरइ सायाँगुरुओ, संज्ञमविगलेसु खिंतेसु ॥ ३७२ ॥

अर्थ—“ वाळक (मूर्ख) एवा ते पासथ्यादि उग्रकारीनो एटले उग्र विहार करनार मुनिओनो पराभव करे छे (तेओने उपद्रव करे छे). शुद्ध एवा मोक्षमार्गनुं आच्छादन करे छे—गोपवे छे. अने साता (सुख) ने विषे गुरुक (लंपट) एवो ते संयमथी विकल एटले सारा साधुओरी रहित एवा क्षेत्रोने विषे विहार करे छे. ” ३७२.

उगगाइ गाइ हसई, असंबुडो सई करइ कंदपं ।

गिंहिकज्जचिंतगो विर्य, ओसंब्रे देईं गिंङ्गि वाँ ॥ ३७३ ॥

अर्थ—“ असंवृत एटले मुखने पहोळुं करीने मोटा शब्दवडे गायन करे छे अने हसे छे. हमेशां कंदपं एटले कामने उत्पन्न करे तेवी कथाओ करे छे. वली ते गृहस्थीओना कार्यनी चिंता (विचार) करे छे, तथा अवसन्न (भ्रष्टाचारी)ने वक्षादिक आपे छे अथवा तेनी पासेथी ग्रहण करे छे. ” ३७३.

धम्मंकहाओ अहिज्जइ, घराँघरं भर्मइ परिकहंतो अँ ।

अर्थ—“ धर्मनी कथाओने लोकना चित्ततुं रंजन करवा माटे भणे छे, अने ते धर्मकथाओने कोहतो छतो भिक्षाने माटे घेर घेर अटन करे छे—भमे छे; तथा गणना (गणतरी) एटले साधुओने चौद अने साध्वीओने पचीश कल्पक चोलपट्ट विगेरे उप-करणोनी गणना (संख्या) कहेली छे, तथा दरेकतुं प्रमाण कहेलुं छे. ते संख्या अने प्रमाणयी अधिक संख्या अने प्रमाणवालां उपकरणोने धारण करे छे—राखे छे. ” ३७४.

वारस वारस तिन्नि यैं, काइयउँचारकाँलभूमीओ ।

अंतो वैहिं चं अहियासि, अणाहियासे नैं पडिल्लेहे ॥३७५॥

अर्थ—“ वार लघुनीतिनी भूमि, वार वडीनीतिनी भूमि अने त्रण काळग्रहणने योग्य भूमि; एम उपाश्रयनी अंदर अने बहार मल्लीने सतावीश स्थंडिल भूमिओ छे. तेमां जो शक्ति होय तो दूर जवुं योग्य छे, अने दूर जवानी शक्ति न होय तो—खमी शक्ते तेम न होय तो समीप (नजीक)नी भूमि योग्य छे. तेवीं भूमिने पडिल्लेहे नहीं—उपयोग पूर्वक जुए नहीं तेने पासत्यादिक जाणवा. ” ३७५.

गीर्यत्यं संविग्गं, आयरिअं सुअइ वर्लङ्ग गच्छस्तं ।

गुरुणो यैं अणांपुच्छा, जं किंचि वि॑ देइ गिल्लङ्ग वैं ॥३७६॥

अर्थ—“ गीतार्य (सूत्रार्थना जाणनार) अने संविग्म (मोक्षमार्गना अभिभाषी) एवा आचार्य (पोताना धर्माचार्य)ने कारण विना मूकी देढे—तजे छे. गच्छनी सामो धाय छे एटके समुदायने शीखामण आपता एवा गच्छ (समुदाय)-नी—आचार्यनी सामे उत्तर आपे छे—सासुं बोले छे; तथा गुरुनी आज्ञा विना जे शंइ पण वस्तु (वस्त्र विगेरे) वीजाने आपे छे अथवा पोते वीजा पासेयी शृण करे छे. ” ३७६.

गुरुंपरिभोगं सुंजइ, सिंजासंथारउवकरणजायं ।

किंत्तिय रुमं तिं भासई, अविणीओ गंविओ लुँझो ॥३७७॥

अर्थ—“ गुरुने उपभोग करवा लायक एवी अथवा गुरु वापरता होय ते शब्द्या (श्यनभूमि), संस्तारक (त्रुण विगेरेनो संधारो) तथा कपडां कांवली विगेरे उप-करणोना समूहने पोते भोगवे छे—पोते वापरे छे; तथा गुरुए बोलान्यो छतो अविनीत (विनय रहित), गर्वित (गर्विष्ट) अने लुञ्च (विषयादिकमां लंपट) एवो ते

इच्छावाळो ते (पासत्थादिक) सांवत्सरिक पर्वे अष्टम; चातुर्मासीए छठ अने पक्ष (चतुर्दशी)ने दिवसे चतुर्थ (उपवास) तप करतो नथी, तथा चातुर्मास शिवाय शेष काळे क्षेत्रो छतां पण मासकल्पनी मर्यादा प्रमाणे विहार करतो नथी.” ३७०.

‘नीयं गिंङ्गिं पिंडं, एगाँगि अत्यै गिंहत्थकहो ।

पावँसुआणि अहिजइ, आँहिगारो लोँगहणंमि ॥ ३७१ ॥

अर्थ—“ नित्य एटले अमुक घेरथी आटलो आहार लेवो एम नियमित रीते पिंड (आहार) ग्रहण करे छे, एकाकी (एकलो) रहे छे, पण समुदायमां रहेतो नथी. गृहस्थोनी कथा (प्रदत्ति) जेने विषे होय एवी वातो करे छे, पापशास्त्रो (ज्योतिष तथा वैद्यक विग्रे)नो अभ्यास करे छे तथा लोकोने रंजन (वश) करवा माटे लोकोना मनमां अधिकार करे छे, एटले तेमनी वातोमां मोटाइपद धारण करी मुख्यता मेळवे छे, परंतु पोतानी संयमक्रियाना अधिकारी थता नथी.” ३७१.

परिभिंवइ उग्गाँकारी, सुँधं मँगं निँगूहए बालो ।

विँहंरइ सायाँगुरुओ, संज्ञमिगलेसु खिंतेसु ॥ ३७२ ॥

अर्थ—“ वाळक (मूर्व) एवा ते पासत्थादि उग्गारीनो एटले उग्र विहार करनार मुनिओनो पराभव करे छे (तेओने उपद्रव करे छे). शुद्ध एवा मोक्षमार्गांतुं आच्छादन करे छे—गोपवे छे. अने साता (सुख) ने विषे मुरुक (लंपट) एवो ते संयमथी विकल एटले सारा साधुयोथी रहित एवा क्षेत्रोने विषे विहार करे छे.” ३७२.

उग्गाइ गाइ हसई, असंबुडो सई करेइ कंदपण ।

गिंहिकज्जचिंतगो विर्य, ओसंन्ने देई गिंङ्गइ वाँ ॥ ३७३ ॥

अर्थ—“ असंवृत एटले मुखने पहोळुं करीने मोटा शब्दवडे गायन करे छे अने हसे छे. हमेशां कंदपण एटले कामने उत्पन्न करे तेवी कथाओ करे छे. वळी ते गृहस्थीओना कार्यनी चिंता (विचार) करे छे, तथा अवसन्न (भ्रष्टाचारी)ने वक्षादिक आपे छे अथवा तेनी पासेथी ग्रहण करे छे.” ३७३.

धर्मकहाओ अहिजइ, धरौधरं भर्मइ परिकहंतो अँ ।

गर्णणाइ पंमाणेण यै, अँझिरत्तं वैहइ उवँगरणं ॥ ३७४ ॥

गाथा ३७१—अत्थए=तिष्ठति । पावसुयाणि ।

गाथा ३७२—निगूहई । सायागरुओ ।

गाथा ३७३—उग्गाइ=उग्रतया । सय । सइ=सदा । असंवृतः=प्रसारितमुखः । ओसज्जो ।

गाथा ३७४—गणणाय ।

अर्थ—“ रागादिक रोगना औषध तुल्य जिनमतने नहीं जाणतो एवो ते वायुथी पूर्ण (भरेला) वस्ति (चामड़ानी पाणी भरवानी मसक) जेम उछले तेम गर्वधी भएप्रयद्देने उच्छ्रवलपणे परिभ्रमण करे छे-फरे छे; तथा स्तब्ध (अनम्र) अने निर्विज्ञान-शत्रहित एवो ते कोइने लवलेश पण पोतानी तुल्य जोतो-जाणतो नयी, अर्थात् सभने रुण सपान गणे छे. ” ३८१.

सच्छुंदगमणउद्घाणसोअणो भुंजइ गिहीणं चै ।
पांसत्थाइद्घाणा, हंवाति एमाइया ईए ॥ ३८२ ॥

अर्थ—“ वर्ली स्वच्छुंद गमन, उत्थान अने शयनवालो एवो ते (आ विशेषण ३८० मी गाथामां आप्या छतां अहीं फरीधी आपवानुं कारण गुरुनी आज्ञा विना ग्रामासि थती नयी, एम जणाववा माटे छे.) गृहस्थीओनी मध्ये भोजन करे छे. लादिक पूर्वे कहेला पार्वस्थादिकनां स्थानो (लक्षणो) होय छे. ” ३८२.

त्यारे कोइ साधुओ छेज नहीं ? एवी कोइने शंका थाय ते उपर कहे छे—

जो हुज्जाँओ असमत्यो, रोगेण वै पिल्लिओ झारियदेहो ।
सर्वमवि जहाँभणियं, कँयाइ नै तरिज्जि कँउं जे ॥ ३८३ ॥
सोवियं नियंयपरिकमववसायथिर्वलं अँगूहंतो ।
सुंतूण कूडँचरियं, जँई जँयंतो अवैस्स जँई ॥ ३८४ ॥ युग्मम् ॥

अर्थ—“ जे साधु स्वभावेज असमर्थ (बलहीन) होय, अथवा श्वास, कास अने ज्वरादिक रोगधी पीडित सतो जीर्ण देहवालो होय, तेथी करीने समग्र एवुं पण यथाभणित जिनेवरे जेवुं कहुं छे तेवुं (आचरण) करवाने कदाच शक्तिमान न होय (‘जे’ वाक्यालंकारने माटे छे.) ३८३. ते पण (दुर्भिक्ष अने रोगादिक आप-तिमां पडेलो छतो पण) पोताना पराक्रम (संहनन वल) ने, व्यवसाय (शरीरना उद्यम) ने, धृति (संतोष) ने अने वल एटले मनोवलने नहीं गोपतो तथा कूट चरित्र (कपड) ने मूकीने (तजी दइने) चारित्रने विषे (यथाशक्ति) यतना (उद्यम) करतो एवो यति अवश्य यति कहेवाय छे. ” ३८४. इवे मायावी (कपटी) तुं सिद्धप बतावे छे—

गाथा ३८२—सोयणो । भुंजइ । पासत्थाइयणा । एमाइया ।

गाथा ३८३—झुरियदेहो । कग्राइ । गाथा ३८४—पडिकम ववसाइ धिं ।

अँलसो सँढो वैलित्तो, आँलंबणतप्परो अँइपमाई ।

एवं ठिँओ वि मन्त्रई, अँप्पाण सुँडिओ मिं ति॑ ॥ ३८५ ॥

अर्थ—“ धर्मक्रियामां आळसु, शठ (मायावी), अवलिस (अहंकारी), आलंबणमां तत्पर (कोइ पण विषे करीने प्रमादनुं सेवन करवामां तत्पर) तथा अति प्रमादी (निद्राविकथादिप्रमादवान)—एवो छतो पण ‘ हुं सुस्थित (भव्य-सारो) हुं ’ एम पोताना आत्माने माने छे. ” ३८५. हवे मायावीने पाढळयी पश्चात्ताप करवो पडे छे, ते विषे कपटक्षप तापसतुं दृष्टान्त-

जो विय पौङ्डेऊणं, माँयामोसेहिं खाई मुद्धंजणं ।

तिग्गा ममज्ञवासी, सौ सोअँइ कर्वंडखवगु व्वं ॥ ३८६ ॥

अर्थ—“ वळी जे (मायावी) माया (कपट) करवामां मृषा (कूट) भाषण वडे करीने—माया मृषावादे करीने मुग्ध जनने पाडीने (वश करीने) छेतरे छे, ते पुरुष त्रण गामनी मध्ये (वचे) रहेनारा कपटक्षप नामना तपस्वीनी जेम शोक करे छे. ” ३८६. संप्रदायागत ते कथा अहीं कहे छे—

कपटक्षप तपस्वीनी कथा.

उज्जयिनी नगरीमां एक अघोरशिव नामनो महा धूर्त ब्राह्मण रहेतो हता, ते महाकपटी, महाधूर्त अने महापापी हतो. तेथी राजाए तेने देश बहार काढी मूक्यो, एटले ते चर्मकारना (मोचीना) देशमां गयो. त्यां चोर लोकोनी पछीमां जडीने ते चोरोने मळी गयो. पछी तेणे चोरोने कहुं के—“ जो तेम लोकोमां मारी प्रशंसा करो, तो हुं परिव्राजकनो वेष धारण करीने आ त्रण गामनी वचेनी अटवीमां रहुं अने तमने घणुं धन मेळवी आपुं. ” ते सांभळीने चोरोए तेनुं कहेवुं कबूल कर्यु. पछी ते ब्राह्मण तापसनो वेष धारण करीने ते त्रणे गामनी मध्ये रही कपटवृत्तियी मास-क्षण करवा लाग्यो, अने ते चोरो पण कूटवृत्तिथी सर्वत्र कहेवा लाग्या के—‘ अहो ! आ महात्मा धन्य छे. आ तपस्वी निरंतर मासक्षण करीने पारणुं करे छे. ’ ते सांभळी सर्वे मुग्ध जनो तेनी एवी प्रवृत्ति जोइ तेने वंदना—नमस्कार करवा लाग्या, अने भोजनने माटे पोताने घेर निमंत्रण आपी लड जवा लाग्या. पछी तेने इच्छा-भोजन करावी पोताना घरनी लक्ष्मी बताववा लाग्या; पोताना घरनी सर्व हकीकत तेने कहेवा लाग्या, अने प्रसंगे प्रसंगे निमित्त विगेरे पूछवा काग्या. ते कपटी तापस पण लग्ना वळयी लोकोने आगामी स्वरूप कहेवा लाग्यो. पछी ते कूटक्षपक रात्रे

चोरोने बोलावीने पोते दिवसे जोयेला गृहस्थोना घृहोमां बधी हकीकत समजावी खातर पड़ावीने चोरी कराववा लाग्यो. ए प्रमाणे हमेशां चोरी करावतां तेणे ब्रणे गमना लाकोने निर्धन कर्या. एकदा ते एक खेडुतना घरमां खातर पाडवा चोरोने लहने गयो. त्यां खातर पाडती बखते ते खेडुतनो पुत्र जागी गयो, एटले सर्वे चोरो नासी गया, पण एक चोर पकड़ाइ गयो. तेने पकडीने ते राजा पासे लह गयो. राजाए ते चोरोने धमकी आपी कहुं के—‘बोल, सत्य वात कही दे, नहीं तो तेने मारी नांखीश.’ त्यारे ते भय पामीने बोल्यो के—“हे महाराजा ! अमने आ कूटक्षप तापस जे घर वतावे छे ते घरे अमे खातर पाडीए छीए.” पछी राजाए तापस सहित सर्वे चोरोने पकडी मंगाव्या अने सर्वे चोरोने मारी नखाव्या, मात्र एक तापसने जीवतो राख्यो; पण तेनी बन्ने आंखो कढावीने मूकी दीयो. पछी ते तापस महा वेदननि अनुभवतो सतो मनमां पश्चात्ताप करवा लाग्यो के—“हा ! मने विकार छे! मैं ब्राह्मण थइनै कूटतापसनो धेष धारण करी घणा लोकोने छेतर्या. मैं लोकोने महा दुःखनुं कारण उत्पन्न कर्युं. मारो आत्मा मैं मलिन कर्यो. दुःखने भव हारी गयो. जोके ने काँइ अगुभ कार्य करवामां आवे ते सर्व निंदापात्र तो छेज, परंतु तपस्वी थइनै जे पुरुष पापकर्म करे छे ते अत्यंत निंदापात्र छे अने मलिनमां पण अति मलिन छे.” ए प्रमाणे पोताना आत्मानो शोक करतो ते तापस अत्यंत दुःखनो भाजन थयो. आ प्रमाणे वीजो पण जे कोइ धर्मने विषे कपट करे छे ते अत्यंत दुर्खी थाय छे. ए आ रूपानुं तात्पर्य छे.

॥ इति कपटक्षप तापस दृष्टान्तः ॥ ६६ ॥

हवे विराधकर्तुं स्वरूप कहे छे—

एगांगी पासैत्थो, सच्छुंदो ठाण्ठासि ओसंबो ।

दुग्माईसंजोगा, जैह बहुआ तंह ऊंरु हंति^{११} ॥ ३८७ ॥

गच्छेगओ अणुओगी, गुरुसेवी अनियवासि याउत्तो ।

संजोएण पैयाण, संजमआराहगा भैणिया ॥ ३८८ ॥

अर्थ—“ गच्छनी मध्ये रहेनार, अनुयोगी एटले ज्ञानादिकतुं सेवन करवामां उद्योगी, गुरुनी सेवा करनार, अनियतवासी एटले मासकल्पादिक विद्वार करनार अने प्रतिक्रमणादिक क्रियामां आयुक्त-उद्युक्त. ए पांच पदोना संयोगे करीने संयम (चारित्र)-ना आराधक कहेला छे; एटले जेने विषे आ गुणोमांथी वधारे वधारे गुण होय तेने विशेष विशेष आराधक जाणवो. ” ३८८.

निर्मम निर्खंकारा, उवंउत्ता नैणदंसणचरिते ।

एग्गिखिते विं ठिँया, खंवंति पोरार्णयं कंमं ॥ ३८९ ॥

अर्थ—“ निर्मम के० ममता रहित, अहंकार रहित अने विशेष अवबोध रूप ज्ञानने विषे, तत्त्वश्रद्धान रूप दर्शनने विषे, तथा आश्रवना निरोधरूप चारित्रने विषे उपयुक्त-उपयोगवाळा-सावधान एवा महापुरुषो एक क्षेत्रने विषे रहा होय, तोण तेओ पुराणा (पूर्व भवे संचय करेला) ज्ञानावरणादिक कर्मने खपावे छे—नाश करे छे.” ३८९.

जिंयकोहमाणमाया, जिंयलोहपरीसहा ये “जे धीरा ।

बुद्धावासे विं ठिँया, खंवंति चिंसंचियं कंमं ॥ ३९० ॥

अर्थ—“ जेओए क्रोध, मान अने मायानो जय कर्यो छे, जेओ लोभसंज्ञा रहित छे, अने जेओए क्षुधा पिपासादिक परीष्ठोनो जय कर्यो छे एवा जे धीर (सत्त्ववाळा) पुरुषो छे तेओ वृद्धावस्थामां पण एक स्थाने रहा सता चिरकाळना संचय करेला ज्ञानावरणादिक कर्मने खपावे छे—नाश करे छे. सदाचारवाळा मुनिओने कारणने लङ्गने एक स्थाने वसवामां पण जिनेश्वरनी आज्ञा छे. ए आ गाथातुं तात्पर्य छे. ” ३९०.

पंचसमिया तिँयुत्ता, उज्जुत्ता संजमै तवे चैरणे ।

वार्ससयं पि० वंसंता, मुणिणो आराहगा भैणिया ॥ ३९१ ॥

अर्थ—“ पांच समितिओथी समित (युक्त), त्रण गुप्तिओथी गुप्त (रक्षण करायेला) अने सत्तर प्रकारना संयमने विषे अथवा छ जीवनिकायनी रक्षा रूप संयमने विषे, बार प्रकारनां तपने विषे तथा चरण एटले पांच महाव्रतरूप क्रियाने

गाथा ३८८—आणियओ गुणायतो । आउत्तो । संजोगेण । आराहणा ।

गाथा ३९०—जिथकोह । जियलौभ ।

धर्मनुं साधन थतुं नथी; अथवा कपट एटले मायायुक्त चेष्टा करवाधी पण धर्मनुं साधन थतुं नथी. परंतु विमानवासी देवो, गृत्युकोकवासी मनुष्यो अने पातालवासी असुरो सहित आ लोक (ब्रण सुवन)ने विषे निष्कपट एवो धर्मज श्रीतीर्थकरोए कहेलो छे. ” ३९४.

भिंखवू गैयिमगैए, अभिंसेए तँहय चेवै रायणिए ।

ईवं तुं पुरिंसंवत्थुं, दैवाइं चैउविहं सेसं ॥ ३९५ ॥

अर्थ—“ आ भिष्ठु (साधु) गीतार्थ छे अथवा अगीतार्थ छे ? उपाध्याय छे के आचार्य छे ? तेमज रत्नाधिक छे ? ए प्रमाणे प्रथम पुरुषवस्तुनो विचार करवो; अने पछी बाकीना द्रव्यादिक (द्रव्य, क्षेत्र, काळ अने भाव) चार प्रकारनो विचार करवो, अर्थात् लाभालाभनो विचार करनारे प्रथम संपूर्ण विचार करवो—वस्तुने ओळखवी. ” ३९५.

चंरणायारो दुविहो, मूलगुणे चेवै उत्तरगुणे य ।

मूलगुणे छं द्विणा, पैढमो पुंण नंविहो तंत्थ ॥ ३९६ ॥

अर्थ—“ चारित्राचार वे प्रकारनो छे. मूल गुण—मूल गुणना विषयवालो तथा उत्तर गुण एटके उत्तर गुणना विषयवालो. तेमां मूल गुणने विषे छ स्थानो (छ प्रकार) छे. पांच महाव्रत अने छहुं रात्रिभोजनत्याग. तेमां पण एटले ते छए मूल गुणना स्थानोने विषे प्रथम स्थान (प्राणातिपात विरमण रूप स्थान) नव प्रकारनुं छे. ते पृथि-व्यादिक पांच अने द्वांद्रियादिक चार ए नव प्रकारना जीव वधथी विराम पायवो ते. ” ३९६.

सेसुक्कोसमज्ज्ञमजहन्नओ वाँ भवे चैउद्धाओ ।

उत्तरगुणे अँणेगविहो, दर्सणनाणेसु अँहुङ ॥ ३९७ ॥

अर्थ—“ बाकीना एटले वीजा महाव्रतथी आरंभीने पांच मूलस्थानो उत्कृष्ट, मध्यम अने जघन्य भेदे करीने ब्रण ब्रण प्रकारे अथवा द्रव्य, क्षेत्र, काळ अने भावभेदे करीने चार चार प्रकारे छे, तथा गोचरी, समिति, भावनादिक उत्तर गुण अनेक प्रकारनो छे. (उत्तर गुणने विषे अनेक प्रकारनो आचार छे.) दर्शन (समाकित)मां निःशंकित विगेरे अने ज्ञानमां काळ विनय विगेरे आठ आठ आचार छे. ” ३९७.

जं जंयइ अँगीयत्थो, जं चं अँगीयत्थनिसिसओ जंयइ ।

वद्वावेइ गच्छं, अँणंतसंसारिओ होइ ॥ ३९८ ॥

गाथा ३९५—एयं तु । दब्बाइ । गाथा ३९७—सेसुक्कोसो । उत्तरगुणणेगविहो ।

गाथा ३९८—जंजइ नद्वावेइ । नद्वावेइ=वर्तयति ।

अर्थ—“ अगीतार्थ (सिद्धान्तने न जाणनार) जे यत्ना (तप क्रियादिकमां उच्चम) करे छे, अने जे अगीतार्थ निश्चित एटले अगीतार्थनी निश्चामां रहीने क्रियानुष्ठान करे छे; तथा पोते अगीतार्थ छतां जे गच्छने प्रवर्तावे छे—एटले क्रियानुष्ठानमां प्रेरणा करे छे, तो ते अगीतार्थ अनंतसंसारी थाय छे. अर्थात् गीतार्थ मुनिनुं अथवा चेनी निश्चामां रहीने करेलुं—क्रियानुष्ठानज मोक्षफलने आपनारुं थाय छे. ” ३९८.

अहीं शिष्य गुरुने प्रश्न करे छे—

कंहउ जैयंतो सौहू, वद्वैर्वैर्य जौउ गच्छुं तुं ।

संजमजुत्तो हीउं, अर्णांतसंसारिओ होइ ॥ ३९९ ॥

अर्थ—“ हे पृथ्वी ! जे साहु तपसंयमने विषे पोते यत्ना (उच्चम) करे छे, वळी ज तपसंयमने विषे गच्छने प्रवर्तावे छे ते साहु संयमयुक्त थइने पण अनंतसंसारी केम थाय ? तेने अनंतसंसारी केम कहो ? ” ३९९.

हवे गुरुमहाराज एनो उत्तर आपे छे—

दैव्यं खित्तं कालं, भावं पुरिसंपिडिसेवणाओ ईं ।

नं वि जाणइ अग्नीओ, उस्संगववाईयं चेव ॥ ४०० ॥

अर्थ—“ हे शिष्य ! अगीतार्थ साहु द्रव्य, स्त्रेव, काळ अने भाव जाणी शकतो नयी, वळी पुरुष एटले आ पुरुष योग्य छे के अयोग्य ? ते जाणी शकतो नयी, तथा प्रतिसेवना—पापसेवना एटले आ मनुष्ये स्ववशे पापसेवन कर्यु छे के परवशे कर्यु छे ते जाणतो नयी. तेमज उत्सर्ग एटले सामर्थ्य छते शास्त्रमां कहा प्रमाणेज क्रियानुष्ठान करतुं ते, तथा अपवाह एटले रोगादिक कारणे अल्प दोषहुं सेवन करतुं ते—जापतो नयी तेवी अगीतार्थना क्रियानुष्ठान व्यर्थ छे. ” ४००.

जहडियदव्य नं याणइ, सचिंत्ताचित्तभीसियं चेव ।

कप्पांकप्पं च तहा, ऊर्गं वां जस्स जं होइ ॥ ४०१ ॥

अर्थ—“ वळी अगीतार्थ यथास्थित द्रव्यस्वस्पने जापतो नयी, तथा सचिच (सजीव), अचित्त अने मिश्र द्रव्यने (वस्तुने) पण निश्चययी जाणतो नयी, तथा आ वस्तु कल्प्य छे के अकल्प्य छे ? ते पण जाणतो नयी, अथवा जे वस्तु जे वाल राजानादिकने योग्य होय ते पण ते जाणतो नयी. ” ४०१.

गाया ३९९—क्लद्य । वद्वैर्वै । संसारिलो भणिलो ।

गाया ४००—उत्सर्गववाई । उत्सर्गापवाह ।

गाया ४०१—जहडिय दव्य—यथास्थित इव्यं । होइ ।

जैहडियखेत्त नै जाणइ, अँधाणे जणैवएथ जंै भणियं ।

कालंपि नैवि जाणइ, सुभिंखदुभिखव जंै॒ कैपं ॥ ४०२ ॥

अर्थ—“ वली अगीतार्थ यथास्थित क्षेत्रने एटले आ क्षेत्र भद्रक छे के अभद्रक हे ? ते जाणतो नथी. दूर मार्गवाला जनपदमां (देशमां) विहार कर्ये छते जे विधि-स्वरूप सिद्धान्तमां कहेलुँ छे ते पण जाणतो नथी तथा काळ (काळनुँ स्वरूप) पण जाणतो नथी, तेमज सुभिक्ष (सुकाळ) अने दुर्भिक्ष (दुष्काळ)ने विषे जे वस्तु कल्प्य के अकल्प्य कहेल छे ते पण अगीतार्थ जाणतो नथी. ” ४०२.

भाँवे हङ्गेगिलाण, नैवि याँणइ गाँडगाढकपं चं ।

सहुँअसहुपुरिसवत्थुं, वत्थुमवैत्थुं चं नैवि जाणई ॥ ४०३ ॥

अर्थ—“ भावने विषे (भावद्वारने विषे) आ हृष्ट (नीरोगी) छे. माटे तेने आ वस्तु देवा योग्य छे, अने आ ग्लान (रोगी) छे, माटे तेने आ वस्तुज देवा योग्य छे, ते जाणतो नथी. तथा गाढगाढ कल्प एटके गाढ (मोटा) कार्यमां अमुक करवा योग्य छे अने अगाढ (स्वाभाविक) कार्यमां अमुकज करवा लायक छे, ते पण जाणतो नथी. वली समर्थ शरीरवालुँ अने असमर्थ शरीरवालुँ पुरुषवस्तुने पण जाणतो नथी के आ समर्थ छे ने आ असमर्थ छे; तथा वस्तु एटले आचार्यादिकना स्वरूपने अने अवस्तु एटले सामान्य साधुना स्वरूपने पण जाणतो नथी. ” ४०३.

पडिंसेवणा चउच्छा, औउडिंपमाय दर्प कप्पेसु ।

नैवि जाणइ अग्नीओ, पर्च्छित्तं चैव जंै तंथ ॥ ४०४ ॥

अर्थ—“ प्रतिसेवना (निषिद्ध वस्तुनुँ आचरण) चार प्रकारे होय छे. एक पाप जाणीने करवुँ ? एक पाप प्रमाद (निद्रादिक) वडे करवुँ ३, एक पाप दर्प वडे एटले धावन वलानादिक वडे करवुँ ३, अने एक पाप कारणने क्लैने करवुँ ४. ए चार प्रकारना पापने अगीतार्थ (सिद्धान्तना रहस्यनो अजाण) जाणतो नथी. वली निश्चे आलोचनादिक जे प्रायश्चित्त, ते केवी जातनी प्रतिसेवनामां केवी जातनुँ आपवु ते पण अगीतार्थ जाणतो नथी. ” ४०४.

जैह नैम कोइ पुरिसौ, नयैणविहूणो अदेसैकुसलो यै ।

कर्ताराडविभीमे, मंगगपणद्वस्स संत्थस्स ॥ ४०५ ॥

गाथा ४०२—याणइ । कालंपिय । याणइ ।

गाथा ४०३—हिंग गिलाण=हृष्ट ग्लान । गाढगाढ । बुहबसुहपुरिसवत्थं । याणइ ।

गाथा ४०४—पमाय । कप्पेय । गाथा ४०५—कोई । मार्गप्रणष्टस्य=मार्गप्रष्टस्य ।

इच्छाइ य देसियत्तं, किं सो उ समत्थ देसियत्तस्स ।

दुर्गाइं अयाणंतो, नैयणविहृणो कैहं देसे ॥ ४०६॥युगमय॥

अर्थ—“ जेम (नाम-प्रसिद्धिमाटे अब्यय) नयनरहित (अंध) अने अदेश कुशल के० मार्गना ज्ञानमां अकुशल एवो कोइ पुरुष भीम के० भयंकर एवी कांतार अटवीमां एटले विषम अटवीमां मार्गथी ऋष थयेला (भूला पडेला) सार्थने (जन-समुदायने) मार्ग वताववा इच्छे, के हुं तेओने मार्ग वतावुं; पण शुं ते अंध पुरुष मार्ग वताववामां समर्थ थाय ? नज थाय. केमके दुर्ग एटले रस्तामां आवता विषम स्थानोने नहीं जाणतो एवो ते नेत्रहीन (अंध) पुरुष केवी रीते मार्ग वतावी शके ? अर्थात् नज वतावी शके. ” ४०६.

एवमगीयत्थोवि हुं, जिणवयणपर्द्वचखुपरिहीणो ।

दव्वाइं अयाणंतो, उस्संगववाइयं चेवं ॥ ४०७ ॥

अर्थ—“ तेज प्रमाणे (हु इति निश्चये) जिनेवरनां कहेलां वचनो रूपी देवीप्रभान दीपक रूप चक्षुथी रहित एवो अगीतार्थ पण द्रव्यादिक वस्तुओने तथा उत्सर्ग अपवाद मार्गने नहीं जाणतो सतो शी रीते बीजाने मार्ग वतावी शके ? नज वतावी शके. ” ४०७.

कैह सो जयओ अगीओ, कैह वाँ कुणऊ अगीयनिस्साए ।

कैह वाँ करेऊ गैच्छं, सबौलबुह्वाउलं सौऊ ॥ ४०८ ॥

अर्थ—“ ते (उपर कहो तेवो) अगीतार्थ शी रीते पोते चारित्रमां यतना करी शके ? अथवा अगीतार्थनी निश्राए वर्तता बीजा मुनिओ पण तपसंयमने विषे यतना करवाने शी रीते समर्थ थाय ? अथवा ते (अगीतार्थ) बाल अने दृद्धोथी आकुल (सहित) एवा गच्छने शी रीते प्रवर्तीवी शके ? काँइ न करी शके. ” ४०८.

सुते य इँमं भैणियं, अर्पच्छते यं देइं पच्छतं ।

पच्छते अङ्गमत्तं, आसायण तंस स भैहर्विओ ॥ ४०९ ॥

अर्थ—“ सिद्धान्तमां एवुं कहुं छे के जे अगीतार्थ बीजाने प्रायश्चित्त (पाप) विना प्रायश्चित्त (तपस्या करवानुं) आपे, अथवा थोडा प्रायश्चित्त (पाप)मां अधिक

गाथा ४०६—इच्छाइ । सो समत्थो । देसियत्तं=दर्शकत्वं—मार्गदर्शकत्वं । दुर्गाइं=दुर्गानि—विषमप्रदेशान् । कहिं । देसे=दर्शयेत् ।

गाथा ४०७—दव्वाइ । गाथा ४०८—कुणऊ । करेऊ । बहुउलं । सौऊ ।

गाथा ४०९—अप्पच्छते । अङ्गमत्तं=अतिमात्रं । महइओ ।

(मोडुं) प्रायश्चित्त (तपस्या) आपे, तो ते अगीतार्थने मोटी आशातना—जिनाज्ञानी विराधना थाय छे—तेवा अगीतार्थने जिनेश्वरनी आज्ञानो विराधक जाणवो.” ४०९.

आसायण मिँच्छसं, आँसायणवज्जणा उँ सम्मतं ।

आँसायणानिमित्तं, कुँब्बइ दीहं चैं संसारं ॥ ४१० ॥

अर्थ—“ आशातना शब्दे करीने जिनाज्ञानो भंग एज मिथ्यात्व कहेवाय छे, अने आशातनाने वर्जी एटले जिनाज्ञानुं पालन करवुं एज सम्यक्त्व कहेवाय छे; तेमज आशातनाने निमित्ते एटले जिनाज्ञानो भंग करवाथी प्राणी दीर्घ संसार एटले चार गतिमां भ्रमण करवा रूप बहुल संसार उपार्जन करे छे.” ४१०.

एए दोसा जँह्याँगीयं जँयंतस्सगीर्यनिस्साए ।

वंडावय गच्छस्स यं, जो अँ गँण देयंगीर्यस्स ॥ ४११ ॥

अर्थ—“ जेथी करीने तपसंयमने विषे यतना करता एवा पण अगीतार्थने ए (पूर्वोक्त) दोषो लागे छे, अगीतार्थनी निश्राए करीने (वचने करीने) तपसंयम करता एवा धीजाने पण ए दोषो लागे छे, वली गच्छना प्रवर्तविनार (अगीतार्थ) ने पण ए दोषो लागे छे; तथा जे अगीतार्थने (मूर्खने) गण (आचार्यपद) आपे छे—सोपे छे तेने पण ए पूर्वोक्त दोषो लागे छे.” ४११.

अबहुसुओ तँवस्सी, विहरिकामो अजाणिऊण पैंहं ।

अवैराहपयसयाइं, काऊण वि॑ जो न॑ याणेइ ॥ ४१२ ॥

अर्थ—“ जे अबहुश्रुत (अल्प शास्त्रनो जाण) छतो तपस्वी होय एटले गाह तपस्या करतो होय, जे मार्गने (मोक्षमार्गने) जाण्या विना विहार करवाने इच्छतो होय, जे अपराध (अतिचार)ना सेंकडो स्थानोने (सेंकडो अतिचारने) करीने—सेवीने पण जे अल्पश्रुत होवाथी जाणतो न होय.” ४१२. (संबंध आगली गाथामां छे.)

देसियराइयसोहिय, वयाइयारे य जो न॑ याणेइ ।

अविसुधधस्स न॑ वँड्हइ, शुणसेढी तित्तियाँ डैंड्हइ ॥ ४१३ ॥

गाथा ४१०—वज्जणा य, वज्जणा इ। कुब्बई।

गाथा ४११—अगीओ जयंतस्स अगीयनिस्साए। जोवि गण देइ अगीयस्स।

गाथा ४१२—अबहुसुओ। काहुण। याणेई।

गाथा ४१३—सोहिय। वयाइचारेय। याणेई। तित्तिया=तावती।

अर्थ—“ वळी जे दिवस अने रात्रि संबंधी अतिचारोनी शुद्धिने तथा ब्रतोना (मूलोत्तर गुणोना) अतिचारोने जाणतो नयी, एटले अल्पश्रुत होवाथी शुद्ध थतो नयी। अविशुद्ध (पापनी शुद्धिराहित एवा) पुरुषनी गुणश्रेणी (ज्ञानादिक गुणोनी रंपरा) दृष्टि पासती नयी, जेटकी होय तेटलीज रहे छे; अधिक थती नयी। ” ४१३

अप्पांगमो किंलिसइ, जैइ विं करेइ, अइदुँकरं तु तंवं ।

ਸੁਨਦਰ ਬੁਝੀਇ ਕੰਇ, ਬੈਨ੍ਹਧਿ ਪਿੰਹੋਂ ਨੇ ਸੁਨਦਰੇ ਹੋਇ ॥ ੪੩੪ ॥

अर्थ—“ अल्प सिद्धान्तने जाणनार (साधु) जोके मासक्षणादिक अतिदुष्कर तप करे, तोपण ते कष्टनेज सहन करे छे (एम जाणवुँ). सुंदर बुद्धिए करेलुँ घणुँ एवुँ ते तप पण सुंदर थतुँ नथी. ते तप अज्ञानकष्टनी वरावरज छे. ” ४१४.

ॐ परिच्छियसु यनि हसस, केवलमभिन्नसु तचारिस ।

ਸੰਖੁਜਮੇਣ ਵਿੱ ਕੱਧਾਂ, ਅਨਾਣੀਤਵੇ ਬੁਝੁ ਪੱਡੈਂ || ੪੧੫ ||

अर्थ-“ नथी जाण्युं श्रुतनिकष (सिद्धान्ततुं रहस्य) जेणे तथा केवल अभिन्न एटले टीकादिकना ज्ञानरहित मात्र श्रुतना अक्षरने अनुसारेज चालवाना स्वभावाला एवा साधुतुं सर्व उच्चमवडे करेलुं क्रियानुष्ठानादिक जे ते अज्ञानतपने विषे-अज्ञानकष्टने विषेज अत्यंत पडे छे. ” ४१६.

ते उपर दृष्टान्त कहे छे—

जंह दायैमि विं पैहे, तस्स विसेसे पहँस्स याणंतो ।

ਪਹਿਓ ਕਿਲਿੰਸਡੁ ਚਿੰਧ, ਤੈਂਹ ਲਿੰਗਾਂਧਾਰ ਸੁਅਮਿਤ੍ਰੇ ॥ ੪੧੬ ॥

अर्थ—“ जेम कोइ पुरुपे कोइ पथिक (मुसाफर)ने मार्ग देखाड्ये सते पण ते मार्गना विशेषने एटले ‘ आ मार्ग दक्षिणे (जमणो) जाय छे के वाम (डावो) जाय छे ? इत्यादिक विशेष स्वरूपने नहीं जाणतो एवो ते पथिक निश्चे क्लेश पामे छे, एटले मार्गमां भूल्लो पडीने अत्यंत दुःख पामे छे; तेम (आ वृष्टान्तवडे) लिंग (साधु-वेष) अने आचार (क्रिया) तेने धारण करनार एटले पोतानी बुद्धिथी क्रिया करनार अने सूत्रना अक्षर मात्रनेज जाणनार एवो ते साधु पण ते पथिकनी जेम अत्यंत दुःख पामे छे. ” ४१६.

गाथा ४१४—किलस्सद् । द्वकरंति तवं । बुद्धीए कयं । होइ ।

गाथा ४१५—निहिसस्स । वहं पढ़इ ।

गाथा ४१६—द्वायंसिविपहे=दर्शितेषि पथे—मार्गे । किलस्सइ । सयमित्तो ।

कप्पैकप्पं एसैणमणेसैणं चरैणकरणसेहविहिं ।

पायच्छत्तविहिं पि॑ य, दृव्वाइगुणेसु अ॑ समंगं ॥ ४१७ ॥

पवैंवणविहिंसुद्वावणं चै, अज्ञाविहिं निर्खेसेसं ।

उ॑संसग्गववायविहिं, अ॑याणमाणो क॑हं जय॑थो ॥ ४१८ ॥ युगम्

अर्थ—“ कल्प्यने, अकल्प्यने, एषणा (आहारशुद्धि)ने, अनेषणा (आहारना दोष)ने, चरण सीत्तरने, करण सीत्तरने, नवदीक्षितनी शिक्षाविधिने, दश प्रकारना प्रायश्चित्त (आलोचनादि)नी विधिने, द्रव्यादिक एटले द्रव्य, क्षेत्र, काळ अने भावने विषे तथा गुणो (उत्तम अने मध्यम)ने विषे संपूर्णताने, प्रव्राजना विधि (नवाने दीक्षा आपवाना विधि)ने, उत्थापना एटले महाव्रतनो उच्चार करवो तेना विधिने, आर्या (साध्वी)ना विधिने तथा उत्सर्गमार्ग (शुद्ध आचारनुं पालन) अने अपवादमार्ग (कारणे आपत्ति वस्त्रे आदरवा लायक)ना विधिने संपूर्ण रीते नहीं जाणनार एवो अवपश्रुत लिंगधारी शी रीते मोक्षमार्गने विषे यतना (उद्यम) करी शके ? नज करी शके ॥ ४१८ ॥

सैसायरिकमेण यै, जैणेण गैहियाइं सिंपसत्थाइं ।

नैजंति बहुविहाइं, नं चर्कुमित्ताणुसरियाइं ॥ ४१९ ॥

अर्थ—“ वळी (लौकिकमां) मनुष्योए शिष्य अने आचार्यना क्रमे करीने विद्या ग्रहण करायच्छे, एटले शिष्य विनय पूर्वक कलाचार्यादिकने प्रसन्न करीने तेनी पासेथी विद्या ग्रहण करे छे एवा विनयना क्रमे करीने वहु प्रकारनां शिल्पशास्त्रो एटले चित्रादिकनां अने व्याकरण विग्रेनां शास्त्रो ग्रहण करेलां (सारी रीते शीखेलां) जणाय छे—जोवामां आवे छे; परंतु चक्षुमात्रे करीने (नेत्रथी जोवा मात्रे करीने) अनुसरेलां एटले पोतेज पोतानी मेळे (गुरुनो विनय कर्या विना) शीखेलां जोवामां आवतां नथी. अर्थात् पोतानी मेळे शीखेलां ते लौकिक शास्त्रो पण शोभा पामतां नथी, तो पछी लोकोत्तर शास्त्रोने माटे तो शुं कहेवूं ॥ ४१९ ॥

जैह उज्जैमितं जाणइ, नैणी तवं संजमे उवौयविऊ ।

तहैं चर्कुमित्तदरिसिण, सामायारी नं याणंति ॥ ४२० ॥

गाथा ४१७—विहिंपिय । द्रव्यायगुणेषु य । गाथा ४१८—अजाणमाणो ।

गाथा ४१९—गहियाइं । शिल्पशास्त्राणि । नैजंति=जायन्ते ।

गाथा ४२०—उज्जैमित=उद्यमं कर्तुं । उपायवित् । अवायविऊ ।

अर्थ—“ जेवी रीते उपायने जाणनार ज्ञानी तप अने संयमने विषे उद्यम करवालुं जाणे छे; एटले ज्ञानी पुरुष सिद्धान्तना ज्ञाने करीने जेवी रीते उद्यम करे छे, तेवी रीते चक्षुमात्रना दर्शनवडे करीने एटले क्रियानुष्ठानादिक करनारा एवा वीजानी समीपे रहीने मात्र जोवाथी (सामाचारी) शुद्ध आचार जणातो नथी. अर्थात् पोताना ज्ञानथी जेवुं जणाय छे तेवुं वीजाने करतां जोवामात्रथी जणातुं नथी. ” ४२०.

सिंपाणि यै सत्थाणि यै, जाणंतो वि नं य जुंजङ्ग जौ ऊं ।

तेसि^{११} फलं नं भुंजइ, इअ्य अजयंतो जई नाणी ॥ ४२१ ॥

अर्थ—“ शिल्पो (चित्रकर्म विग्रे) अने व्याकरणादिक शास्त्रोने जाणतो छतो पण जे पुरुष तेनी योजना नथी करतो एटले ते ते क्रियाओनी प्रवृत्ति नथी करतो, ते पुरुष ते शिल्पादिकथी थनारा धनलाभादिक फळने भोगवतो-पामतो नथी. तेज प्रमाणे संयमां यतना (उद्यम) नहीं करनारो ज्ञानवान एवो यति (साधु) पण मोक्षरूप फळने पामतो नथी. ” ४२१.

गाँखतियपडिबद्धा, संज्ञमकरणुजमंभि सीअंता ।

निंगंतूण गँणाओ, हिंडंति पमाँयरन्नमि ॥ ४२२ ॥

अर्थ—“ रस, ऋद्धि अने सातास्ती त्रण गारबने विषे प्रतिवद्ध थयेला (आस-ह थयेला) अने संयम करणना (छ जीव निकायनी रक्षा करवाना) उद्यमने वेषे शिथिल थयेला साधुओ गण (गच्छ)थी वहार नीकर्नीने प्रमादरूपी अरण्यमां तेच्छाए विहार करे छे-भ्रमण करे छे. ” ४२२.

नाणाहिओ वर्तंर, हीणो वि हुं पर्वयणं पभाँवंतो ।

नं य दुङ्कंर करंतो, सुंहु वि अप्पाँगमो पुंरिसो ॥ ४२३ ॥

अर्थ—“ चारित्रक्रियाए हीन छतो पण निश्चे जिनशासननी प्रभावना करनार एवो ज्ञानाधिक (ज्ञानवडे पूर्ण ज्ञानी) पुरुष श्रेष्ठ छे; पण सारी रीते मासक्षणादिक दुष्कर तपस्या करतो छतो पण अल्पश्रुत पुरुष श्रेष्ठ नथी, अर्थात् क्रियावान छतां पण ज्ञानहीन पुरुष श्रेष्ठ नथी. ” ४२३.

नाणाहियस्स नाणं, पुज्जई नाणा पैवत्ताए चैरणं ।

जस्स पुँण दुङ्डइकं पि०, नैत्य तंस्स पुँजए कौँइं ॥ ४२४ ॥

गाथा ४२१-वि य न जुंजइ । योजयति । इय यजयतो ।

गाथा ४२२-सीयंता । घराओ । रणमि ।

गाथा ४२४-पुज्जई । पवर्तई । दुसएङ्ग । तस पूज्नए काउ । पूज्नइ काइ ।

अर्थ—“ज्ञानाधिक (ज्ञानथी पूर्ण) पुरुषतुं ज्ञान पूजाय छे, केमके ज्ञानर्थी चरण (चारित्र) प्रवर्ते छे; परंतु जे पुरुषने ज्ञान अने चारित्र ए वेमांथी एक पण नथी ते पुरुषतुं शुं पूजाय? शुं पूजवा योग्य होय? कांइ पण पूजवा योग्य न होय.”

नाँण चैस्तिहीणं, लिंगग्रहणं च दंसणविहीणं।

संजमहीणं च तंवं, जो चैरङ्ग निरत्थयं तस्स ॥ ४२५ ॥

अर्थ—“जे पुरुष चारित्र (क्रिया) रहित ज्ञानतुं आचरण करे छे, जे पुरुष दर्शन (सम्यक्त्व) रहित लिंग (मुनिवेष)तुं ग्रहण (धारण) करे छे, अने जे पुरुष संयम (छ जीव निकायनी रक्षा रूप चारित्र) रहित तपतुं आचरण करे छे—ते पुरुषोना ए सर्वे मोक्षनां साधनो निरर्थक छे—निष्फल छे.” ४२५.

जैहा खैरो चंदेणभारवाही, भाँस्स स भाँगी नै हुँ चंदेणस्स ।

ऐवं खै नाणी चैरणेण हीणो, नाँणस्स भाँगी नै हुँ सुर्गईए॥

अर्थ—“जेम चंदनना भारने वहन करनार खर (गधेडो) केवळ भारनोज भागी थाय छे, पण चंदनना सुगंधनो भागी थतो नथी, तेज रीते निश्चे चारित्रे करीने हीन एवो ज्ञानी पण केवळ ज्ञाननोज भागी थाय छे, पण मोक्षरूप सुगतिनो एटले ज्ञानना परिमलनो भागी थतो नथी. माटे क्रिया सहित ज्ञान होय तोज ते श्रेष्ठ छे.” ४२६.

संपागडपडिसेवी, काएसु वएसु जो नै उर्ज्जमई ।

पवैयणपाडणपरमो, सम्मतं कोमलं तस्स ॥ ४२७ ॥

अर्थ—“प्रगटपणे (लोक समक्ष) प्रतिकूल (निषिद्ध) आचरणने आचरनार एवो जे पुरुष छ जीवनिकायना पालनने विषे अने पांच महाव्रतना रक्षणे विषे उद्यम करतो नथी—प्रमादनुंज सेवन करे छे, तथा जे प्रवचन (जिनशासन)तुं पातन (लघुता) करवामां तत्पर छे, तेतुं सम्यक्त्व कोमळ एटले असार जाणदुं; अर्थात् तेने मिथ्यात्वज वर्तेछे एम जाणवुं.” ४२७.

चैरणकरुणपरिहीणो, जैइ वि तंवं चैरङ्ग सुँडु औइयुरुअं ।

सो तिलंलं वै किणंतो, कंसिंय बुद्धो मुणेयवो ॥ ४२८ ॥

अर्थ—“चरण एटके महाव्रतादिकतुं आचरण अने करण एटले आहारशुद्धि

गाथा ४२५—संजमविहीणं ।

गाथा ४२७=जो उ न दजमइ । संपागड=संप्रकट ।

गाथा ४२८=जयह वि । गहयं । तुहो ।

वर्गे तेणे करीने हीन एवो कोइ पुरुष जोके सारी रीते घणुं मोडुं तप करे छे, परंतु तेने आदर्शे करीने (आरीसाए करीने) तेलना बदलामां तल आपनार वोद्र गामना निवासी मूर्खनी जेवो जाणवो, एटले थोडाना बदलामां घणुं आपी देनारो जाणवो. तल आपीने तेल लेनारो ते मूर्ख घणा तलने हारी जाय छे; ते एवी रीते के आदर्शना पाछला भागे भरीने तल आपे अने काचनी वाजुथी तेल ग्रहण करे तेथी तेल घणुं थोडुं आवे अने तल घणा जाय. एवी रीते करार करनार वोद्रगामवासी मूर्खिनुं दृष्टान्त अहीं जाणवुं; एटले ते जेम थोडा तेलना बदलामां घणां तल हारी गयो, तेम प्रमादी मुनि चास्त्रिनी थोडी शिथिलताना बदलामां घणुं तप हारी जाय छे. आ वोद्र गामवासीनुं दृष्टान्त नारुं होवाथी अन्वे लख्युं नथी. ” ४२८.

छँजीवनिकायमहब्याण, परिपालणाइ जँइधम्मो ।

जँइ पुणे ताइ नैरखबइ, भैणाहि को नाम सो धैम्मो॥४२९॥

अर्थ—“ पृथ्वीकाय, अप्काय, तेउकाय, वायुकाय, वनस्पतिकाय अने त्रस-काय ए छ जीवनिकायनुं अने प्राणातिपातविरमणादिक पांच महाव्रतोनुं परिपालन (सारी रीते रक्षण) करवाथी यतिर्धम थाय छे—कहेवाय छे. पण जो ते छ जीवनि-काय अने पांच महाव्रतोनुं रक्षण न करे, तो हे शिष्य ! तुं कहे के तेने कयो धर्म कहेवो ? अर्थात् तेना रक्षण विना धर्म कहेवायज नहीं. ” ४२९

छँजीवनिकायदयाविवजिओ नेव दिखिखओ नै गिर्ही ।

जँइधम्माओ चुक्को, चुक्कइ गिर्हीदाणधम्माओ ॥ ४३० ॥

अर्थ—“ छ जीवनिकायनी दयाथी रहित एवो वेषधारी दीक्षित (साधु) कहेवायज नहीं, तेमज (मस्तक मुंडेलुं होवाथी) गृहस्थी पण कहेवाय नहीं. ते यति-धर्मथी चुक्यो—भ्रष्ट थयो, अने गृहस्थना दानधर्मथी पण चूके छे—भ्रष्ट थायछे, केम-के तेणे आपेलुं दान पण शुद्ध संयमीने कल्पतुं नथी. ” ४३०

सब्बाँओगे जँह कोइ, अमैच्चो नरवइस्स धिंकूणं ।

आँणाहरणे पाँवइ, वहंबंधणदब्बहरणं चं ॥ ४३१ ॥

अर्थ—“ जेम कोइ अमात्य (प्रधान) नरपति (राजा)ना सर्व आयोगे (अधिकारो)ने ग्रहण करीने (पामीने) पछी जो राजानी आज्ञानो भंग करे, तो ते

गाथा ४२९—परिपालणाय । ताइ ।

गाथा ४३०—दिखिखउ । गिर्हीदाणधम्माओ ।

गाथा ४३१—नरवयस्स । अमैच्चो=अमात्यः ।

वध एटले लाकडी विगेरेना प्रहारने, सांकळ (वेडी) विगेरेना बंधनने तथा द्रव्ये हरण एटले सर्वस्वना नाशने अने चकारथी छेवट मरणने पण आज्ञानो भंग करवाथी पामे छे. ” ४३१.

तैंह छैकायमहव्यसवनिवित्तीउ गिहिँऊण जई ।

एगैमवि विराहंतो, अमँच्चरन्नो हंणइ बीहिं ॥ ४३२ ॥

अर्थ—“ तेवीज रीते छ जीवनिकाय तथा पांच महाब्रत संवंधी सर्व निवृत्ति (सर्वविरति) रूप प्रत्याख्यान (नियमो)ने ग्रहण करीने यति (साधु) एक पण जीवनिकायनी अथवा एक पण व्रतनी विराधना करतो सतो अमर्त्य राजा (देवोना राजा-तीर्थीकर)ए आपेली अथवा तेमणे प्रस्तुपेली बोधिने हणे छे-नाश पमाडे छे. अर्थात् जिनाज्ञानो भंग करवाथी बोधि (सम्यक्त्व)नो नाश थाय छे; अने तेथी ते अनन्त संसारी थाय छे. ” ४३२.

तौ हयैबोहीय पच्छा, कवाँवराहाणुसरिसमियममियं ।

पुण वि भवोअहिपडिओ, भमइ जरांमरणदुगंगमि ॥ ४३३ ॥

अर्थ—“ त्यार पछी हणी छे बोधि जेणे एवो ते मुनि करेला अपराध (जिनाज्ञाभंगरूप)ने अनुसारे एटले अनुमाने करीने समान आ प्रत्यक्ष एवा अमित एटले मानरहित (अति मोटा) फळने पामे छे. ते फळ कयुं? ते कहे छे-वृद्धावस्था तथा मरणे करीने अत्यंत दुर्ग एटले गहन एवा भवसागरने विषे पड्यो छतो वारंवार परिभ्रमण करे छे-अनन्तकाळ परिभ्रमण करवारूप फळने पामे छे. ” ४३३.

जैइयाणेण चैत्तं, अैप्पणयं नाणेंदंसणचरितं ।

तैङ्गया तैःस्स परेसु, अंणुकंपा नैत्थि जीवेसुं ॥ ४३४ ॥

अर्थ—“ ज्यारे आ निर्भागी जीवे आत्माने हितकारक एवा ज्ञान, दर्शन, चारित्रनो त्याग कयो, त्यारे समजबुं के ते जीवने वीजा एटले पोता शिवाय वीजा जीवोने विषे अनुकंपा नयी. अर्थात् जे पोताना आत्मानो हितकारक नयी थतो ते वीजाओंनु हित शी रीते करे ? पोताना आत्मापर दया होय तोज वीजा जीवोपर दया थइ शके छे. (आत्मदया मूलकज परदया छे.) ” ४३४.

गाथा ४३२-निवत्तिओ । गिहिऊण । रणो । अमच्चरन्नो=अमर्त्यराज्ञः तीर्थीकरदेवस्थ ।

गाथा ४३३-हयबोहि पच्छा । हयबोही । कृतापराधानुसदशामिदमामितम् । मुणो वि ।

गाथा ४३४-वदाऽनेन त्यत्तं । अप्पणयं=आत्मनीनं । परेसुं ।

छँकायरिझण असंजयाण लिंगावसेसुमित्ताण ।
बँहुअसंजमो पैवहो, खारो मईलेइ सुँहुअरं ॥ ४३५ ॥

अर्थ—“ छ जीवनिकायना शत्रु एट्ले छकायनी विराधना करनार, असंयत एट्ले जेणे मन, वचन कायाना योगने मोकळा (छुटा) मूकी दीधा छे एवा, तथा लिंगावशेषमात्र एट्ले केवळ रजोहरण विगेरे वेषनेज धारण करनारा एवा पुस्थोनो मोटो असंयम (अनाचार) रूप पापनो प्रवाह क्षार एट्ले वाळेला तलनी भस्मनी जेम सुष्टुतर एट्ले गाढ अथवा सम्यक् प्रकारे पोताना अने वीजाना आत्माने पण मालिन करे छे. ४३५.

किं॑ लिंगंविडुरीधारणेण, कर्जम्मि अंड्हिए ठाँणे ।

राया नं होइ॒ सय॑मेव, धारयं चाँमराडोवे ॥ ४३६ ॥

अर्थ—“ जेम स्थाने एट्ले श्रेष्ठ सिंहासने बेठेलो अने मात्र पोतेज एट्ले हाथी, घोडा विगेरेयी रहित एकलोज, चामरना आटोप (आडंवर) ने धारण करतो सतो पण राजा होतो नर्थी-थड शकतो नर्थी, तेवीज रीते कार्यने विषे एट्ले संयमनी यतनाने विषे नर्हीं रहेलो—संयमथी रहित एवो साधु, लिंग एट्ले साधुवेष—तेनो आडंवर मात्र धारण करवावडे करीने शुं साधु कहेवाय ? नज कहेवाय. माटे गुण विनानो आडंवर करवो व्यर्थ छे. ए आ गाथानो तात्पर्य छे. ” ४३६.

जौ सुन्तत्थविणिच्छयकयागमो मूर्लउत्तरयुणोहं ।

ईवहइ॒ सय॑त्व॑लिओ, सौ॒ लिंख्खइ॒ सा॒हुलिख्खवंमि ॥ ४३७ ॥

अर्थ—“ सूत्र अने अर्थनो विनिश्चय एट्ले तथ्य (सत्य) ज्ञान तेणे करीने कर्यो छे आगम जेणे अर्थात् जाण्यु छे सिद्धान्ततुं रहस्य जेणे एवो (सिद्धांतज्ञाता) अने निरंतर अस्वलित एट्ले अतिचाररहित मूल अने उत्तर गुणना समूहने जे वहन करे छे—धारण करे छे एवो साधु साधुना लेखामां—साधुओनी गणतरीमां लखाय छे—गणाय छे. ” ४३७.

वैहुदोससंकिलिङ्गो नैवरं मईलेइ॑ चंचलसहावो ।

सुँहु॑ विं॑ वायामंतो, कायं नं॑ कैरेइ॑ किंचि॑ शुणं ॥ ४३८ ॥

गाथा ४३५—छकायरिझण । असंजयाण । पट्कायरिपूणम् । लिंगावसेसुमित्ताण । वहुअसंजमपवहो । वहुअसंजमपवहो । सुष्टुयरं । गाथा ४३६—लिंगाडंवरधारणेन । लिंगविडुरि । धारितो ।

गाथा ४३७—स्तत्थ । गुणहि । सायावलिओ । साहुलिख्खवंमि ।

गाथा ४३८—मश्लेह । मेलेह । वायामित्तो=परीपहारि दुःखं सहमानः ।

अर्थ—“ रागद्रेष्टरुपी पण दोषोवडे संक्षिष्ट (भरेलो) एटले दुष्ट चित्तवालो अने जेनो स्वभाव (अभिप्राय) चंचल एटले विषयादिकमां लुब्ध छे एवो पुरुष अत्यंत परीसहादिक कष्टने सहन करतो छतो पण मात्र कायाए करीने कांइ पण (थोडो पण) कर्मक्षयादि रूप गुणने करतो नथी—मेळवतो नथी; नवरं के० उलटो ते पोताना आत्माने मलिन करे छे. ” ४३८.

केसिंचि वैरं भैरणं, जीवियमन्नेसिसुर्भयमन्नैसिं ।

दंहुरदेविच्छाए, अहियं केसिं० चं उंभयं पि० ॥ ४३९ ॥

अर्थ—“ दर्दुर देवनी इच्छामां केटलाएकनुं मरणज श्रेष्ठ छे, केटलाएक पुरुषोनुं जीववृंज श्रेष्ठ छे, केटलाएकनुं जीवित अने मरण बन्ने श्रेष्ठ छे, अने केटलाएकनुं जीवित अने मरण बन्ने अहितकारक छे. आ गाथानो सविस्तर भावार्थ दर्दुरांक देवनी कथाथी जाणवो. ” ४३९. ते कथा नीचे प्रमाणे—

दर्दुरांक देवनी कथा.

प्रथम दर्दुरांक देवना पूर्वभवनुं स्वरूप कहे छे—कौशांवी महापुरीमां शतानीक नामे राजा राज्य करतो हतो, ते वखते ते गामर्मा एक सेडुक नामनो दरिद्री ब्राह्मण रहेतो हतो. तेनी खीं गर्भवती थइ. ज्योर तेनो प्रसूतिसमय नजीक आव्यो त्यारे तेणे पोताना पतिने कहुं के—‘मारो प्रसूतिकाळ समीप आव्यो छे, माटे मने धीं, गोळ विगरे लावी आपो.’ त्यारे सेडुक बोल्यो के—‘ मारी पासे एवी कोइ पण जातनी कळा नथी, तेथी द्रव्य विना धीं गोळ विगरे क्यांथी लावुं ? ’ ते सांभळीने ते बोली के—‘ जो कांइ पण कळा न होय तोपण उच्चम करवाथी फळनी प्राप्ति थाय छे. कहुं छे के—

प्राणिनामन्तरस्थायी, न ह्यालस्यसमो रिपुः ।

न ह्युद्यमसमं मित्रं, यं कृत्वा नावसीदति ॥

“प्राणीओनो पोताना अन्तःकरणमां रहेला आळस जेवो वीजो कोइ शत्रु नथी, अने उच्चम समाज वीजो कोइ मित्र नथी, के जे (उच्चम) करवाथी प्राणी कादि पण सीदातो नथी—खेद पामतो नथी.”

आ प्रमाणे पोतानी खींनुं वाक्य सांभळीने ते सेडुके एक फळ लइ राजानी सभामां जइ राजाने ते भेट कर्यु. एवी रीते हंमेशा ते राजसभामा फळ लइ जइने शतानीक राजानी सेवा करवा लाग्यो.

एकदा कोइ कारणथों चंपा नगरीना राजा दधिवाहने आवीने कौशांवी नगरीने घेरो घाल्यो. ते वसते शतानीक पासे अल्प सैन्य होवाथी ते किलानी अंदरज रहो. हमेशां युद्ध थतां अनुक्रमे वर्षाक्रितु आवी. ते वसते दधिवाहन राजानुं केटलुंक सैन्य आय तेम जतुं रहुं, तेवामां पेलो सेडुक ब्राह्मण पुष्प फळ विगेरे लेवा माटे गाम वहार वाढीए गयो हतो. तेणे दधिवाहननुं सैन्य थोडुं जोइने शतानीक राजा पासे आवीने कहुं के-‘ हे राजा ! आजे युद्ध करशो तो आपनो जय थशे.’ ते सांभळीने शतानीक राजा सैन्य सहित किला वहार नीकब्बयो. युद्ध करतां दधिवाहननुं सैन्य भांगयुं; एटले तेना हाथी घोडा विगेरे लड़ लइने शतानीक राजा पोतानी नगरीमां आव्यो. पछी सेडुकने घणुं मान आपीने तेणे कहुं के-‘ हे सेडुक ! हुं तारा पर प्रसन्न थयो छुं, माटे इच्छानुसार माग.’ सेडुके कहुं के-‘ हे स्वामी ! हुं घेर जइ मारी खीने पूछीने पछी मार्गीश.’ एम कही घेर जइने तेणे पोतानी खीने पूछयुं के “ हे प्रिया ! आजे शतानीक राजा मारा पर तुप्रमान यइने इच्छित वसदान आपे छे, माटे हुं शुं मारुं ? ” ते सांभळीने तेणे विचार्युं के-‘ जो आ वणा वैभवने पामशे तो मारुं अप्रमान करशे.’ एम विचारीने ते खीए कहुं के-“ हे प्राणनाथ ! जो तमारा पर राजा प्रसन्न थया होय, तो हमेशां इच्छा प्रमाणे भोजन अने एक दीनार (महोर) दक्षिणानी मागणी करो. केमके निद्रा वैचीने ग्रहण करेला उजागरा (जागरण)नी जेवा गाम के नगरना अधिपतिपणाए करीने शुं फळ छे ? (एटले गाम गरास मागवो ते तो निद्रा वैचीने उजागरो लीधा जेवुं छे, माटे ते न मागवुं.) ” आ प्रमाणे खीतुं वाक्य सांभळीने ते निर्भागीए पण तेज मागयुं. तेथी राजाए पण हमेशने माटे वाराफरती दरेक घेर तेने जमाडीने दक्षिणा आपवानो हुकम कर्यो, एटले लोको तेने उपराउपर निर्मंत्रण करवा लाग्या. तेथी सेडुक पण दक्षिणाना लोभथी एक घेर भोजन करीने घेर जइ मुखमां अंगलां नांखी प्रथम् खादेलातुं वमन करी वीजे घेर जमवा जवा लाग्यो. ए प्रमाणे अवसिथी भोजन करता सेडुकने त्वचाविकार थवाथी गळद कोठनो व्याधि उत्पन्न थयो, एटले हाथ पग विगेरे अवयवो गळवा लाग्या; परंतु ते थन अने पुत्रादिकना परिवारथी घणो दृष्टि पास्यो. पछी ते सेडुकना अंगमां रोगनी वहु दृष्टि थइ, एटले मंत्री प्रसुरवे सेडुकने कहुं के-‘ हवे तारे भोजनने माटे जवुं नहीं, तारे वदले तारा पुत्रने मोक्कवो.’ त्यार पछी तो पुत्र हमेशां दरेक घेर जमवा जवा लाग्यो, अने दीनारनी दक्षिणा लेवा लाग्यो. सेडुक सर्व लोकोने अनिष्ट थइ पड्यो. तेना पुत्रे पण तेने एक जूदा घरमां राख्यो, अने तेने भोजन पण एक काष्ठना पात्रमां ज़रुं आपवा लाग्यो. तेनी साये कोइ बोल्युं पण नहीं, अने सर्व घरना लोको तेने ‘ मर, अदीड था ’ एवां तिरस्कारनां वचनो

कहेता हता. पुत्रोनी वहुओना मुख्यी पण तेवां तिरस्कारनां वचनो सांभळीने सेडुकने क्रोध चड्यो; तेथी तेणे विचार कर्यो के—‘आ सर्वेने कोढीया करूं त्यारेज हुं खरो.’ एम विचारीने तेणे पोताना पुत्रने बोलावीने कहुं के—“हे पुत्र ! सांभळ, हुं वृद्ध थयो छुं, मारूं मृत्यु हवे नजीक आवयुं छे, तेथी मारे तीर्थयात्रा करवा जवुं छे. पण आपणा कुळनो एवो आचार छे के जे तीर्थयात्रा करवा जाय ते प्रथम जव तथा घासने मंत्रीया मंत्रीने एक बकरीना पुत्रने (बोकडाने) खवरावे, अने ते बकराने पुष्ट करी तेनुं पांस सर्व कुटुंबने खवरावीने पछी तीर्थयात्रा करवा जाय. माटे हे पुत्र ! मने पण एक बकरीनुं बच्चुं लावी आप.” ते सांभळीने ते पुत्रे ते प्रमाणे कर्यु; एटले ते बोकडाने सेडुके पोतानी पासे राख्यो. पछी पोताना कुष्ट संवंधी परु विगेरेथी मिश्रित करीने जव लूँगा—घास तेने खवराववा लाग्यो. तेवी रीते करतां केटलेक काळे ते बोकडो कोढीयो थयो. एटले तेने मारीने तेना मांसवडे कुटुंबनुं पोषण करीने (सौने जमाडीने) तेमनी रजा लइ ते तीर्थयात्रा माटे नीकल्यो.

मार्गमां जतां सेडुकने तृषा लागवाथी तेणे सूर्यना तापथी तपेलुं, अंदर पडेला घणां पांदडांओथी ढंकायेलुं काथ (उकाळा) जेवुं कोइक हृद (खावोचीया) तुं जलपान कर्यु. तेथी तुरतज तेने विरेचन थयुं. एटले तेनो सर्व कुष्टकृमिनो व्याधि बहार नीकल्यो. पछी तेणे घणा काळ सुधी ते जलनुं पान कर्या कर्यु. एटले दैवयोगे ते तदन नीरोगी थयो. परंतु अहीं कुष्टरोगवाळा बोकडालुं मांस खावाथी तेनुं आखुं कुटुंब कोढीयुं थयुं. पछी सेडुक पोताना शरीरनी नीरोगता देखाडवा माटे कौशांवी नगरीमां पाढो आव्यो. लोकोए तेने पूछ्युं के—‘तारो रोग केवी रीते गयो?’ त्यारे ते बोल्यो के—‘देवना प्रभावर्थी मारो व्याधि नष्ट थयो छे.’ पछी घेर आवीने सेडुके पोतानो कुटुंबने व्याधिग्रस्त जोइने कहुं के—‘जेवी तमे मारी अवज्ञा करी हती तेवुंज तमने सर्वेने फळ मळयुं छे ? मैं केवुं कर्यु ?’ ते सांभळीने सर्वेए तेनो अत्यंत तिरस्कार कर्यो, अने ‘तुं अदीठ था’ एम कही कुटुंबे अने नगरना लोकोए तेनी निर्भर्त्सन्न करी तेने नगर बहार काढी मूक्यो. त्यांथी भमतो भमतो ते राजगृही नगरीमां प्रतोदि (दरवाजे) आवीने रह्यो.

ते अवसरे श्रीमहावीरस्वामी राजगृही नगरीना उच्यानमां समवसर्या. ते सांभळी द्वारपालोए सेडुकने कहुं के—‘जो तुं अहीं रहीने चोकी करे तो अमे वीरप्रभुने चंद करी आवीए.’ ते सांभळीने सेडुक हा कहीने बोल्यो के—‘हुं भूख्यो छुं.’ त्यारे द्वा पालोए कहुं के—‘अहीं द्वारदेवीनी पासे जे नैवेद्य आवे ते तुं यथेष्टपणे खाजे. परंतु ह